
स्नेह
साहित्य
सदन

हास्य का इन्द्रधनुष

डॉ. रामप्रसाद मिश्र

स्नेह साहित्य सदन
3072/9 प्रताप स्ट्रीट गोला मार्किट
दरिया गंज नई दिल्ली 110002

संस्करण · 2001
मूल्य : 200.00 (दो सौ रुपये)
आवरण सज्जा विजय ग्राफिक्स
प्रकाशक
स्नेह साहित्य सदन 3072/9, प्रताप स्ट्रीट,
गोला मार्किट, दरिया गंज,
नई दिल्ली-110002
शब्द संयोजन
मानस टाइपसैटर, नयी दिल्ली-110002
मुद्रक
एच एस. ऑफसैट प्रैस, नई दिल्ली-110002

HASYA KA INDRADHANUSH (Humour) by Dr Ramprasad Mishr
2001 Rs 200.00

समर्पण

आत्मीयों को क्रमश:

सादर

एवं

सस्नेह

डॉ आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश' (लाडनूँ)
श्री विश्वदेश सिंह चौहान (मैनपुरी)
हास्य सम्राट् स्वर्गीय शारदा प्रसाद 'भुशुंडि' (लखनऊ)
डॉ. उमा शंकर शुक्ल 'उमेश' (फूलपुर)
डॉ. रामवरण चौधरी (दुमका)
डॉ. राधाकृष्ण शर्मा (छपरा)
स्वर्गीय बहुविधाकार श्री कैलाश कल्पित (इलाहाबाद)
डॉ. सुनील जोगी (नई दिल्ली)
डॉ. परमलाल गुप्त (सतना)
डॉ. मुचकुन्द शर्मा (बाढ)

कृतज्ञ
रामप्रसाद मिश्र

भूमिका

मैंने हास्य-साहित्य की श्रीवृद्धि हेतु बहुआयामी यत्न किए हैं, जिसके परिणाम 'जी हाँ, यह दिल्ली है !' (1968 ई.), 'मच्छर-सभा : अध्यक्षीय भाषण' (1991 ई.) एवं 'मौर्ख्य और साहित्य' (1995 ई.) शीर्षक तीन हास्य निबंध-सग्रह, 'मौर्ख्यशास्त्र (ईडिऑटिक्स)' (1979 ई.) शीर्षक शत-प्रति-शत मौलिक एवं नितांत नव्य हास्य-प्रबंध, 'कॉफी हॉउस' (1981 ई.) शीर्षक हास्य-नाटक तथा 'नेताचरित्रम्' शीर्षक नौ सर्गो का प्रथम हिंदी हास्य-महाकाव्य प्रयोग (1994 ई.) हैं ('हास्य-एकांकी' भी रचे हैं जिनमें चार इस ग्रंथ में विद्यमान हैं)। सात ग्रथ तीस वर्ष से अधिक समय मे सोचे-विचारे-लिखे (कुछ एकांकी अछपे भी)। सातों मौलिक, जिनमें 'मौर्ख्यशास्त्र (ईडिऑटिक्स)' समग्र साहित्य में नूतन प्रयोग, 'कॉफीहॉउस' एक मौलिक बौद्धिक प्रयोग एवं 'नेताचरित्रम्' हिंदी के प्रथम कथानकरहित हास्य-महाकाव्य के नूतन प्रयोग के रूपों में प्रस्तुत किए गए। चारु-चयन-रूप में यह ग्रंथ ! कविता, नाटक-अंक, एकांकी, प्रबंध, निबंध का यह साहित्य-पंचगव्य सर्वथा नवीन भी है, स्फीत भी। हास्य का इन्द्रधनुष ! वैसे तो 'विद्वान्' केवल सिखाते हैं, 'लेखक' केवल लिखते (या उतारते) है, 'आचार्य-प्रपाठक-प्राध्यापक-अध्यापक' केवल पढाते हैं (पढने का काम तरुणावस्था तक पूर्ण कर लेते हैं) अतः पढ़ना घोर अपमान समझते हैं (आलोचना और बात हे : सर्वोत्तम आलोचना का आलोच्य के सत्य से क्या संबंध ?), फिर भी, दबी जुबान से (जोर से बोलने पर खतरा है) इल्तजा है कि इसमें डूबने का समय न मिले तो कुछ लहरें ही गिन लें ('अनबूड़े बूडे तिरे जे बूड़े सब अंग' इक्कीसवीं सदी में नहीं चलेगा) और अगर 'मूड' ('मूड़' से कोई संबंध नहीं) बने तो यह बताने की कृपा करें कि क्या ऐसा कोई ग्रंथ उन्होंने किसी भी भाषा में देखा है ? यदि नहीं, तो इसके साथ जैसा यह है वैसा न्याय करें !

साहित्य की प्रत्येक विधा तभी गतिशील एव समुन्नत होती है, जब परंपरा के रक्षण के साथ प्रगति का पथ भी प्रशस्त किया जाए; उसके आयाम व्यापक किए जाएं, उसमें नव्य-भव्य का समावेश किया जाए। मैंने अन्य विधाओ

(विशेषतः कविता, आलोचना, निबंध, उपन्यास एवं सामान्यतः बाल साहित्य, संस्मरण, दैनंदिनी, कहानी, लघुकथा) के सदृश हास्य-साहित्य में ऐसा प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न कैसा है ? उत्तर का अधिकार आपका ।

पांडुलिपि-संदर्भ में सहायता के लिए दौहित्री आत्मा को आशीर्वाद एवं धन्यवाद।

14 सहयोग अपार्टमेन्ट्स
मयूर विहार-1, दिल्ली-110091

—रामप्रसाद मिश्र

अनुक्रम

कविता
(नेताचरित्रम्)

1. नेता-वंदना 11
2. नेतावाणी-वंदना 13
3. नेता का जन्म 14
4. नेता-मंत्र 16
5. भाषण 18
6. गधे को बाप कहो ! 20
7. हमारा भारत महान् 22
8. लंदन में अखिल भारतीय नेता-सम्मेलन 23

नाटक (प्रथम अंक)

9. कॉफ़ीहॉउस 25

एकांकी

10 कविरंजन शास्त्री 54
11. आचार्य गजानन पाण्डेय 62
12. चकानचक गुरू 69
13 बाबा मस्तराम 77

हास्य-प्रबंध
(मौर्ख्यशास्त्र)

14. ईडिऑटिक्स, दैट इज़, मौर्ख्यशास्त्र 85
15. मौर्ख्य और साहित्य 99
16. संसार के मूर्खो, एक हो ! 128

हास्य-निबंध

17. कसम धर्मनिरपेक्षता की, देश का नाम बदलो ! 132
18. मच्छर-सभा : अध्यक्षीय भाषण 138
19. अंग्रेज़ी-भक्तों का कवि-सम्मेलन 146
20. नेता प्रशिक्षण संस्थान 154
21. मिलावट-सम्मेलन 172
22. द्वादशरस और बस 183

कविता

(नेताचरित्रम्)

1. नेता-वंदना[1]

तू धन्य धन्य नेता महान्
पदवंदन मानो लाभ-खान
कविजन गाते हैं कीर्तिगान
पाते हैं धन, यश और मान
इतिहासकार करते बखान
पद-पदवी पाते बढ़ा शान।

जीवनी, संस्मरण की बहार
लेखों का जग फैला अपार
चरणों पर लेटे पत्रकार
यात्रा-भत्ते पा बेशुमार
है खान-'पान' ही प्राणसार
क्षणभंगुर जीवन निराधार।

अज-स्वर लेखक गज-स्वर नेता
स्वाभाविक पूजा ले लेता
नेता जग की नौका खेता
जग पारिश्रमिक उसे देता
नवयुग-नरेश यश का क्रेता
जब तक पदस्थ ऋषि, अध्येता।

1. 'नेताचरित्रम्' की 'श्रीगणेशायनमः' (जो 'स्वतंत्र' भारत में 'साम्प्रदायिक' एवं 'कालातीत' हो गई है—अतः 'धर्मनिरपेक्ष' एवं 'प्रगतिशील')।

पद पर पद-पद पर मालाएं
आरती उतारें बालाएं
खीसें निपोरतीं खालाएं
पांवड़े बिछातीं शालाएं
कौशेय कभी मृगछालाएं
हैं आज सोम कल हालाएं।

हे नेता ! तुझको नमस्कार
तू अखिल सृष्टि का समाहार
धरती पर तू सर्वत्र व्याप्त
आकाश तुझे है सदा प्राप्त
रॉकेट-सी है तेरी उड़ान
जय-जय का होता घोर गान
मुसकान कँटीली जगत्-मार
हे नेता ! तुझको नमस्कार।

तन से मानव, मन से अबोध
बकरे-सा स्वर, पर सिंह-क्रोध
हाथी-सा तन, कंगारू-गति
गिरगिट-से रंग, तेंदुआ-सुमति
जीवन से राजा, बोल रंक
भोले भाषण पर कार्य बक
जनता देती सर्वस्व वार
हे नेता ! तुझको नमस्कार।

आश्वासन की रहती बहार
भाषण की वासंती बयार
उद्घाटन तेरा प्राणसार
चाटन भी चलता है अपार
दीनों-दलितों का प्रेमभार
बहती है सूखी व्यथाधार
पहनाए जाते सदा हार
हे नेता ! तुझको नमस्कार

2. नेतावाणी-वंदना[1]

जय-जय-जय अंग्रेज़ी-रानी !
'इंडिआ, दैट इज़, भारत'[2] की भाषाएं भरतीं पानी।
सेवारत हैं पिल्ले, मेनन, अयंगार, मिगलानी
तमिलनाडु से नागालैण्ड तक ने सेवा की ठानी।
तेरे भक्तों को हिंदी में मिलती नहीं रवानी
शब्दों की भिक्षा ले-ले उर्दू ने कीर्ति बखानी।
एंग्लो-इंडिअन भाई कहते, तू भारत की वाणी
अड़गम-बंड़गम-कड़गम कहते, तू महान्, कल्याणी।
अंकल, आँटी, मम्मी, डैडी तक है व्याप्त कहानी
पब्लिक स्कूलों से संसद तक तूने महिमा तानी।
अग्रेज़ी में गाली देने तक में ठसक बढ़ानी
फिर, भाषण में क्यों न लगे सब भक्तों को सिम्फ़ॉनी।
मैनर से वैनर, पिओन से लीडर तक लासानी
सभी दंडवत् करते तुझको, तू समृद्धि-सुख-दानी।
जय जय जय अंग्रेजी रानी !
जय जय जय अंग्रेज़ी रानी !!

थिक' एवं 'कालातीत' वाणी-वंदना के स्थान पर 'धर्मनिरपेक्ष' एव 'प्रगतिशील' !
ड' ('धर्मनिरपेक्ष'-दृष्टि से 'नेताकुरान') 'संविधान' के अनुसार ! 'अतरराष्ट्रीय' अनुरूप !!

३. नेता का जन्म

जिस दिन जन्म हुआ नेता का धरती धँस गई ढाई हाथ
माता मूर्च्छित घंटे भर तक, पिता पकड़ के बैठा माथ।
चलीं चार सौ बीस हवाएं, उठे प्रभंजन भी छत्तीस[1]
सागर मचल उठा तड़के ही, उठी शून्य के मन में टीस।
पडित ने बतलाया, "आता कभी-कभी ऐसा संयोग
बडा प्रतापी बेटा होगा, पैर छुएंगे लाखों लोग।
सतयुग मे हिरण्यकश्यप, त्रेता में रावण का जन्मांक
द्वापर में दुर्योधन, कलियुग में हिटलर-सा बेहद बॉक।
लाखों देंगे रोज गालियां पानी पी-पी भर-भर पेट
आयु बढ़ेगी इससे, निंदक की ना होगी इससे भेंट।
पत्रकार, कवि, लेखक खीसे खूब निपोरेंगे दिन-रात
हीरे-सोना-चादी कंकड़, रुपए-डॉलर की बरसात।
घंटे आठ लिखे धरती पर, सोलह लिखे हुए आकाश
घंटे तीन लिखे भाषण के जिनमें सराबोर विश्वास।
इन्हीं तीन घंटों में आधा समय भरे कैमरा-प्रकाश
असली-नकली बत्तीसी का छिटकेगा पत्रों में हास।
शांति-प्रेम-संदेश, किंतु परिणाम ? मरेंगे सत्रह लाख
अग्निकांड सत्तासी होंगे, किंतु बढेगी उनसे साख।
दस करोड़ मालाएं, जूते केवल मात्र लिखे पच्चीस
माला हो या जूता या पत्थर, पर नहीं मिटेगी खीस।
वर्ष पिछत्तर में बिगड़ेगा स्वास्थ्य, पड़ेगा विकट कुयोग
पर अमेरिका में सरकारी स्वास्थ्य-लाभ मेटेगा रोग।
सपरिवार जा स्वास्थ्य-लाभ कर और बिता कर तेरह मास
केवल एक कोटि डॉलर सरकारी व्यय, अमूल्य उल्लास।

---

1. विपरीत 36 (अनुकूल 63)।

जनता सदा जनादन इसकी, नारायण दरिद्र औ दीन
वार्षिक सप्त कोटि रुपए वैयक्तिक रक्षा से हो पीन।
दलित-अल्पसंख्यक-हितरक्षक, उनके हेतु हितो का त्याग
ग्यारह एकड के बंगले में पक्षी गाएं राग विहाग।

सहज मृत्यु अथवा हत्या का साफ नहीं है अकित अक
किंतु सिंह-सा जग-अरण्य में गरजेगा सदैव निश्शंक।
मरने पर आयोग लिखा है, जिसमें व्यय है सत्तर लाख
वायुयान सागरो और नदियों पर बिखराएंगे राख।
जीवित लोगों की खोपड़ियां होगी धन्य धार कर राख
राष्ट्र-व्याप्त छिड़काव चलेगा तमिलनाडु हो या लद्दाख।
तीन अरब की सत्रह एकड़ भूमि, बनेगी अमर समाधि
जो उस पर मस्तक रगड़ेगा मिट जाएगी सारी व्याधि।
दस करोड़ का स्मारक-व्यय भी झेलेगी कृतज्ञ सरकार
एक अरब का न्यास मूर्तियों के द्वारा देगा सत्कार।
रचनावली तीस खंडों मे विश्वस्तर को बहुत पछाड़
बहुत दिनों फिल्मों-कैसेटों में गूंजेगी विकट दहाड।
वैश्विक सम्मेलन स्मृति में होंगे औ गूंजें परिसंवाद
नेता देशी और विदेशी पाएंगे भाषण का स्वाद।
वही अमर है जिसको प्राप्त हो सकें साधन अपरंपार
सदा दूरदर्शन में चमके, प्राप्त व्योमवाणी-संभार।

4. नेता-मंत्र

देशरत्न ने निज सत्ता-दल को समझाया, ''तोड़ो खूब
भारत को, जोड़ो सत्ता से, सुख-समृद्धि-वैभव मे डूब।
धर्म, जाति, भाषा, सरिताजल, दरिद्रता, वैषम्य, अमान
जैसी गणनातीत समस्याएं देंगी तुमको सम्मान।
'एक नागरिक एक समस्या' नारे का कर दो गुंजार
बैठ बिल्लियों में बंदर-सा करो न्याय-समता-संचार।
जितनी अधिक समस्याएं उतना ही अधिक तुम्हारा मान
गला फाड़ प्रतिपल चिल्लाओ 'राष्ट्र हेतु करना बलिदान।'
है अपार धन प्राप्त तुम्हे, उससे चमचों की करो खरीद
नंगे-भूखे गदहों को समझाओ, उनका प्रति दिन ईद।
एक हज़ार साल पहले की स्थिति में जनमानस-निर्माण
कर पाए तो समझो जाकर लगा लक्ष्य पर सत्ता-बाण।
ऋण की चिंता करो कभी ना, वह तो है भविष्य की बात
दान समझ कर लेते जाओ, दो विरोधियों को नित मात।
ब्याज चुकाना लक्ष्य एक है, मूल स्वतः होगा निर्मूल
कुछ उन्नति-प्रतीक बनवाओ, जनता जाए दुखड़े भूल।
पत्रकार-श्वानों को पालो, शोर मचा ना खोलें लूट
सदा प्रशासकगण को आदर दो, ना कभी सकोगे टूट।
पालो तस्कर, दस्युराज, अपराधी, पा लो वित्त अपार
अभिनेता, उद्योगपति बहुत धन देते, दो इन्हें दुलार।
कलाकार, कवि, गायक, वादक, सब में रक्खो गहरी पेठ
धार्मिक नेताओं, मुल्लो के पैर छुओ—ना जाएं ऐठ।
समय-समय पर पूंजीवादी शोषण पर हो विकट प्रहार
किंतु गुप्त चंदे के खातिर इनकी करो गुप्त मनुहार।
शब्द 'समाजवाद' को दिन में दुहराते जाओ सौ बार
पर अपने पूंजी-सचय का प्रतिपल रक्खो सुदृढ़ विचार।

करो तस्करी की निंदा पर प्राप्त तस्करों से धन खूब
फ़िल्मी टैक्सचोर तत्त्वों से झिटको माल इन्हीं में डूब।
कोई भी आपदा लाभप्रद रहे—सदा यह रखना ध्यान
सूखा, बाढ़, विनाश को सदा कामधेनु का दो सम्मान।
वायुयान से करो निरीक्षण औ सहायता का ऐलान
सिंहभाग लो स्वयं, शृगालों-श्वानों को दो उनका दान।
प्रति ठेका, परमिट, कोटा पर भूलो मत अपना अधिकार
पहले राशि विदेश बैंक मे जमा करे शोषक-परिवार।
है चुनाव का युद्ध विकटतम, पैसा जीते सारे दांव
पैसा ही है आत्मा, पैसा जीवन, वही हाथ औ पांव।

सदा उच्च सिद्धांत का पैना हो हथियार
जनता को जीतो सदा, इसकी प्यारी नार।
'कर्म-वचन-मन-भिन्नता' का हो प्रतिपल ध्यान
और 'धर्मनिरपेक्षता' खड्ग, 'न्याय' की म्यान।
जनता को जीतो सदा रखकर अपना ध्यान
घास खिलाकर रासभों को पाओ सम्मान।



5. भाषण

भाषण है जीवन का सार
भाषण बिना अतुल मानव-जीवन है भारी भार।
जन्म-रुदन नेता का भाषण, प्रति पल में विस्तार
चिता भाषण, हँसना भाषण, वही जीत औ हार।
सोना भाषण, जगना भाषण, वह सांसों का तार
भाषणमय निर्माण, वही निर्वाण जगत् के पार।
भाषणरहित स्वर्ग से अच्छा नरक शब्द-गुजार
सदा गूंजती रहे हमारे नेता की हुंकार।

सृष्टि-पूर्व था ब्रह्म ने भाषण दिया महान्
तब से अब तक गूंजती है भाषण की तान।
"शब्द आदि में" ब्रह्म के भाषण का संकेत
'शब्द-ब्रह्म' से 'सबद' तक करता सदा सचेत।
नारी है भाषणमयी, नर भाषण का रूप
व्याघ्र, श्वान, कोकिल, मशक, सब भाषण के भूप।
यदि ना होता जगत् में भाषण ज्योति-निकेत
जीवन-सरिता सूखती, बचता गूंगा-रेत।
आत्मघात भाषण बिना मैं कर सकता आज
भाषणमय शतवर्ष का इच्छित जीवन-साज।

देशरत्न को भूख न लगती यदि ना देते भाषण तीन
जिस दिन पंद्रह भाषण देते उस दिन लगते हर्षित, पीन।
प्रातः 'डेल्ही', दिन में 'बॉम्बे'[1] औ तब 'मैडरैश' (मद्रास[2])

1. अब 'सांप्रदायिक' मुम्बई।
2. अब 'धर्मनिरपेक्ष' चेन्नई।

'कैल्कटा' अपराह्न, शाम को 'पैट्ना' में खिलता उच्छ्वास।
बसों, ट्रकों पर लाद-लाद कर लाए जाते लाखों लोग
रेलों की फोकट यात्राएं, बिना फंड का भाषण-भोग।
जुट ना पाते यदि लाखों तो आयोजक को विकट लताड़—
कैसे पार किया जा सकता निर्वाचन का निकट पहाड़ ?

नेताजी भाषण हेतु चले
हेअर-डाई, आई-लेंस, डेंचर में सजे भले।
अचकन, चूड़ीदार, कैप—कम कद के कष्ट टले
'साइंटिफिक यूथ' की शोभा कामिनि-हृदय छले।
अभिनेत्रियां मधुर मुसकाएं, उनके 'दिल' मचले
ख़ालाएं हालाएं सी थीं, सोचें, लगें गले।
अभिनेता-समूह बगलें झांके औ हाथ मले
सत्तास्वादरहित नेताओं को सब 'पोज' खले।

एक दिन समाजवादी मंच को आशीर्वाद
देने चले देशरत्न, मन में हर्ष छाया था
उन्हें गर्व था, सर्वहारा-क्रांति के पोषण
हेतु प्रथम संदेश उन्होंने सुनाया था
हुए संतुष्ट सभास्थल की सजावट देख—
लाखो ख़र्च कर, मंडप-मंच को बनाया था
लाखों के उपाहार की भी व्यवस्था थी
बड़ों-बडों का बड़ा समूह मंडराया था।

देशरत्न गरजे, "भारत है भूख नंगा, शोषणग्रस्त !"
देशरत्न गरजे, "हम शोषण को कर डालेगे विध्वस्त !"
देशरत्न गरजे, "लुटती जनता, पैशाचिक पूंजीवाद—
कहीं नही है सूखी रोटी, कहीं मांस-मदिरा-आह्लाद !
हमें समाजवाद लाना है, राष्ट्ररोग का यही इलाज
यदि ना हम चेते हिंसा ध्वांत करेगी बनकर गाज।
लोकतंत्र है व्यर्थ, धर्मरनिरपेक्ष नहीं यदि रहा समाज
और समाजवाद ही रक्खेगा भारत-माता की लाज !"

6. गधे को बाप कहो !

गधे को बाप कहो, चप्पलें सटकाओ
'निष्ठा' का व्रत लेकर 'नेताजी' बन जाओ
गर्दभवत् चिल्लाओ
सबको गधा बनाओ ।

गधे को बाप कहो, जनता को भरमाओ
हीरो-हीरोइन बन, कर डकारते जाओ
कूल्हे खूब मटकाओ
गधों से पुजवाओ ।

गधे को बाप कहो, ठेका-परमिट पाओ
लेन-देन करते हुए अरबपति बन जाओ
मंदिर, सस्था बनाओ
कलि के कर्ण कहलाओ !

गधे को बाप कहो, कलम रगड़ते जाओ
खीसें निपोर 'राष्ट्र-संपादक' पद पाओ
वायस-स्वर उचकाओ
पिक-चातक भगाओ ।

गर्दभयुग आ गया : गर्दभ बनो, बनाओ
गर्दभायनमः' मंत्र जपो और जपवाओ
धन-धान्य-यश पाओ
अजर-अमर हो जाओ !

'गर्दभपुराण' रचो, औरों से रचवाओ
'नेताचरित्रम्' पढ़ो, औरों से पढ़वाओ

अर्थ-काम बढ़ाओ
मोक्ष अंत मे पाओ '

भ्रीं द्रीं भ्रीं गर्दभायनमः।
शांति ! शांति ! शांति ! निर्भ्रमः।।

7. हमारा भारत महान्

हमारा भारत महान्
जेबकतरों से सावधान।
शाति का लक्ष्य निर्भ्रम
सीट के नीचे बम।
उन्नत है व्यापार
ऋणो की भरमार।
राष्ट्रीय मुसलमान
फूले-फले पाकिस्तान।
परिवार - नियोजन
दो करोड नए 'जन'।
अगणित देशनिर्माता
भारत रसातल जाता।
नया राष्ट्र बनाओ
भूखो ' मरते जाओ।
जय जयकार करो
घास खा पेट भरो।

8. लंदन में अखिल भारतीय नेता-सम्मेलन

एक बार लंदन में अखिल भारतीय नेता
सम्मेलन हुआ अनौपचारिक अनायास ही :
राष्ट्रपति लंदन-विश्वविद्यालय की डी. लिट्.
पदवी हेतु गए—बढ़ा राष्ट्र-विश्वास ही
सपरिवार उपराष्ट्रपति भाषणयात्रा हेतु
निकले थे, अभी बीते मई-जून मास ही
पर्यावरण-रक्षा हेतु पधारे प्रधानमंत्री
क्योंकि विषाक्त होती मानवता-श्वास ही।

एअर-डैश किया पर्यावरण-मंत्रीजी ने
सदलबल न्यूयॉर्क से, जहां ठहरे थे
पंद्रह दिनों से, विश्व-सम्मेलन-संभागी
के रूप में, रोमानी स्वर घहरे थे
वे चाहते थे, भारत पांच हज़ार वर्ष
पूर्व-स्थिति में आए—नदी-नद गहरे थे
पर्वत पवित्र, वन सघन, देश स्वर्ग था
तभी वेद-उपनिषद्-ज्ञान-केतु फहरे थे।

उनका परिवार देशसेवा-हित उनके साथ
छाया-सा रहता था, उत्साह देता था
इसी संदर्भ में स्विट्जरलैण्ड[1] से होता

1. असली नाम 'स्विफ्ट + जर + लैण्ड' अर्थात् संसार के 'तेजी' से कमाए काले 'धन' को जमा कर सुरक्षा-शुल्क लेने वाला—खाने वाला अपवित्र 'देश'।

अमेरिका में भारत की नैया खेता था
अब लंदन में उपराष्ट्रपति-मंत्रि-परिवारों
के साथ आत्मीयता-रस लेता था—
पर्यावरण-मंत्री रूसो, ब्लेक, वर्ड्स्वर्थ, गांधी
के सदृश प्रकृतिभक्त थे, यश जग-जेता था।

विदेश-मंत्री अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन
में तीन मंत्रियों के साथ पधारे थे
विरोधी दलों के पांच शीर्षस्थ नेता भी
सदस्य-रूपों में सादर सिधारे थे
राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा
विदेशमंत्री के साथ सांसद न्यारे थे
चारसौबीस 'ब्यरोक्रेट्स' सहायता
कर रहे, दिन-रात खटते बेचारे थे।

यूरोप और अमेरिका-द्वय महाद्वीपों के
राजदूत-राजनयज्ञ बुलाए गए
गहन रणनीति बनाई गई जिससे कि
सहायताएं मिलें, ऋण मिलें नए-नए
जिससे देश पर अपार ऋणभार का ब्याज
चुकाया जा सके—सभी पुलकित होते भए
क्योंकि भारत सहायता क्लब तथा विश्व बैंक
ने डॉलर दिए ! देश में बस छपते रुपए !!

डॉलर न होगा तो राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति
प्रधानमंत्री, मंत्रीगण, अधिकारी-जन
हाजी[1] इत्यादि कैसे वायुयान-यात्राओं
द्वारा करेंगे पूर्ण राष्ट्र, अल्ला प्रति प्रण ?
रुग्ण नेतागण तथा अन्यान्य महोदय
कैसे विदेशों में मिटाएंगे कष्ट-व्रण ?
और, जनता-जनार्दन या दरिद्र-नारायण
कैसे करेंगे ग्रहण चिरकाल पदरजकण ?

---

1. पावन मक्का-मदीना-यात्रा का कुल 'धर्मनिरपेक्ष' सरकारी-व्यय केवल लग
पैंतीस करोड़ (2001 ई.)।

नाटक (प्रथम अंक)[1]

9. कॉफ़ी हॉउस[2]

पात्र

ेसर कथूरिया : अंग्रेज़ी के प्राध्यापक।
मिस्टर खन्ना : प्राइवेट कॉलेज में इतिहास के प्रवक्ता।
श्री बजरंगदास : एक प्रसिद्ध मंदिर के प्रधान।
. गुरचरनसिंह : पंजाबी-कवि, प्राध्यापक और हिन्दी में दखल।
डॉ. रमाकांत : हिन्दी-प्राध्यापक और नातिविख्यात साहित्यकार।
श्री देवीदत्त : संसद-सदस्य और वरिष्ठ कांग्रेस-नेता।
कॉफ़ी हॉउस का मालिक, काउंटरमैन, बैरे, ग्राहक।

(नई दिल्ली के एक प्रसिद्ध और विशाल कॉफ़ी हॉउस में गर्मी को दोपहर के कारण आदमी बहुत कम है। काउण्टर के पास दाक्षिणात्य स्वामी सिंह-मुद्रा मे समासीन हैं; विशाल शरीर, विशाल मूंछें। काउण्टरमेन कुछ दबी-सी मुद्रा में खड़ा है। ग्राहकवर्ग में कोई हल्के-हल्के कॉफी पी रहा है, कोई डोसा खा रहा है तो कोई इडली, कोई सिगरेट के कश खींच रहा है, कोई छत की ओर देख रहा है, कोई दीवार पढ़ रहा है। एक कोने की मेज पर प्रो. कथूरिया अकेले बैठे हैं। उनकी दृष्टि एक भारी-भरकम अंग्रेज़ी-पोथे पर टिकी है; बीच-

---

थम अंक का यत्किंचित् विकसित रूप। पूरा नाटक पाच अंकों का है।
ाटक (1981 ई.)। (स्व. अमृतलाल नागर का हास्यनिबंध 'यदि मनुष्य के पूछ होती' नाटक की आद्यंत-व्याप्त एवं आद्यंत-स्पष्ट 'समस्या' से सबद्ध है जो प्राय स्वतंत्र रचना हुए भी पर्याप्त परवर्ती है।)

खूच लोगों, दीवारो, छत और कभी-कभार सड़क की गतिविधि को देख लेते हैं। प्रो. कथूरिया अनुमान-उदार आयु के व्यक्ति हैं—लोग अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार उनकी आयु कूत सकते हैं; बालक उन्हें पचास का कहेगा, किशोर चालीस का, प्रौढ़ सैंतीस का, वृद्ध तीस का। शरीर विशाल है; भारी घेरे और वजन का। रग गेहुवां। चेहरे पर चेचक के कुछ निशान। लंबाई पांच फुट आठ इंच। आंखों पर भारी नंबरों का चश्मा। वेशभूषा पाश्चात्य। मेज के चारों ओर चार कुर्सिया। इस समय तीन खाली। इनमें से एक पर उनके चार अखबार, पांच पत्रिकाएं, सात छोटी-बड़ी पुस्तकें, सब एक-पर-एक रखे हैं। दो मिनिट इसी तरह बीतते हैं। प्रो. कथूरिया अचानक किताब बंद कर देते है, उसे पास रखी राशि पर रख देते हैं। फिर आंखें बंद कर कुछ सोचने लगते हैं। उनकी दोनों हथेलिया एक में मिली हुई हे जिन पर मस्तक का मध्य भाग टिका है। दो मिनिट इसी तरह बीतते हैं। इसी बीच कॉफ़ी हॉउस के प्रवेश-द्वार से मि. खन्ना प्रवेश करते है। कद पांच फुट दो इंच। शरीर दुहरा। गाल पर गाल चढ़ा है। स्निग्धता छाई है। रग गोरा। गजे, पर चमकते ललाट पर बालो का अच्छा-सा घेरा। आयु चालीस, बताते है पेंतीस। फ्रेंचकट दाढी और मंगोल-कट आंखों के कारण लेनिन का ध्यान हो आता है। ओंठ पतले; लगता, अब बोले अब बोले। वेशभूषा अति-आधुनिक, चमाचम। प्रवेश करके कुछ क्षण इधर-उधर देखते है, धूप का चश्मा उतार कर रूमाल से पोंछते हैं, फिर लगा लेते है। दो पल बाद प्रो. कथूरिया को देखते हैं तो उधर ही लपकते हैं।)

खन्ना : हेलो कथूरिया ! क्या हाल है ? क्या तबीयत कुछ नासाज है ?

कथूरिया : (सिर उठाकर) गुड नून खन्ना ! तबीयत ठीक है।

खन्ना : फिर उस तरह क्यों बैठे थे ?

कथूरिया : एक ख़याल में उलझ गया था।

खन्ना : ख़याल ? कहा सुना था ?

कथूरिया : (रूखी आवाज़ में) सुना ? क्या मतलब ?

खन्ना : ख़याल आपने सुना, मतलब मैं बताऊं ? वाह ! किससे सुना था ? बेगम अख़्तर से ? क्या गज़ब का गाती थी। मैं तो शादी उसीसे करूंगा जो बेगम अख़्तर जैसा गाती हो। फ़िल्मी म्यूज़िक वाहियात चीज़ है। मामूली लोगों का मनोरंजन। असली चीज़ तो शास्त्रीय संगीत है जिस पर भारत को गर्व है....

(प्रो कथूरिया उन्हें देखकर हँस देते हैं जिससे वे रुक जाते हैं।)

कथूरिया : रुक क्यों गए ? बोलते चलिए। भारत में बोलना सबसे बड़ा उद्योग है क्योंकि इसमें सबसे ज्यादा लोग लगे हुए हैं। बोलने में भारतीय का मुकाबला नहीं। यहां सब बेहद बोलते हैं और जो बेहद बोलता है वह काम बेहद कम कर पाता है, जो बेहद करता है वह बेहद कम बोलता है।

खन्ना : बोलना आसान काम नहीं। जिसके पास बोलने को कुछ नहीं होता, वह बोलने की आलोचना करता है। संसार के असंख्य प्राणियों मे केवल मनुष्य बोल सकता है। बोलना मनुष्य की पहली पहचान है। शेर दहाड़ते हे, हाथी चिघाड़ते हैं, सियार हुवाते हैं; कुत्ते भौंकते हे, बिल्लियां मिमियाती हैं....

कथूरिया : मनुष्य बोलता भी है, दहाडता भी है, चिघाड़ता भी हे, हुवाता भी है, और भौंकता भी है, मिमियाता भी है ओर रेंकता भी है--कितने भाग्यशाली हैं वे प्राणी जो बोलते नहीं ! यदि कोयल बोलती होती तो कूक न पाती !

खन्ना : यह तो तभी जाना जा सकता है जब वह बोल सकती। ख़ैर, आप ख़याल...?

कथूरिया : यों ही एक ख़याल ...

खन्ना : क्या ? कैसा ?

कथूरिया : छोड़िए भी। विचित्र-सा....

खन्ना : तब तो जरूर सुनूंगा। देर मत करिए, मैं छोडूंगा नहीं।

कथूरिया : सुनकर हँसेंगे। मनुष्य प्रायः अज्ञेय को हँसकर....

खन्ना : क्या कहते हैं अज्ञेय को तो ज्ञानपीठ पुरस्कार....

कथूरिया : अरे भाई, अज्ञेय मायने जो न जाना जा सके यानी रहस्यपूर्ण, कठिन....

खन्ना : ओह ! ख़याल के बाद अज्ञेय का गपचा ! ख़ैर...ज्ञान की ओर पीठ ही सही !

कथूरिया : मनुष्य प्रायः अज्ञेय को हँसकर टाल देता है—इससे उसकी हीनता-ग्रंथि को परितोष प्राप्त होता है।

खन्ना : मुझमें ऐसी कोई ग्रंथि नहीं है।

कथूरिया : मनुष्य ग्रंथि-मुक्त हो ही नहीं सकता। कोई हीनता-ग्रंथि में फंसा है, कोई श्रेष्ठता-ग्रंथि में, कोई आत्मरति में, कोई इसमें, कोई उसमें। इन्हीं ग्रंथि-बंधनों के कारण मुक्ति महान् बनी बैठी है। वैकुण्ठ वही है। वैकुण्ठ वहीं हैं जहां कुण्ठा न हो।

खन्ना : उच्च विचार हैं, किंतु बात बताइए और बाल की खाल न निकालिए। आप ठीक कहते हैं कि भारतीय बहुत बोलते हैं—अपने प्रमाण आप हैं।

कथूरिया : अच्छा, अंदाज लगाइए कि मैं किस विषय पर सोच रहा था ?

खन्ना : राजनीति ? राष्ट्रपति....

कथूरिया : नहीं।

खन्ना : शिक्षा ? उपकुलपति....

कथूरिया : नहीं ?

खन्ना : सेक्स ?—आप बैचलर हैं....

कथूरिया : नहीं।

खन्ना : बचपन ?

कथूरिया : नहीं।

खन्ना : तो फिर आप ही बताइए, मैं अंदाज़ नहीं लगा पाऊंगा।

कथूरिया : मैं सोच रहा था, यदि मनुष्य के पूंछ होती, तो ?

खन्ना : (हँसी को दबाते हुए) विषय तो गंभीर है। वाल्मीकि से डार्विन तक अनेक देशी-विदेशी ऋषियों ने इसे आधार भी प्रदान किया है। क्या सोचा ?

कथूरिया : सोचा यदि मनुष्य के पूंछ होती, तो समाज का रूप क्या होता ? वस्त्र कैसे होते ? फ़र्नीचर कैसा होता ? वगैरह-वगैरह। 'यदि मनुष्य के पूंछ होती' जैसा कोई

ग्रंथ मिल सकता है ? अंग्रेज़ी, फ्रेंच, हिंदी, पंजाबी, उर्दू ...किसी भी भाषा में....

ना : (हँसी को दबाते हुए) कह नहीं सकता। मेरे देखने या सुनने में नहीं आया। आया तो बताऊंगा। और, यदि नहीं है तो आप ही लिख डालिए—कॉफ़ी हॉउस माकूल जगह है और दिल्ली का क्या कहना !

या : बड़ा कठिन काम है। जीवविज्ञान से लेकर समाजशास्त्र तक के सैकड़ों मोड़ों पर ठहरते-ठहरते जाना पड़ेगा, तब कहीं मंजिल मिलेगी। ऐसा महान् प्रयास तो कोई पाश्चात्य विद्वान् या वैज्ञानिक ही कर सकता है। ऐसे प्रयास से रामायण की घटना को कोई बौद्धिक आधार, वैज्ञानिक आधार तो प्राप्त होगा ही, डार्विन के सिद्धात को भी बल मिलेगा, इसमें सदेह नहीं।

ना : (गंभीर बनने का प्रयास करते हुए) बात ठीक है। मैंने कुछ वर्ष पहले अयोध्या में राम के राजतिलक के दस लाखवें वार्पिकोत्सव का विज्ञापन देखा था। तब हँसकर टाल दिया था क्योंकि हिंदू लाखों और हजारों वर्षो से नीचे उतरते ही नहीं और पश्चिम वाले उनके इतिहास को बाइबिल के बाद या यूनान के साथ बनाने मे बेशर्मी की कोई फिक्र नहीं करते। किन्तु जब ध्यान गया कि डार्विन ने भी 'लुप्त संबंधसूत्र' या 'मिलिंग लिंक' का समय दस लाख वर्ष पूर्व का ही अनुमानित किया है तब कुछ सोचने पर विवश हुआ लेकिन बस टांय-टांय-फिस्स। धन्य हैं आप जो इस गहन विषय पर टिक रहे हैं ! फिर सोचा क्या ? कठिन कार्य को कठिन कहकर छोड देना मानवीय विकास के विरुद्ध है। मनुष्य की परिभाषा ही यह है कि वह असंभव को संभव करता है। असंभव को संभव करना मानवता का सबसे बडा धर्म है।

या : सोचा तो बहुत है; दरअस्ल, इधर तीन घंटों से इसी उधेड़बुन में पडा हूं। तीन कप कॉफ़ी, एक डोसा, एक प्लेट इडली, एक प्लेट उपमा खा चुका; पर किसी नतीजे पर नहीं पहुंचा। सोचते-सोचते तन-मन दोनों ढीले पड

गए हे।

खन्ना : कॉफी पिलवाऊं ?

कथूरिया : कोई हर्ज नहीं।

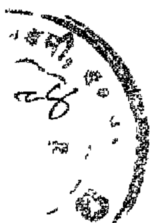
(मि. खन्ना एक बैरे को बुलाकर 'दो कप कॉफी' का आर्डर देते हैं। एक मिनट मौन रहता है।)

खन्ना : हां, तो बताया नहीं, क्या सोचा ?

कथूरिया : सोचा, यदि मनुष्य के पूंछ होती तो वह दुपाया होता या चौपाया ? प्रश्न का प्रश्न में चिंतन। मेरे मन मे सुकरात बसा है। और यदि मनुष्य दुपाया होता तो उसकी वेशभूषा दिलचस्प होती, इसमें शक नहीं। पेंट की सिलाई में पूंछ का खयाल रखना पड़ता। तब औरते साड़ियां कम पहनतीं। उन्हें भी पेंट पहननी पडती, क्योंकि साड़ी मे पूंछ का सौदर्य छिपा ही न रह जाता वल्कि बेहूदा भी लगता। कुछ लोग पैंट के पूंछ वाले सिरे पर खूबसूरत घंटियां बांधते—खासकर युवतिया। इससे मधुर संगीत की सृष्टि अनायास ही होती रहती। जलतरंग की सी मधुर ध्वनि निकलती रहती। चारपाइयो और पलगों मे पूंछ के लिए छेद रखना पड़ता। कुर्सियो में भी ऐसी ही व्यवस्था करनी पडती। पूछ को विल्ली या चूहे से बचाने के लिए स्टील या प्लास्टिक का खोल प्रयोग में लाना पड़ता। स्टील टेल-कवर फैक्ट्री ओर प्लास्टिक टेल-कॅवल कंपनी जैसे कारखाने होते। बहुत...

खन्ना : (उछलते हुए) प्रोफेसर कथूरिया, आप एक मौलिक विचारक हैं। आप पशिचम में होते तो 'अभिनव-डार्विन' घोषित कर दिए जाते। काश, मोलिअर को इन विचारो से लाभ हो पाता ! तब संसार संपन्नतर होता—संपन्न अर्थात् धनी, तर अर्थात् रससिक्त ! (हँसी नहीं रुक पाती।)

कथूरिया : तो आप इन विचारों को प्रहसन या कॉमेडी का विषय समझते हैं ? ठीक है, अपनी-अपनी पहुंच और पकड। कुछ अंधो ने एक हाथी को देखा था; सबके तजुर्बे अलग-अलग थे। मैंने यह विचार भी किया है कि यदि



मनुष्य के पूंछ होती तो चमचागिरी में उसका योगदान कैसा होता। खीसें कम निपोरनी पड़तीं, पूंछ ही काफी-कुछ काम निवटा लेती !

खन्ना : आपने गलत समझा। क्या आप मोलिअर और उसकी कृतियों को साधारण समझते हैं ? क्या मोलिअर शेक्सपीअर के स्तर का नाट्यकार नहीं है ?

कथूरिया : (आश्वस्त होकर) मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता....

खन्ना : साहित्य जीवन का अंग है। कोई विषय जीवन से पृथक् नहीं होता, नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्येक विषय साहित्य मे अल्प या अधिक महत्त्व अवश्य रखता है। साहित्य प्रत्येक व्यक्ति का सांझा धन है। इस स्थिति में, आपका विषय साहित्य से दूर नहीं रह पाएगा।

कथूरिया : वह बात और है....

खन्ना : (अकस्मात् उछलकर) एक नया विचार ! एक मौलिक विचार !

कथूरिया : (उत्सुक होकर) आप और विचार ! आप और नया विचार !! आप और मौलिक विचार !!! ....जरा सुनूं तो ?

खन्ना : (विश्वासपूर्वक) प्रत्येक मनुष्य एक विचारक होता है। प्रत्येक मनुष्य जन्मना एक विचारक होता है। किसी की परिस्थितियां उसे विचारक के विशेषण से अलंकृत कर देती हैं, किसी की नही कर पाती। ब्रह्मांड में अनेक सूर्य हैं, जिनका पता तक नहीं।....

कथूरिया : अच्छा, विचार तो बताइये।

खन्ना : इस विषय का नाम सूझ गया है।

कथूरिया : (उचककर उत्सुकता से) क्या ?

खन्ना : पुच्छशास्त्र। टेलोलॉजी। इस शास्त्र का स्थान समाजशास्त्र और जीवविज्ञान के मध्य स्थि‍ किया जाएगा। यह सामाजिक शास्त्रों और विशुद्ध विज्ञानों के मध्य सेतु का कार्य संपादित करेगा। इसमें वानरजाति के विकास को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा। वालि, सुग्रीव, अंगद, हनुमान्, नल, नील इत्यादि वास्तव में वानर-नर के

मध्य 'लुप्त संबंधसूत्र' या 'मिसिंग लिंक' की समस्या के समाधान हैं। डार्विन ने यदि रामायण पढ़ी होती तो उन्हें 'मिसिग लिंक' के लिए इतना न भटकना पड़ता....

(बैरा दो कप कॉफी रख जाता है।)

'यदि डार्विन ने रामायण पढ़ी होती !' क्या टॉपिक है। हां, तो पुच्छशास्त्र के अध्ययन का क्षेत्र कपिवंशशास्त्र, नृवंशशास्त्र, वाल्मीकि-रामायण और डार्विन के विकासवाद इत्यादि तक प्रसरित होगा। वैसे भी 'योग्यतम का अस्तित्व' या 'सरवाइवल ऑफ द फ़िटेस्ट' पुच्छसंपन्न प्राणियों की वृत्ति के निकटतर है। (प्याले पर ओंठ लगाते है।)

कथूरिया : (कॉफ़ी पीने का प्रयत्न करत हुए क्योंकि वह गर्म है।) मिस्टर खन्ना, आप सचमुच एक चिन्तक है। शास्त्रीय पक्ष पर तो मैने भी विचार किया था किन्तु पुच्छशास्त्र या टेलोलॉजी जैसे सुन्दर नामकरण का श्रेय केवल आप पाएंगे। यदि यह शास्त्र बन सका तो मै और आप दोनों इसके जनक कहे जाएंगे। मार्क्स और एंजेल्स ने भी तो मिलकर लिखा था। वायुयान का आविष्कार भी एक नहीं दो ने किया था। आपको....

(अचानक उनके दाएं कंधे पर एक भारी हाथ पड़ता है। वे गर्दन कुछ मोड़कर संबंद्ध व्यक्ति को देखते हैं। मिस्टर खन्ना भी ध्यान देते हैं। गहन श्यामल वर्ण, दरमियाना कद, कुछ स्थूल शरीर, दो दांत मुखसीमा-विद्रोही, आयु लगभग पचास, मस्तक पर लाल तिलक, आंखों पर धूप का हरा चश्मा, झकाझक कुर्ता और लकालक धोती की पोशाक।)

हैलो मिस्टर बजरंगदास ! बाद मुद्दत के फंसा है ये पुराना चंडूल !

खन्ना : क्या हालचाल है ?

बजरंगदास : (खाली कुर्सी पर बैठते हुए) 'हाल' के हालात मे तो हमेशा ही रहते हैं और 'चाल', 'वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी सो अब भी है'....

(मिस्टर खन्ना बैरे को बुलाकर एक कप कॉफ़ी और मंगाते हैं।)

कथूरिया : अगले चुनाव में क्या इरादा है ?

जरंगदास : सोचूंगा ! 1952 का लड़ा, 57 का लड़ा, 62 का लड़ा, 67 का लड़ा, 71 का लड़ा, 77 का लड़ा, 80 का लडा, 84 का लड़ा, 89 का लड़ा, और 91 का लड़ा—पर नतीजा ? वही ढाक के तीन पात ! हर बार ज़मानत ज़ब्त ! इसलिए, अगले चुनाव में दो बार सोचूंगा। भारत का आम वोटर गधा है। यहां जरूरत न फैक्ट्रीज़ की है न फ़ार्म्स की, न यूनिवर्सिटीज़ की न पॉलीटैक्नीक्स की, न पार्लमेन्ट्स की न असेंबलीज़ की—यहां जरूरत है गैस-चैम्बर्स की ! काश, अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन, इस्राइल अपने सारे अणुबम और उद्‌जनबम भारत पर गिरा देते ! तब यहां एक राष्ट्र का निर्माण हो पाता। धेलहे नेता अरबों का अपव्यय कर अपनी विश्व-छवि सुधारते हैं।

कथूरिया : बात आपके चुनाव लड़ने की थी।

जरंगदास : वही तो स्पष्ट कर रहा हूं—गधों के देश के खच्चर नेता! खच्चर से सृष्टि कहां ? भारत को प्रजातंत्र लगभग मुफ्त में मिला है। वह उसकी कीमत क्या जाने ? पश्चिम के देशों ने शताब्दियों तक लड़कर, बलिदान कर, क्रांतियां कर, परीक्षण कर, प्रयोग कर, प्रजातंत्र को पाया और विकसित किया है। वे उसकी क़ीमत जानते हैं। भारत का प्रजातंत्र—हा-हा-हा ! न यूरोप में हिटलर होता न भारत में प्रजातंत्र !

कथूरिया : (मुस्कराते हुए) हिटलर और भारत का प्रजातंत्र। कुछ समझा नहीं ?

खन्ना : (हँसी को दबाते हुए) बात कुछ अजीब-सी है।

जरंगदास : (ओजस्वी स्वर में) सच बात हमेशा समझ में नहीं आती, अजीब लगती है। लेकिन वह होती है एकदम सीधी-सादी। न हिटलर होता, न द्वितीय विश्व युद्ध होता, न ब्रिटेन-फ्रांस जीतकर भी पिछड़ते, न अमेरिका-रूस आगे आते, न साम्राज्यवाद-उपनिवेशवाद समाप्त होता और

न भारत इत्यादि कोडियो देश कोडी मोल चुकाकर स्वतंत्र होते—न भारत में तथाकथित प्रजातंत्र स्थापित होता !

कथूरिया : ओह, आप बहुत दूर तक चले गए !

बजरंगदास : बजरग दूर तक ही जाता था, जाता है, जाएगा।

खन्ना : वाह, क्या खूब कहा है ! संयोग की बात है कि हम दोनों की चर्चा बजरंग से ही संबंधित चल रही थी।

बजरंगदास : (गंभीर होकर) क्या ?

खन्ना : प्रोफेसर कथूरिया 'यदि मनुष्य के पूंछ होती' विषय पर मनन कर रहे हैं। आदिकवि वाल्मीकि की रामायण मे नर-वानर का साथ दिखलाया गया है, सहयोग दिखलाया गया है। इसलिए, इस विषय का आधार विद्यमान है। डार्विन का विकासवाद वानर को नर का पूर्वज घोषित करता है। विषय को वैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी प्राप्त है। वाल्मीकि डार्विन की 'विलुप्त संबंधसूत्र' या 'मिसिग लिक' की समस्या सुलझाते हैं। साहित्य एवं समाजशास्त्र से नृवंशशास्त्र एवं जीवविज्ञान तक प्रसरित इस विषय का नाम पुच्छशास्त्र या टेलोलॉजी होगा।

कथूरिया : यों, साहित्य के ग्रंथ के द्वारा भी इस शास्त्र का समारंभ किया जा सकता है। वॉल्टेअर और रूसो ने अपने नाटकों और उपन्यासों के द्वारा अपने-अपने दर्शनों का प्रतिपादन किया है। मैं अंग्रेजी-साहित्य का आदमी हूं। इसलिए साहित्य से ही आरम्भ करूंगा। किन्तु मेरी रुचि समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास इत्यादि से भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीव-विज्ञान इत्यादि तक प्रसरित है। फलतः मैं इस दिशा में प्रयास का इच्छुक हूं। लेकिन विषय की जटिलता....

खन्ना : प्रोफ़ेसर कथूरिया सूरज के तले के सारे विषयों को जानते हैं, वे सब पर बोल सकते हैं, सब पर लिख सकते हैं....

कथूरिया : आप आदमी इतिहास के हैं, पर साहित्य में अच्छा दखल रखते हैं....

खन्ना : साहित्य और इतिहास सहोदर हैं। दोनों....

: मिस्टर बजरंगदास, इस विषय का नाम पुच्छशास्त्र या टेलोलॉजी मिस्टर खन्ना ने ही सुझाया है। मैं इस कठिन विषय पर इनके साथ मिलकर काम करूंगा; मार्क्स-एंजेल्स और राइट-ब्रदर्स के इतिहास की पुनरावृत्ति होने वाली है। यदि आप कुछ सहायता कर सकें तो कृपा होगी। क्षमा करें, आपकी रुचि किस विषय में है ?

: (ओजस्वी स्वर में) मेरी रुचि सारे विषयों में है। विज्ञान की कई जटिल समस्याओं पर मैंने मौलिक चिन्तन किया है। उदाहरणार्थ, 'यदि पृथिवी लगातार खोदी जाए तो नीचे क्या-क्या निकलेगा ?' इस प्रश्न पर मैं बचपन से लगातार विचार करता आ रहा हूं। विषय इतना जटिल है कि किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सका। बात यह है कि विज्ञान प्रयोगात्मक शास्त्र है, सैद्धांतिक मात्र नहीं। और यह विषय मेरे तो क्या, भारत को क्या, एसिआ या अफ्रीका यानी समग्र पूर्व के बूते के बाहर है। इसीलिए मैं 'लंडन टाइम्स' में पत्र लिखने की सोच रहा हूं। पश्चिम सभवतः इस दिशा में कुछ कर सकता है क्योंकि इसका सामरिक महत्त्व भी अपार है—धरती को पचास किलोमीटर खोदकर उसमें पचास उद्जन बम रखकर विस्फोट किया जाए तो परिणाम अकल्पनीय हो सकते हैं। धरती को दो किलोमीटर खोदकर पड़ोसी देश तक सुरंग फैलाई तथा उसमे बारूद भरकर या अनेक अणुबम रखकर उड़ाया जा सकता है। जिस पश्चिम ने तारक-युद्ध या 'स्टार वार' की कल्पना की है वह भूगत-युद्ध की कल्पना भी कर सकता है। पश्चिम के पास साधन है, रुचि है, क्षमता है, किंतु अभी तक उसने भी इतनी महत्त्वाकांक्षापूर्ण महान् योजना नहीं बनाई। चद्रयात्रा, मंगलयात्रा, शुक्रयात्रा इत्यादि भूतल-उत्खनन के सामने कुछ नहीं है। यदि इस योजना को कार्यान्वित किया जाए तो विज्ञान के अनेक रहस्यों का उद्घाटन होगा, साथ ही, पाताल-लोक पर भी प्रकाश पड़ सकेगा। खैर, यह विषय जटिल है जिस पर मैं 1960 ई. से विशेष चितन-मनन कर रहा हूं और आप लोगो को इसमे

उलझाना नहीं चाहता, क्योंकि आप लोग प्रोफ़ेसर मात्र हैं। जहां तक आपके पुच्छशास्त्र या टलोलॉजी का संबंध है, आपको भारत के प्राचीन साहित्य का अनुशीलन करना पड़ेगा और, क्षमा करें, यह कार्य आपके बश का नहीं है, क्योंकि संस्कृत नहीं जानते। (बैरा कॉफ़ी का कप रख जाता है।)

कथूरिया : संस्कृत एक महान् साहित्य है; संभवतः समग्र संसार में महानतम। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि बिना उसे जाने किसी विषय पर कार्य ही नहीं किया जा सकता।

बजरंगदास : (कॉफी की चुस्की लेते हुए) पश्चिम ने सारी वैज्ञानिक और शास्त्रीय उन्नति संस्कृत को पढ़ने और समझने के कारण की है। भाषाविज्ञान या भाषाशास्त्र संस्कृत के अध्यन का परिणाम है। भारतीय विज्ञान या भारतशास्त्र या इंडोलॉजी संस्कृत के अध्ययन का परिणाम हैं। वर्ड्स्वर्थ का विश्वात्मा, शेली या शेले का बौद्धिक-सौंदर्य, इमर्सन का ब्रह्म, थोरो की प्रकृतिपूजा, ह्विट्मैन का 'रेस ऑफ़ ब्रह्म', इलिअॅट या एलिअॅट की 'शांति' जैसे सैकड़ों उदाहरण तो साहित्य में विद्यमान हैं। दर्शन मे शॉपनहॉएर का निराशावाद संस्कृत और उसकी पालित-पुत्री पालि से ही छनकर गया है। सुकरात का "निज को जानो", याज्ञवल्क्य के "अहं ब्रह्मास्मि" एवं उद्दालक के "तत्त्वमसि" से प्रेरित है। जहां तक प्लेटो का संबंध है, उसकी भारत-यात्रा विल ड्यूरां तक ने मानी है। प्लेटो के 'संवाद' या 'डायलॉग्स' उपनिषद् की प्रश्नोत्तर-शैली के परिणाम हैं; उसकी वर्णव्यवस्था, शाकाहार, आदर्श-प्रेम, आदर्श-राज्य या यूटोपिआ, सब भारतमूलक है। पश्चिम अब भारत का ऋण स्वीकार करने लगा है....

कथूरिया : और विज्ञान का विकास....

बजरंगदास : विज्ञान के विकास का कारण वेद का अध्ययन है। वेद का अर्थ ही ज्ञान है। विज्ञान ज्ञान में 'वि' उपसर्ग लगाकर बनता है जिसका अर्थ है ज्ञान की एक विशिष्ट शाखा। वेद में विज्ञान भरा पड़ा है। ऋग्वेद के नासदीय सूत्र में

सृष्टि जल से बताई गई है, जिसका अनुकरण मिस्र में किया गया, बाइबिल की 'जिनेसिस' या जनन या सृष्टि का वर्णन उसीसे प्रेरित है, थेलीज़ तो खैर बाद मे हुए--आज का विज्ञान भी इसे मानता है। मत्स्य अवतार का अर्थ यही है कि प्राणधारी जीव पहले जल में हुए। ऋग्वेद के ऋषि अंगिरा काष्ठ-घर्षण एवं तूल-प्रयोग द्वारा अग्नि की उत्पत्ति-विधि के आदि आविष्कारक थे, जिन्हे अग्नि का पिता माना गया है। अश्विनीकुमार-बंधुद्वय वैज्ञानिक एवं चिकित्सक थे, जिन्होंने विश्व की आदि-वीरांगना विश्पला के युद्ध में पैर कटने पर धातु के पैर लगाए, ऋषिका अपाला का कुष्ठ-निवारण किया, च्यवन को यौवन-दान दिया। ऋभुगण-बंधुत्रय भी वैज्ञानिक थे। अथर्ववेद आयुर्वेद का जनक है, जिससे यूनानी हिकमत निकली तथा एलोपैथी, होम्योपैथी इत्यादि विकसित हुई। तंत्र का आरंभ अर्थववेद से ही हुआ जिससे रेखागणित इत्यादि का विकास हुआ। इंद्रजाल भी अथर्ववेद से निकला। वेदों को पढ़कर ही पश्चिम वाले विज्ञान में चमत्कार कर सके....

ना : और ये नए-नए आविष्कार ?

स : (कॉफी समाप्त करते हुए) इस सृष्टि में कुछ भी नया नहीं है। इस सृष्टि में कुछ भी पुराना नहीं है। सब-कुछ चिरंतन है। कुछ मिटता है, कुछ बनता है। लोग इसी को पुराना कहते हैं, नया कहते हैं। पहले क्या नहीं था? ऋषि-मुनि सशरीर स्वर्ग या ऊर्ध्व-स्थित ग्रहों को जाते थे या नहीं ? नहुष उपग्रह नहीं तो और क्या था ? सारे ग्रहों के मानवीकरण प्राप्त होते हैं। राम पुष्पकयान द्वारा अयोध्या लौटे थे या नहीं ? अग्निबाण इत्यादि स्कड या पेट्रिअट से भी बढ़कर प्रक्षेपास्त्र थे या नहीं ? आज भी ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों का बूमेरेंग विलक्षण प्रक्षेपास्त्र है या नहीं ? कंस इत्यादि के प्रकरणों से पुष्ट आकाशवाणी पहले भी थी या नहीं ? संजय दूरदर्शन की सूचना देता है या नहीं ? विज्ञान पहले भी था, जो महाभारत में समाप्त हो गया। आधुनिक युग के महर्षि

आइंस्टाइन ने कहा था कि तृतीय विश्व युद्ध अणु-उद्जन अस्त्रों से लड़ा जाएगा और चतुर्थ ईंट-पत्थरो से—महाभारत इसका अतीतगण प्रमाण है। कालांतर में भी, कपिल ने भौतिकवादी, कणाद् ने अणुवादी चिंतन किया या नहीं ? आर्य भट्ट ने पृथिवी के गोल होने तथा परिक्रमा की बात की थी या नहीं ? मार्को पोलो भारत का विज्ञान इटैली ले गया जहां मध्यकालीन आर्य भट्ट गैलीलिओ हुआ और विज्ञान के विकास के नए आयाम खुले ।

(गौरवान्वित दृष्टि से प्रो. कथूरिया और मि. खन्ना को देखते है, प्रभाव-आकलन करते हैं।)

कथूरिया : प्राचीन भारत में सब-कुछ था, ऐसा कहने वाले बहुत हैं। किंतु ऐसे लोग पश्चिम में किसी आविष्कार होने के बाद ही क्यों कहते हैं ? पहले क्यों नहीं कहते ?

खन्ना : कल्पना सत्य का आरंभिक रूप है। पहले मनुष्य ने कल्पनाएं की थीं, अब आविष्कार कर रहा है। भारत और यूनान संसार के महानतम कल्पनाशील देश रहे हैं। उनकी कथाओं का महत्त्व अद्वितीय है, किंतु उन्हें सत्य मानना उचित नहीं।

बजरंगदास : जानने वाले पश्चिम में आविष्कारों से पहले भी विज्ञान-चर्चा करते थे और करते हैं—आकाशवाणी या संजय द्वारा दूरदर्शन एवं धृतराष्ट्र से वर्णन इत्यादि सदैव प्रचलित रहे हैं। आज कायाकल्प हो रहा है, जिसकी चर्चा पहले होती थी। प्रक्षेपास्त्र-चर्चा, वायुयात्रा-चर्चा पहले से ही होती आ रही है। दूसरे, प्राचीन मिस्र, प्राचीन मेसोपोटामिआ, प्राचीन ईरान, प्राचीन चीन, प्राचीन यूनान, कहीं ऐसी चर्चाएं क्यों नहीं की गई ? तीसरे, प्राचीन-नवीन में भेद क्यों ? भेद-दृष्टि अज्ञान-दृष्टि है, अभेद-दृष्टि ज्ञान-दृष्टि है। काल एक है; अतीत-वर्तमान-भविष्य मानवीय सीमाओं के प्रतीक विभाग मात्र हैं। विश्व एक है; पूर्व-पश्चिम इत्यादि हमारी सीमा-सुविधा के भेद मात्र हैं। मानव एक हैं; गोरे-पीले-गेहुएं-काले हमारी संकीर्णता के द्योतक मात्र हैं।

एडिपस या ओडिपुस नया है ? नहीं। किंतु फ्रायड का एडिपस-कॉम्प्लेक्स नया है। नार्सीसस नया है ? नहीं। किंतु फ्रायड का नर्सीसस-कॉम्प्लेक्स नया है! ज्ञान के विश्व में न कुछ नया है, न पुराना। वहां सब-कुछ चिरंतन है।

शूरिया : तब तो आपके अनुसार प्राचीन भारत में प्रजातंत्र भी था ?

ंगदास : मेरे अनुसार क्यों ? बुद्ध के समय अनेक गणतंत्र विद्यमान थे, जिनके अनुकरण में यूनान के नगर-राज्य बने। बुद्ध से पूर्व, अथर्ववेद मे निर्वाचित राजा का संकेत है। विल ड्यूरां प्रजातंत्र के लिए भी पश्चिम को पूर्व का ऋणी मानते हैं ! और आज का प्रजातंत्र है ही क्या ? विचार-व्यभिचार ! जिस शासन में अधिकांश जनता पौष्टिक भोजन, सुखकर वस्त्र, सभ्य आवास, शिक्षा, चिकित्सा, सुरक्षा के लिए तरसती हो और नेतागण इन सबको हड़प जाते हों, उसे प्रजातंत्र कहना प्रजातंत्र के मुंह पर तमाचा मारना मात्र है। जिस देश के महा-निर्वाचनो में प्रायः आधे या कम मत ही पड़ते हों ओर उनमें भी जाली मत, बूथ-कैप्चरिंग, वाहन-भ्रष्टाचार, दारू, रुपया, सब कुछ शामिल हो, वहां प्रजातंत्र वस्तुतः शब्दतंत्र है। जिस देश के निर्वाचन में प्रत्येक दल अपने घोषणापत्र के शव पर बीभत्स नृत्य करता हो, वहा प्रजातंत्र कैसा ? जहां दलबदल के रोक के कानून के दलदल में प्रजातंत्र मरता रहता हो, वहां प्रजातंत्र की अकड़ कैसी ?

खन्ना : तो फिर आप लगातार चुनाव क्यों लड़ते हैं ?

ंगदास : हारने के लिए ! तमाशा देखने के लिए : हर नेता एक मदारी होता है—देख तमाशा देख जमूरे देश तमाशा देख! गधों को बाप कहने के लिए ! लोग शराब पीते हैं, में चुनाव लड़ता हू !

(कुर्ते की जेब से सिगरेट का पैकेट और लाइटर निकालकर धूम्रपान करते हैं। दो मिनिट सन्नाटा।)

शूरिया : आप धूम्रपान करते है। इतने बड़े मंदिर के प्रधान है,

इतने उद्भट विद्वान् हैं। स्पष्ट है, प्राचीन भारत में धूम्रपान अवश्य होता रहा होगा ?

बजरंगदास : यज्ञ में प्राणदायी धूम्रपान अनायास हो जाता था। नीम की पत्तियों इत्यादि को जलाने से भी धूम्रपान हो जाता था। कुछ रोगों की धूम्र-चिकित्सा का प्रावधान भी था। किन्तु यह धूम्रपान मानवता के गले पड़ा नया रोग है—सचमुच गले पड़ा। पोटेटो, टोमेटो इत्यादि के बीच, टोबेको भी 'नई दुनिया' से आकर संसार पर छा गई। पूंजीवाद ने रोग को भोग बना दिया—क्या विज्ञापन निकलते हैं ! बचपन में देखा-देखी शौक चर्राया था, फैशन का चक्कर था, जो अब लत बन गया है।...(प्रवेश द्वार की ओर देखते हुए) अहा, प्रो. गुरचरनसिंह आ रहे हैं !

कथूरिया : टी टी. के. !

खन्ना : टी. टी. के. ? उनका तो देहांत....?

कथूरिया : टेरिबल टाइम किलर !

बजरंगदास : हा-हा-हा-हा ! प्रोफेसर कथूरिया, मैं आपको निरा ठूंठ समझता था; सोचता हूं, थोड़ा-सा गलत था। (सिगरेट का कश खींचते हैं।)

कथूरिया : (दाएं हाथ से धुएं को हटाते हुए) इसमें आश्चर्य कैसा? आप ठीक होते ही कब हैं ?

खन्ना : मिस्टर बजरंगदास, सिगरेट पर पैसा आप खर्च करते है लेकिन धुवां सबको मुफ्त में बांटते हैं....

बजरंगदास : मंदिर में प्रसाद बांटता हूं, कॉफी हाउस में धूम्र। जैसा स्थान वैसा दान।

(प्रोफ़ेसर गुरचरनसिंह हल्की उचकाऊ चाल चलते, हॉल का निरीक्षण करते, रुकते-रुकते, इधर बढ़ते हैं। आयु पचासेक वर्ष, इकहरा शरीर जो बहुत लंबा न होने पर भी बहुत लंबा लगता है, गेहुवां रंग, लंबा चेचकदार मुंह, मुस्कराती मुद्रा, हँसती आंखें, बेफिक्री से लबालब चाल।)

बजरंगदास : (उठकर) आइए, प्यारे दोस्त !

(प्रोफ़ेसर गुरचरनसिंह आते हैं, प्रोफ़ेसर कथूरिया उनके

बैठने के लिए चौथी कुर्सी से अखबार वगैरह उठाते है तथा घुटनों पर रख लेते हैं।)

खन्ना : बैठिए।

बजरंगदास : आज कुछ उखड़े-उखड़े-से नज़र आ रहे हैं ? बात क्या है ? मामला जज़्बाती दिखाई दे रहा है ?

(प्रॉफेसर गुरचरनसिंह चुपचाप बैठ जाते हैं। श्री बजरंगदास बैरे को बुलाकर एक कप कॉफ़ी का आर्डर देते हैं।)

खन्ना : क्या बात है ? कुछ बोल नहीं रहे। क्या नाराज़....?

रचरनसिंह : (एक सापेक्ष उपेक्षा के साथ, दूर सड़क की ओर देखते हुए) उसका उजला-उजला मुखड़ा ऐसा था जैसे अब हँसा अब हँसा ! उसकी काली-काली आंखें ऐसी थीं जैसे अब घूमीं अब घूमीं ! उसके लाल-लाल ओंठ ऐसे थे जैसे अब बोले अब बोले ! लेकिन, न वह हँसी, न उसकी आंखें घूमीं, न वह बोली ! खैर, होगा—

जब तक सहज रूप की प्यास,
तब तक जीवन में उल्लास।

(वे एक लबी और ठंडी सांस छोडते हैं।)

.जरंगदास : (मुस्कराते हुए) इश्क भी एक मर्ज़ है।

रचरनसिंह : (फिर एक लंबी और ठंडी सांस छोड़ते हुए) जिन्दगी ही एक मर्ज़ है। ज़िन्दगी एक ऐसा मर्ज है जिसका कोई इलाज नहीं। इंसान....

खन्ना : पर आप तो सरदार हैं....

रचरनसिंह : (अविचलित स्वर से) क्या सरदार इंसान नहीं....?

खन्ना : सरदार इंसान कैसे हो सकता है जबकि वह 'शेरा दी ओलाद' है और एक सरदार सवा लाख इंसानों के बराबर होता है ?

कथूरिया : सरदार मैन नहीं सुपर-मैन होता है; कम-से-कम ही-मैन। वह प्रधानमंत्री से जेनरल तक के सर्वोच्च वर्ग के किसी भी व्यक्ति की हत्या कर सकता है और इतने पर भी पूंछ हिलाते और खीसें निपोरते प्रधानमंत्रियों को लतिया सकता है—उसके साहस या दुस्साहस को नमस्कार !

रचरनसिंह : यार छड़ भी ! यहां मन उदास है और आप लोग हैं जो

मज़ाक-पर-मज़ाक किए जा रहे हैं।

बजरंगदास : इश्क बुरी बला है; फिर आज़ाद-इश्क। लाहौलविलाकूवत।

खन्ना : आज़ाद-इश्क पर प्लेटो से कीट्स और कबीर से प्रसाद तक किसी ने प्रकाश नहीं डाला अत. कुछ तफ़सील से....

बजरंगदास : इश्क़ और आज़ाद-इश्क़ एक ही जाति की दो वस्तुए हैं। इश्क़, इश्क है यानी किसी पर दिल का आ जाना। दिल्ली इश्क़ की नगरी है। मोहम्मदशाह रंगीला यहीं का था और उसका मज़ार यहीं पर है। यही पर बुड्ढा शराबी-कबाबी-जुआरी ग़ालिब आठ-आठ आंसू रोया था—

इश्क़ ने ग़ालिब निकम्मा कर दिया,
वर्ना हम भी आदमी थे काम के !

इस शेर को ग़ालिब ने शुरू में इस तरह लिखा था—

इश्क़ ने ग़ालिब तिकोना कर दिया,
वर्ना हम भी आदमी चौकोर थे !

लेकिन उन्होंने इसमें तरमीम की जिसका पता मुझे तब चला जब मैंने एक रिसर्च-स्कॉलर के सुपरवाइजर डॉक्टर को चेला बनाया....

खन्ना : बात आज़ाद-इश्क की थी। इश्क पर तो दिल्ली का बच्चा-बच्चा पूरी तख़रीरें दे सकता है। दिल्ली दिल की नगरी है जो नाम से ही ज़ाहिर है। हर एक फ़िल्लम मे इश्क़ फ़िल् किया जाता है। सुना है, दिल इश्क़ से सराबोर होता है ? फ्रायड....

बजरंगदास : आज़ाद-इश्क़ सदाबहार-इश्क़ होता है; मतलब कि आम तौर पर आठ से अस्सी वर्ष की आयु तक के सभी लोग करते और कर सकते हैं। ऐसा इश्क दिन में दस बार तक हो सकता है। प्रजातंत्र में स्वतंत्र-प्रेम या मुक्त-प्रेम का ज़ोर स्वाभाविक है। प्रजातंत्र और मुक्त-प्रेम सहोदर हैं।

कथूरिया : आपने आठ से अस्सी वर्ष की आयु के साथ 'आम तौर पर' शब्दों का प्रयोग क्यो किया है ?

बजरंगदास : ख़ास क़िस्म का इश्क़ करने वाले व्यक्ति किसी भी

बंधन से मुक्त होते हैं। दर अस्ल, आशिक़ तीन प्रकार के होते हैं। एक, जो जन्म से आशिक़ हाते हैं। दो, जो अपने दम के जलूसे पर आशिक़ बनते हैं। तीन, जिन पर इश्क़ लाद दिया जाता है। उर्दू-शायरी, नफ़ीस और लज़ीज़ उर्दू-शायरी, दिलकश उर्दू-शायरी का आधार लेते हुए, इस मजमून पर रिसर्च करने की सोच रहा हूं। वैसे मजमून और मजनूं शब्द बेहद निकट हैं और मेरा ख़्याल है कि मजमून लफ़्ज मजनू से ही निकला है !

खन्ना अस्सी वर्ष की आयु कुछ अधिक लगती है।

रंगदास : 'आठ वर्ष की आयु कुछ कम लगती है' कहते तो बात कुछ बन भी सकती थी, पर अस्सी वर्ष की आयु कहकर आपने साहित्य, इतिहास, फ्रायड, सब के ऊपर ध्यान नहीं दिया। गेटे ने अन्तिम प्रेम कब किया था ?

खन्ना : क्षमा करें, आप ठीक हैं।

रंगदास : (ओजस्वी स्वर में) लानत है उन साहित्यकारों पर जो बुड्ढों और बुड्ढियों के इश्क़ पर कुछ लिख नही पाते—क्या वे बयासी साल के नेता या राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री या मंत्री या इनके 'भूतों' अर्थात् 'भूतपूर्वो' की आंखों को उन्नीस साल की तारिका या नायिका या अभिनेत्री या नर्तकी को पुरस्कार देते समय या अलंकार प्रदान करते समय या उद्‌घाटन-भाषण-चाटन के समय रस से सराबोर होते नहीं देखते ? दूरदर्शन या अख़बारी-फोटो भी नहीं देखते ? मैरिलिन मुनरो ने साफ़ कहा था कि आयु में बड़े व्यक्तियों से प्रेम बेहतर होता है। वैसे भी, बुड्ढे-बुड्ढियां स्वच्छंद होकर इश्क़ कर सकते हैं। उनके इश्क का रंग कुछ और ही होता है। इश्क़ पर लौंडे-लफ़ाड़ियों का एकाधिकार नहीं है, इश्क़ सब का है।

थूरिया : प्रोफ़ेसर गुरचरनसिह को आप किस प्रकार का आशिक़ मानते हैं ?

रंगदास : मैं क्यों ? शोध के संसार में मैं-मेरा और तू-तेरा का मायाजाल होता ही नहीं। शोध का संसार वस्तुपरक होता है, व्यक्तिपरक नहीं। प्रोफ़ेसर गुरचरनसिह

आजाद-आशिक है।

खन्ना : उम्र का असर....?

बजरंगदास : फिर वही प्रतिक्रियावादी आयु-चर्चा ! वही ढाई चावलों की खिचड़ी ! वही ढाक के तीन पात ! च्यवन ने घोर बुढ़ापे में इश्क़ का चक्कर पाला था, ययाति ने भी ऐसा ही किया था, पराशर बुढ़ापे में मछुए की बेटी पर फिसल पड़े थे, मूसा ढलती उम्र में रूप पर ललचाए थे, मोहम्मद ने बुढ़ापे मे दन-दनादन शादियां की थीं, केशवदास ने बाबा कहे जाने पर सफ़ेद बालों को कोसा था, गेटे ने अस्सी साल की उम्र में आख़िरी मोहब्बत की थी, गांधी जईफ़ी में युवतियों से ब्रह्मचर्य-परीक्षण करते थे।

खन्ना : यदि मनुष्य के पूंछ होती तो आज़ाद-इश्क़ के सिलसिले से वह क्या-क्या गुल खिलाती, यह शोध का विषय है जो पशुओं के सूक्ष्म निरीक्षण की अपेक्षा करता है।

(अचानक डॉ. रमाकांत आकर खड़े हो जाते हैं। लंबा-चौड़ा साफ़ रंग का शरीर। पोशाक धोती-कुर्ते की। खोई-खोई आंखें, धोई-धोई नज़रें, रोई-रोई सांसें। आयु लगभग चालीस। बिखरे बाल। तीन दिनों की दाढ़ी। सब-कुछ धूल-भरा।)

बजरंगदास : आइए डॉक्टर साहब ! किस खंडहर से तशरीफ़ ला रहे हैं ?

(उठकर पास की टेबल से खाली पड़ी कुर्सी लाते, जमाते और बैठने का संकेत करते हैं।)

रमाकांत : (बैठते हुए) धन्यवाद। ज़रा तुग़लक़ाबाद चला गया था....।

बजरंगदास : मोहम्मद तुग़लक़ की क़ब्र पर ज़ियारत....।

कथूरिया : छोड़िए भी ! ....इतनी गर्मी में ? भरी दोपहरी मे ?

रमाकांत : (एक रूखी हँसी हँसते हुए) जब शरीर पसीने से तर हो जाता है तब मन भावों से भर जाता है। पसीने से तर शरीर को गर्मी नहीं लगती।

कथूरिया : क्या करने गए थे ?

रमाकांत : जीवन को पढने !

कथूरिया : खंडहर में जीवन को पढ़ने गए थे ? जीवन को तो

जीवित-स्थानों में ही पढ़ा जा सकता है....

रमाकांत : स्थान केवल स्थान होता है—जीवित-स्थान या मृत स्थान नहीं। फिर भी, तथाकथित जीवित-स्थान में शोर होता है, बहस होती है, चोंचें लड़ती हैं, लफ़्फ़ाज़ी का बाज़ार गर्म होता है। मेरी समझ में, इस सब के बीच जीवन खो जाता है। उसे ढूंढ़ना पड़ता है। खंडहरों की शांति में जीवन को ढूंढ़ना नहीं पड़ता। एक-एक पत्थर पर लिखी एक-एक कहानी अपेक्षाकृत सरलता से पढ़ी जा सकती है। मुझे खंडहरों से इश्क़ हो गया है।

खन्ना : यहां चर्चा भी इश्क़ की ही चल रही थी। आज़ाद-इश्क़ का विश्लेषण।

(बैरा पिछले आर्डर की कॉफ़ी रखने आता है तो प्रो. कथूरिया एक कप कॉफ़ी का ऑर्डर देते हैं तथा पानी लाने का निर्देश भी।)

रमाकांत : पर मैंने तो पत्थरों से इश्क़ किया है....

बजरंगदास : प्रायः सभी ऐसा ही करते हैं....

गुरचरनसिंह : (कॉफ़ी की चुस्की लेते हुए) हर माशूक़ एक पत्थर होता है। बुत् !

बजरंगदास : यह ज़ख़्मी दिल की फ़रियाद है।

रमाकांत : सरदार और इश्क़ ! बात कुछ अजीब लगती है।

गुरचरनसिंह : कोई दिल इश्क़ से महरूम नहीं। महरूम....

बजरंगदास : मरहूम शब्द दिल को दहला देता है। मरहूम और महरूम में नज़दीकी रिश्ता है ही ! वैसे, दुनिया ही अजीब है। गुरिल्ला, चिम्पांजी, सारस, शुतुरमुर्ग वग़ैरह भी इश्क फ़र्माते हैं....

गुरचरनसिंह : आप लोग तो हैं खिस्सू....

बजरंगदास : खस्सी कहिए !

गुरचरनसिंह हर बात पर ही-ही-ही-ही ! हर बात पर मज़ाक ! जिस देश के महंत, विद्वान्, प्राध्यापक ऐसे खिस्सू हों, उसका बेड़ा गर्क़ क्यों न होगा ?

बजरंगदास : (हाथ जोड़कर) यदि आपको कष्ट हुआ तो क्षमा-प्रार्थी हूं।

गुरचरनसिंह : (पानी-पानी होते) नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।

बजरंगदास : हँसी-मज़ाक ज़िन्दगी के भोजन में नमक है। गांधी ने कहा था कि यदि मुझमें हँसने का माद्दा न होता तो न जाने कब का आत्मघात कर चुका होता। मनुष्य हँस-हँस कर जीना चाहता है....

खन्ना : लेकिन प्रो. गुरचरनसिंह साधारण मनुष्य नहीं, सरदार हैं।

(प्रो. गुरचरनसिह ज़ोर-से हँसते हैं, प्रो. कथूरिया सिर्फ हँसते हैं, मि. खन्ना मुस्कराते हैं, श्री बजरंगदास ज्यों-के-त्यो रहते हैं, डॉ. रमाकांत छत की ओर देखते हैं। एक मिनट सन्नाटा।)

बजरंगदास : (यकायक कुछ याद-सा करते हुए) ओह, डॉक्टर रमाकांत, आपको अंधक....

रमाकांत : अंधक ? अंध करने वाला या अंधकार करने वाला ? कौन ? नेता ?....

बजरंगदास : व्यापक शब्द है किन्तु मेरा अभिप्राय प्रकाशक से है जिस पर आपने लिखा है—

प्रकाशक हैं आप
किन्तु अंधकार फैलाते
वाणी के वितान में
अपनी अंधेर से !

एक मित्र निकल आया। है तो इलाहाबाद का, लेकिन दिल्ली आया है और पास ही हॉटेल जनपथ में ठहरा है। चलिए, मिलवा दूं।

रमाकांत : (प्रसन्न होकर) चलिए।

कथूरिया : कॉफी तो पी लेते !

रमाकांत : (उठते हुए) अभी आया, हॉटेल जनपथ है ही कितनी दूर !

(श्री बजरंगदास और डॉ. रमाकांत चल देते हैं। जाते-जाते बजरंगदास काउंटर पर अपना हिसाब चुकता करते चलते हैं।)

कथूरिया : यह बजरंगदास भी अजीब ख़ब्ती है। हर बात में टांग फंसा देता है—'सब जगह अड़ जाए इतनी बड़ी टांग है' ! इसका नाम तो गप्पूदास होना....

खन्ना : पर जानकारी अच्छी रखता है। आम तौर पर धनवान मंदिर-प्रधान ऐसे नहीं होते। प्रगतिशील भी है। सिगरेट पीता है, कॉफ़ी पीता है, चाय पीता है....

रनसिंह : यू. पी. और बिहार के भइयों को देखते इसे क्रांतिकारी माना जा सकता है।

(तीनों हँसते हैं पर धीरे-धीरे।)

थूरिया : वैसे मैं मानवतावादी हूं, साम्यवाद में रुचि रखता हूं, पर हक़ीक़त को नकारना अयथार्थवादी होगा; अतः यह मानता हूं कि पंजाब का कोई मुक़ाबला नहीं। यू. पी. और बिहार के भइए भोंदू होते हैं—धोतीपरशाद—जमाने से कोसों पीछे। हिमाचली, राजस्थानी, एम. पी. वाले भइयों से भी ज़्यादा पिछड़े हैं। कश्मीरी फिसड्डी होते हैं—सस्ती चीज़ें खाते-खाते हरामख़ोर और खस्सी हो गए हैं। बंगाली, मद्रासी दमदार नहीं होते। पंजाब भारत की शान है। सेना, पुलिस, खेलकूद, फ़िल्म, सब तरफ पंजाबियों को बोलबाला है ..

खन्ना : हां, लेकिन सारी दुनिया पंजाबियों से जलती है। सब जगह पंजाबियों की आलोचना होती है।

रनसिंह : पंजाबियों से सब जलते हैं, क्योंकि वे सबसे आगे है। पैसा कमाने में पंजाबियों का कोई मुक़ाबला नही। पंजाबी बालू से तेल निकाल लेता है। पजाबी की शान निराली ! खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, सब में भारत में नम्बर एक ! इसीलिए, सब पजाबी से जलते हैं। इसीलिए, समस्या उत्पन्न की गई है जिससे भारत पिछड़े और पंजाब की उन्नति रुके....

खन्ना : बालू से तेल निकालने की प्रशंसा भी की जा सकती है, निन्दा भी।

थूरिया : सब लूटते हैं। कौन-सा व्यापारी नहीं लूटता ? मारवाड़ी, गुजराती, सिन्धी, चेट्टी, सब लूटते हैं। फिर, पंजाबियों की ही निन्दा क्यों ?

खन्ना : पंजाब मे कोई विश्वविख्यात महापुरुष उत्पन्न नही हुआ....

रनसिंह : राज कपूर विश्वविख्यात था। फ़िल्म लाइन में पंजाबियो

का ज़ोर है।

(मि. खन्ना हँस पड़ते हैं, प्रो. कथूरिया मुस्कराते हैं।) विश्वविख्यात का अर्थ है, विश्व अर्थात् संसार में विख्यात अर्थात् प्रसिद्ध। क्या राज कपूर विश्वविख्यात नहीं है ? फ़िल्म-लाइन कोई मामूली लाइन नहीं—अमेरिका का एक तगड़ा राष्ट्रपति रेगन या रीगन कभी एक्टर था, तमिलनाडु के दो मुख्यमंत्री अन्नादौरे और करुणानिधि कभी फिल्मी-कथाकार थे और रामचंद्रन कभी हीरो हुआ करता था। जयललिता हीरोइन, आंध्र के स्व. एन. टी. रामाराव भी हीरो हुआ करते थे, पृथ्वीराज कपूर, नर्गिस, अभिताभ बच्चन, सुनील दत्त, वैजयंतीमाला, राज बब्बर, शत्रुघ्न सिन्हा इत्यादि सांसद....

खन्ना : ठीक है, पर ख्याति के कई प्रकार होते हैं....

गुरचरनसिंह : आप पजाबी होकर पंजाबी की आलोचना करते हो; आप गद्दार हो !

खन्ना : अगर सच्चाई की चर्चा करना गद्दारी है, तो मुझे गद्दार होने मे फ़ख्र है।

गुरचरनसिंह : पंजाबी सारी दुनिया का सिरमौर है। पंजाबी सारी दुनिया की महानतम भाषा है। जो पंजाबी ऐसा नहीं समझता उस पर लानत है। आतंकवादी उसे ठीक ही मारते रहे हैं....

खन्ना : लानत उस पर जो अपनी ढपली पर अपना राग ही अलापता रहता हो !

गुरचरनसिंह : जुबान पर लगाम रखो, वर्ना क्या पिद्दी और क्या पिद्दी का शोरबा...

खन्ना : गीदड़भभकी किसी और पर !

कथूरिया : चुप रहिए, यह कॉफ़ी हॉउस है ! जरा-सी चीं-चपड़ हुई कि लोग-बाग हँसी उड़ाने लगेंगे, बैरे दौड़ आएंगे, नाहक बदनामी होगी—दिन के आठ घंटे जहां बीतते हों, वहां सावधानी से काम करना चाहिए। सांप भी बांबी में सीधा घुसता है।

(तीनों चुप रहते हैं। दो मिनिट।)

कथूरिया : प्रोफ़ेसर गुरचरनसिंह, आपको साहित्य अकादमी अवार्ड

कब मिल रहा है ?

गुरचरनसिंह : इस साल...

कथूरिया : पक्का ?

गुरचरनसिंह : पक्का ! चेयरमैन अपने पंजाब का ही है और अपना यार !

कथूरिया : सुना है, बंगाली सेक्रेट्री किसी औरत..

गुरचरनसिंह : खोता है ! उसकी दाल नहीं गलने की। मैं सीनिअर....

कथूरिया : तो हो जाए कुछ।

गुरचरनसिंह : बोलिए ?

कथूरिया : यहां नहीं, क्वालिटी या लगूना में—गर्मी ज़ोर की है न!

गुरचरनसिंह : चलो।

(प्रो. कथूरिया उठते हैं—साथ ही प्रो. गुरचरनसिंह भी; मि. खन्ना बैठे रहते हैं।)

कथूरिया : मिस्टर खन्ना, आप भी उठिए; आ..

खन्ना : मूड नहीं है।

कथूरिया : आपके बिना मैं भी नहीं जाऊंगा....

गुरचरनसिंह : ओए खन्ने, उठ ! कुड़ी बना रूठा....

(दोनों एक-एक हाथ पकडकर खन्ना को उठाते हैं। तीनों चलते हैं। प्रो. कथूरिया और मि. खन्ना अपना-अपना हिसाब चुकाते हैं। द्वार पर ही श्री बजरंगदास और डॉ. रमाकांत मिल जाते हैं।)

बजरंगदास : अरे, आप लोग कहां जा रहे है ? हम दोनों तो आप तीनों के कारण ही....

गुरचरनसिंह : (कुछ पल रुककर) ज़रा एक फ्रिज़ देखने जा रहे हैं। पलक झपते ही आए। आप लोग पसीना सुखाइए।

(तीनों निकल जाते है। श्री बजरंगदास और डॉ. रमाकांत आकर बैठ जाते हैं।)

बजरंगदास : देखा !

रमाकांत : (चकित-सा) क्या ?

बजरंगदास : इन तीनों पंजाबियों को ?

रमाकांत : क्या ?

बजरंगदास : आप भी माटी के माधो ही रहे ! तीनों कही खाने-पीने

निकल गए, पर बहाना फ्रिज़ का....

रमाकांत : ओह !

बजरंगदास : पंजाबी कभी सच्चा मित्र नहीं हो सकता।

रमाकांत : भारत का विकास तभी होगा जब सीधे-सादे लोगों की लूट रुके। सबसे अधिक दयनीय दशा हिन्दी-क्षेत्र की है जो भारत का हृदय है, सर्वस्व है। हिन्दीभाषी लोगों का अपराध यह था कि वे 1857 से 1942 तक और 1975-77 में भी विदेशी और देशी अत्याचारों से जूझे। स्वतंत्रता-संग्राम के अगुवे ही पिछड़ गए क्योंकि पिछाड़े गए ! बलिदान हिन्दीभाषियों ने अधिक किए, शोषण दूसरे अधिक कर रहे हैं....

(प्रो. कथूरिया, प्रो. गुरचरनसिंह और मि. खन्ना के साथ श्री देवीदत्त का प्रवेश। श्री देवीदत्त साधारण आकार-प्रकार के व्यक्ति है। आयु लगभग पचास। पोशाक धोती-कुर्ता-टोपी की। नेता लगते भी हैं।)

बजरंगदास : आइए नेताजी, प्रोफ़ेसर कथूरिया 'यदि मनुष्य के पूंछ होती' विषय पर ग्रंथ लिखना चाहते है और मि. खन्ना सहयोग ...

देवीदत्त : (बैठते हुए) लेकिन प्रोफ़ेसर कथूरिया ने प्रोफेसर गुरचरनसिंह के होते हुए ऐसा दुस्साहस किया कैसे और बजरंग तो इस विषय में प्रेरणा देंगे ही....

(प्रोफेसर गुरचरनसिंह पास से कुर्सी लेकर बैठते हुए सुनते हैं, प्रोफेसर कथूरिया पहले से पड़ी कुर्सी पर बैठकर। सब ज़ोर-जोर से हँसते हैं।)

खन्ना : जिसका काम उसीको छाजे !

बजरंगदास : दूजा करे तो डंडा बाजे !

कथूरिया : पर मै करूं तो बाजा बाजे। वस्तुपरक विवेचन में व्यक्ति क्या ?

रमाकांत : वस्तु व्यक्ति-निरपेक्ष नहीं हो सकती....

कथूरिया : आप डॉक्टर होकर ऐसा कहते हैं ?

खन्ना : हिन्दी में डॉक्टरों की क्या कमी ? कोई विषय न आया तो हिन्दी में एम. ए. किया, गद्दीनशीनों की चाकरी की और डिविज़न बनाया, मठाधीशों की कदमबोसी की

और डॉक्टर बन बैठे। हिन्दी में सिर्फ डॉक्टर मिलेंगे, कंपाउण्डर और नर्स नहीं ! अज्ञेय पर डॉक्टर से मिला और व्यक्तिवाद पर पूछा तो उसने टका-सा मुंह बना दिया, मुक्तिबोध पर डॉक्टर से मिला और ओरांगऊटांग पर पूछा तो उसने बोदा-सा थोबड़ा लटकाकर गधे की गंभीरता से कहा—यह एक वेरी सीरिअस सिबल है पर बार-बार कोंचने पर भी इसी तोतारटंत से बाज न आया. ..

: जेसे दवाई वालों मे आर. एम. पी. पूरा डॉक्टर होता हे वैसे ही हिन्दी में पी-एच. डी. पूरा डॉक्टर होता हे, क्यों डॉक्टर रमाकांत ?

: चलिए, इस परोक्ष नवसमाचार से हर्ष हुआ कि अन्य विषयों के डॉक्टर दिग्गज विद्वान् होते हैं—पंजाबी के डॉक्टर गुरुग्रथसाहब को पंजाबी-ग्रंथ बताने का आविष्कार कर राष्ट्र की सेवा करते हैं और इतिहास के डॉक्टर दिल्ली में बैठे-बैठे अयोध्या को बाबरपुर सिद्ध कर धर्मनिरपेक्षता का विकास करते हैं—गुरुग्रंथसाहब जेसे विशाल ग्रंथ को कौन पढे, अयोध्या कौन जाए जहा पाच-सितारा हॉटल नहीं हैं ? पंजाबी डॉक्टर हिन्दी को ग्रीक बताता है, इतिहासकार 'वीर बंदासिह बैरागी' लिखकर अमर होता है....

: झाड़े रहौ कलट्टरगंज ! डॉक्टर रमाकात, आप कानपुर के हे ? क्या नहले पर दहला नहीं बल्कि तुरुप का एक्का मारा है।

: सब विषयों में ह्रास हुआ है। लेकिन हिन्दी मे डॉक्टर बहुत हो गए है, इसलिए साहित्य में नए-नए रोग दिखाई देने लगे हैं। जहां डॉक्टर होंगे वहां रोग जरूर होंगे; नही तो क्या डॉक्टर घास छीलेगे ? और, मैंने आज तक कोई स्वस्थ महाडॉक्टर नहीं देखा—पैंतीस से ही रोगी।

: बात बावन तोला पाव रत्ती चौकस है ! जहां डॉक्टर होगा वहा रोगी अवश्य होगा, जहा पुलिस वाला होगा वहां अपराध जरूर होगा, जहां नेता होगा वहा भ्रष्टाचार होगा....

देवीदत्त : नेता और भ्रष्टाचार ! नेता और भ्रष्टाचार ! नेता और भ्रष्टाचार ! क्या नेता के आगे दुम हिलाने वाले प्रोफ़ेसर, कवि, धर्मध्वज, विद्वान् गंगाजल हैं ? क्या नेताओं से पहले भ्रष्टाचार न था ?

गुरचरनसिंह : न !

देवीदत्त : कैसे ?

कथूरिया : तब चोरी थी, डकैती थी, बटमारी थी, घूसखोरी थी, पर भ्रष्टाचार न था। आप अपवाद हो सकते हैं, पर....

बजरंगदास : कोई अपवाद नहीं हो सकता। काजल की कोठरी में कैसो हूं सयानो जाय एक लीक काजर की लागिहे पै लागिहै !

देवीदत्त : ये हारे हुए सिपाही के विचार हैं।
(श्री बजरंगदास समेत सब हँसते हैं।)

गुरचरनसिंह : लेकिन बात तो हिन्दी के डॉक्टर की चल रही थी ?

बजरंगदास : बात पर घात बुद्धिजीवी की पहचान है। बात पर बात नेता करता है, अभिनेता करता है, तस्कर करता है, उद्योगपति करता है, व्यापारी करता है, अधिकारी करता है, अपराधी करता है, डॉक्टर करता है, एजिनीअर करता है, वकील करता है, न्यायाधीश करता है—बुद्धिजीवी नहीं। यदि बुद्धिजीवी बात पर बात करे तो उसे कौन घास डालेगा ? मेरा मंत्र है—

बात पर घात—
बुद्धिजीवी का दाल-भात !

खन्ना : हां तो डॉक्टर रमाकांत, हिन्दी के डॉक्टर....?

रमाकांत : व्यंग्य अभाव का पुत्र है। विद्रूप कुंठा का परिधान है। लैम्ब रोने से बचने के लिए हँसता था, वॉल्टेअर क्रांति कराने के लिए हँसता था। हिन्दी के डॉक्टरों के प्रति अन्य विषयों के अडॉक्टरों की ईर्ष्या स्वाभाविक और क्षम्य है। वे रोना छिपाते हैं। वे हिन्दी के डॉक्टरों से प्रेरणा चाहते हैं। हिन्दी के अध्येता के पैर अपनी जमीन पर होते हैं। उसके चश्मे के नम्बर अपनी नजर के होते हैं। अन्य विषयों के अध्येताओं के पैर अपनी जमीन पर नहीं होते। उनके चश्मों के नम्बर दूसरों की नज़र

के होते हैं। उन्हें बैसाखी दूसरे बनाकर देते हैं, उन्हे दूसरो की नज़र से देखना पडता है। जिनके पास अपनी आखे ही नहीं वे डॉक्टर क्या खाक बनेंगे ? अब अपनी आखे खुलने लगी हैं, अतः देखते चलिए, अन्य विपयों के डॉक्टर हिन्दी के डॉक्टरों के पीछे लांग मार्च करते मिलेंगे! लेकिन बेचारे अंग्रेज़ी के डॉक्टरों पर कुछ कहना कठिन है। भापा संस्कृति की दुहिता है। साहित्य संस्कृति की रसना है। अपनी संस्कृति की अपनी भाषा और अपने साहित्य से सहज संगति रहती है। अंग्रेज़ी वालो की दशा विचित्र है : संस्कृति भारत की भाषा इंग्लैण्ड की और साहित्य अमेरिका का। त्रिशंकु भी घबरा जाए।

: आपकी बात मे सार तो है--विश्व के सर्वश्रेष्ठ नेता जवाहरलाल नेहरू तक ने अपने महान् और अमर ग्रथ 'डिस्कवरी ऑफ इडिआ' में कहा कि कला और साहित्य अनवरत रूप से विदेशी सांचों मे ढलने पर प्राणहीन हो जाते हैं : 'आर्ट एंड लिटरेचर रिमेन लाइफलेस इफ़ दे आर काटिनुअली बेस्ड ऑन फ़ॉरेन मॉडेल्स' । नेहरू ने कहा था : 'भारत में अंग्रेज़ी जानने वालों की अलग जाति बन गई है' ?

: और नेहरू उस जाति के प्रथम पुरुप थे !

: नेहरू भारत के मानवीकरण थे।

: नेहरू भारत के अंतिम वाइसरॉय थे।

: जुबान सम्हाल कर बोलो।

: चुप रहो।

: (हाथ जोडकर) यदि मनुष्य के पूछ होती तो इस समय श्री देवीदत्त और प्रोफ़ेसर कथूरिया कैसे लगते ? मिस्टर खन्ना, आप बता सकेंगे ?

(पर्दा गिरता है।)

एकांकी

10. कविरंजन शास्त्री

पात्र

कविरंजन शास्त्री : उम्र 45, साधारण शरीर, काला रंग, बिखरे खिचड़ी बाल, बेतरतीब दाढ़ी-मूंछ, गंदा पैंट-शर्ट, रद्दी चप्पल, कंधे पर फटियल थैला, दाएं हाथ की अंगुलियो में बीड़ी।

स्कूल के प्रधान : उम्र 30, कुछ मोटे, साफ़ रंग, सजे-वजे।

झा साहब : उम्र 25, चुस्त और सुन्दर, ठीक पोशाक।

कविराज जी : उम्र 20, साधारण शरीर, छोटे-छोटे बाल, धोती-कुर्ता-चप्पल।

स्थान-1 : स्कूल का दफ्तर।

स्थान-2 : कविरंजन कॉलेज।

स्थाल-3 : वही, पर एकदम खाली।

दृश्य 1

(प्राइवेट संस्था नेताजी हायर सेकंडरी स्कूल फज़लगंज, कानपुर का दूसरी मंज़िल का लटका बोर्ड जिसके पीछे दफ्तर, जहाँ स्कूल के प्रधान, झा साहब और कविराज जी बैठे बातें कर रहे हैं।)

प्रधान : पहले जब कविरंजन शास्त्री को देखा तब लगा कि ठेठ आगरा से छूटकर आ रहे हैं लेकिन जब बातचीत की तब चकित रह गया।

झा साहब : बेसी पढ़ा-लिखा आदमी का दिमाग की मसीनरी में कुछ पुर्जा ढीला हो ही जाता है।

लेकिन कविरंजन शास्त्री ने लड़कों को मोहित कर लिया। स्वयं वर्ड्स्वर्थ न पढ़ा पाते ऐसे !
तभी तो हम लोग कुछ ही देर रुके क्योंकि उनका परीक्षण क्या करते ? परीक्षक से परीक्षार्थी श्रेष्ठतर !
लेकिन प्रोनाउनसिएसन कुछ ढीला लगा।
जेसे ?
(कुछ रुककर) उस टैम याद था, अब बिसर गया !
(कविरंजन शास्त्री का प्रवेश।)
आइए शास्त्रीजी, आप विद्वान् भी हैं और सफल शिक्षक भी। सोने में सुगंध। कई लोग अच्छे विद्वान् होते हैं किन्तु अच्छे शिक्षक नहीं होते, कुछ लोग अच्छे शिक्षक होते हैं किन्तु अच्छे विद्वान् नहीं होते।
(कविरंजन शास्त्री मुस्कराते हुए बैठते हैं।)
आप सास्त्री की परिच्छा कहा से पास किए हैं ?
हम परीक्षा का शास्त्री नहीं है क्योंकि यह शब्द हमारा वंशानुगत विशेषण है। राइट ऑनरेबूल श्रीनिवास शास्त्री का नाम सुना है ? यह हमारा कुल का ही था !
ये कौन थे ?
प्रिवी कॉउसिल के मेम्बर और विश्व के एक महान् वक्ता। दिल्ली की श्रीनिवासपुरी इन्हीं के नाम पर है।
हमने इनको कविराज जी की पदवी दी है। यद्यपि आयु कम है तथापि उच्चकोटि के कवि हैं।
कविता का सबध आयु से नहीं, प्रतिभा से होता है—चैटर्टन, कीट्स, तोरु दत्त इत्यादि उदाहरण है।
(सिर हिलाते हुए) बिल्कुल ठीक है ! ये हेड ऑफ द डिपार्टमेन्ट ऑफ हिन्दी है—व्हेरी कॉम्पीटैन्ट।
(मुस्कराकर) और आप ?
हम हेड ऑफ़ द डिपार्टमेंट ऑफ मैथेमैटिक्स !
ओर कविरंजन जी हेड ऑफ़ इंग्लिश डिपार्टमेंट !
(कविरंजन बीड़ी सुलगाकर पीने लगते हैं। इससे कविराज जी नाक-भौं सिकोड़ते हैं। झा साहब हँसने लगते हैं। प्रधान आश्चर्य की मुद्रा में देखते है।)
कविरंजन जी, आपने इंग्लिस कहा पढ़ी ?

कविरंजन : (धुआ छोडते हुए) बी. ए. ऑनर्स मैड्रास से किया और एम. ए ऑक्सफोर्ड से !

(सब चकित होकर घूरते हैं।)

कई वर्ष इंग्लैण्ड में बच्चों को पढ़ाया लेकिन काला होने के कारण आदर की कमी न सहन कर विश्वयात्रा पर निकल पड़ा। (सूटा लेते और धुवां छोड़ते है) एक बार पढ़ा रहा था तो देखा, फूल-सी सुन्दर एक नन्हीं-सी बच्ची ने मेरा हाथ पर धीरे से अंगुली फिराया और अपने हाथ पर रगड़ कर मेरा और अपना हाथो का रंग मिलाने लगा। (सूटा लेकर चुप)

झा साहब : आप कबी हैं ? कबीरंजन ?

कविरंजन : (धुवां छोडते हुए जिससे कविराज जी को बहुत असुविधा होती है और कविरंजन इसे लक्ष्य करते हैं) हम अंग्रेज़ी में एक महाकाव्य 'सावित्री' लिख रहा है (अंग्रेज़ी ढंग से गाकर) ''टेल ऑफ् सावित्री इन पोएट्री'' उसका पहला पक्ति है !

कविराज : अरविन्द घोष ने 'सावित्री' पर गभीर महाकाव्य लिखा है ? (बीड़ी के धुएं से परेशानी सकेतित करते हैं।)

कविरंजन : औरोबिन्दो का 'सावित्री' दार्शनिक महाकाव्य है जिसमें सावित्री ब्रह्माण्डीय नारी का प्रतीक है और सत्यवान ब्रह्माण्डीय पुरुष का, हमारा 'सावित्री' कथाप्रधान महाकाव्य है (गाकर) ''टेल ऑफ सावित्री इन पोएट्री !''

कविराज : (व्यंग्य से) ओह !

कविरंजन : आपको हमारा बीडी से परेशानी है ?

कविराज : इस व्यसन से दूसरों को कष्ट होता है।

कविरंजन : (मुस्कराकर) व्यसन ! एक कथा कहता है। एक आश्रम में एक गुरु के पास कई शिष्य रहता था। उनमें से एक आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान था और गुरु के प्रत्येक क्रिया-कलाप का निरीक्षण करता रहता था। उसे ऐसा लगा कि गुरु जब शाम को टहलकर लौटता है तब कुछ लड़खड़ाता है। एक दिन छिपे छिपे पीछे लग गया। गुरु ने एक कलारिन के घर में जाकर मद्यपान किया। दूसरे दिन जब गुरु शाम को घूमने निकला तब उसने व्यंग्यपूर्वक पूछा, ''आप कहां घूमने जाता है ?'' गुरु ने त्राटक शक्ति से पूर्ण अपनी आंखें उसकी आखों में डालकर कहा, ''ऐसे ही ।'' शिष्य ने व्यंग्य गहरा करते हुए पूछा, ''मै

भी चलूं ?" गुरु ने कहा, "अवश्य !" किन्तु गुरु को अनुमान के विपरीत दिशा में जाता देख शिष्य चकित हो गया। वो एक लोहार की भट्ठी पर पहुंचा जहां लोहा पिघलाया जा रहा था। वो पिघलता हुआ लोहा का पात्र उठाया और पी गया ! पीकर वापस चल पड़ा। रास्ते मे पूछा, "सौम्य, तुम्हारा शंका का समाधान हुआ या नहीं ?" शिष्य रोकर पैरों पर गिर पड़ा। वो उसे हृदय से लगा लिया और बोला, "अपनी जगह तुम ठीक था !"

(कविराज जी परास्त, प्रधान और झा साहब चुप।)

(पटाक्षेप)

दृश्य 2

(खपरैली कच्चे फर्श की कोठरी, जिसकी दीवारें मिट्टी के गारे और पक्की ईंटों से बनी हैं। एक किनारे कोयले की अगीठी पर चाय की केतली चढ़ी है। आस-पास चाय का सामान ओर दो प्याले रखे हैं। बीच में दो बोरे पड़े हैं जिनमें एक पर कविरंजन तथा दूसरे पर कविराज जी बैठे बातें कर रहे हैं। दोनो बोरों के कोनों पर कुछ-कुछ कॉपियां और किताबें रखी हैं।)

कविराज : आपके अचानक स्कूल छोड़ने पर बड़ा आश्चर्य हुआ। दुःख भी हुआ क्योंकि आपसे प्रभावित था। लडकों से पूछा तो भी पता न चल सका। आज इधर कार्यवश जूही गोशाले की तरफ निकला तो उस परचून की दुकान पर आप दीख गए ! आप स्कूल से क्यों चले आए ?

कविरंजन : (सूटा लगाकर धुआं छोड़ते हुए) प्रधान कुल सौ रुपए देता था। आवास के नाम पर उस तिकोना कोठरी में तो बकरा का भी दम घुट जाता ! काम भी बहुत था। ऊपर से रोब ! हमने सोचा, इस गुलामी से निकलूं—अपना कॉलेज खोल दिया !

कविराज : (आश्चर्यचकित होकर, ज़ोर की आवाज़ मे) कहां ? कब ? कैसे?

कविरंजन : (मुस्कराकर, स्वयं उठते हैं और उन्हें उठाकर द्वार पर लाकर)

यहा ! अब ! ऐसे ! (द्वार के ठीक ऊपर आर्ट-पेपर पर लिखी इबारत दिखाते हैं—कविरंजन कॉलेज, गोशाला, जूही, कानपुर।)

कविराज : (किकर्तव्यविमूढ), ओह !

कविरंजन : (कविराज जी के साथ अंदर आकर बोरों पर बैठते हुए) अभी तो तीन छात्र हैं किन्तु संख्या बढ़ने की संभावना है। सस्था का बढने पर स्थान बदलकर आपको हेड ऑफ़ द डिपार्टमेंट ऑफ हिन्दी बना दूंगा।

कविराज : (किकर्तव्यविमूढ़) जी !

कविरंजन : (केतली उतारकर चाय बनाते और एक कप खुद लेते तथा एक कविराज जी को देते हैं) प्राइवेट स्कूल और कॉलेज वाला छात्रो का भी शोषण करता है, अध्यापको का भी; मैं शिक्षा को इस घटिया व्यापार से शोषण से मुक्त कराना चाहता हूं। (सिप)

कविराज : (प्रकृतिस्थ होते तथा सिप लेते) बहुत नेक इरादा है, लेकिन छात्र ?

कविरंजन : (प्याले से मुह हटाकर) अगर हम नियम नरम कर दे तो भीड लग जाए क्योंकि फ़ीस कम है और पढ़ाई बहुत, लेकिन नियमा पर समझौता संभव नही है।

कविराज : आपके नियम क्या हैं ?

कविरंजन : (गंभीर होकर) कोई छात्र मुस्करा नहीं सकता, पढ़ाई का समय उठ नही सकता, बिना पूछे बोल नहीं सकता, हमारा पढाया विद्या के बारे में किसी से एक शब्द बतला नहीं सकता; बस!

कविराज : (प्याले से मुंह हटाकर) नियम कुछ ज़्यादा सख़्त हैं ! (मुस्कराते हैं।)

कविरंजन : तो यह है भी कविरंजन कॉलेज !

(कविराज जी चुप रहते हैं।)

चाय कैसा लगा ?

कविराज : (प्रकृतिस्थ होते हुए) ग़जब की चाय है—गाढी, चॉकलेट-कलर, एकदम ठीक मीठी; मैं चाय कम पीता हूं, पर ऐसी कभी नही पी थी !

कविरंजन : ऐसा चाय का आठ कप आठ बार में पीकर हम महीनों रह सकता है। हमारा स्वर्गवासी पिता ऐसा ही चाय बनाता... (आवाज भरभरा जाती है, चुप हो जाते हैं) मां का तो याद भी नहीं है. ..(आसू आ जाते हैं) लेकिन पिता बताता कि मां भी

बहुत अच्छा था। (आंसू पोंछते हैं) रंगून में तीन मकान था, लेकिन पिता भी नहीं रहा, पत्नी भी नहीं रहा, एक नन्हा-सा बेटी था (ज़ोर-जोर से रोने लगते हैं) वो भी छोड़कर चला गया!

(कुछ पल सन्नाटा)

हम जायदाद बेचकर लंदन चला गया। बहुत पढ़ा, कुछ पढ़ाया भी और अब आप देख ही रहा है ! (मुस्कराते है।)

कविराज : (प्रकृतिस्थ होते हुए) ओह !

कविरंजन : थोड़ा समय में ही हम काफ़ी हिन्दी सीख लिया है (कुछ याद करते कमीज की जेब से अख़बारी काग़ज़ पर मामूली छपी एक आठ पृष्ठों की परिचयपत्र जैसी किताबिया निकालते हैं जिस पर कुछ बड़े अक्षरों का 'कविरंजन अथवा कविरंजन कॉलेज' शीर्षक लिखा है) और अब हम हिन्दी में भी महाकाव्य या उपन्यास लिख सकता है।

कविराज : (मुस्कुराते हुए) आपमे बहुत प्रतिभा है !

कविरंजन : हिन्दी-कविता में छंदबंध ढीला है, लय का नियम है ही नहीं, किन्तु हमने उसे मीटर में कसा है, एक्सेन्ट से सजाया है।

कविराज : यह हिन्दी को आपकी मौलिक देन है !

कविरंजन : (बोरे के कोने से एक सजि़ल्द किताब उठाते हैं) आप काव्य का आनंद लो, हम मीटर और एक्सेन्ट समझा देगा (किताब पर दाएं हाथ की बड़ी अगुली से टक्कर द्वारा एक्सेन्ट देते हुए) :

कानपूर के इस गोशाला में,
इन झक्कड़ लोगों के संगत में,
बढ़िया विद्या देने के'
कविरंजन ही आया है।

मीटर एकदम टाइट, एक्सेन्ट एकदम ठीक, तीसरा लाइन के अंत में के पर एपॉस्ट्राफी दे दिया है जिससे 'लिए' शब्द का संकेत हो जाता है।

कविराज : (हँसकर) एपॉस्ट्राफी का ऐसा प्रयोग हिन्दी-कविता में आपने पहली बार किया है !

कविरंजन : थैंक यू। आगे अपना मिशन क्लीअर किया है :

तरह-तरह के विद्या है,
कविरंजन के शाला में,

तरह-तरह के विद्या को,
कविरंजन पाढ़ाएंगे।

इस छंद में अंतिम शब्द के 'प' अक्षर के स्थान पर 'पा' कर दिया है जिससे छंद की गति ठीक रहे।

कविराज : (हँसकर) मात्राओं को दीर्घ या ह्रस्व तुलसी इत्यादि ने भी किया है।

कविरंजन : कविता जीवन का चित्र है। सच्चाई उभारा है :

मिश्रे, शुक्ले, तीवारी,
ये सब ख़तरनाक भारी,....

(बीच में रुककर) आप इनमें से कोई हों तो माफ़ करना ! सच लिख गया हू !

कविराज : कविता जीवन की समीक्षा है। समीक्षा मे न कोई शत्रु होता है, न मित्र।

कविरंजन : कविरंजन कॉलेज के ख़िलाफ़ प्रोपेगण्डा हो रहा है कि ये टूट जाएगा, कविरंजन भाग जाएगा, इसका क़रारा जवाब दिया है:

कविंरजन नहि छोड़ेगा,
गोशाला नहिं छोड़ेगा,
कविरंजन नहिं भागेगा,
कानपूर से या जूही से।

सब लोग कॉलेज देखकर जलता है। (बीड़ी सुलगाते हैं।)

कविराज : किसी को उठता देखकर गिरे हुए व्यक्ति जल-भुन जाते है। उठते हुए को उनकी चिन्ता नही रहती।

कविरंजन : आप हमारा ये काव्य खरीदेगा ? दाम बेहद सस्ता : कुल एक रुपया !

कविराज : (चकित होकर) ओह ! (एक प्रति लेते है तथा जेब से निकालकर एक रुपया देते हैं जिसे कविरंजन अपनी जेब में रख लेते हैं।)

कविरंजन : कुछ पुस्तकें बिकवाना !

कविराज : (मुस्कराकर) कोशिश करूगा।

कविरंजन : थैंक यू !

कविराज : इसमें धन्यवाद की क्या बात है ?

(पटाक्षेप)

दृश्य 3

(कविरंजन कॉलेज की कोठरी ख़ाली पड़ी है। ऊपर की आर्ट-पेपर की इबारत धुल गई है जिससे पेपर बदरंग हो गया है ! कविराज जी सामने चुपचाप खड़े हैं।)

कविराज : (जेब से 'कविरंजन अथवा कविरंजन कॉलेज' कितबिया निकालकर उलटते-पलटते है, दर्दभरी आवाज़ में पढ़ते हैं।)

कविरंजन नहिं छोड़ेगा,
गोशाला नहिं छोड़ेगा,
कविरंजन नहिं भागेगा,
कानपूर से या जूही से।

लेकिन...?

(दो दस-दस साल के गरीब लड़के जॉघिया-बनियान मात्र की पोशाक में आकर खडे हो जाते हैं।) क्यों भाई, कविरंजन शास्त्री कहॉ चले गए ?

एक लड़का : वह तो पागल था, कहीं चला गया !

दूसरा लड़का : रमता जोगी कहीं नहीं रमता !

(पटाक्षेप)

11. आचार्य गजानन पाण्डेय

पात्र

गजानन पाण्डेय : आयु लगभग 50 वर्ष, धोती-कुर्ता-पगड़ी-चप्पल, मस्तक पर चंदन।

मि० कुप्पूस्वामी : आयु लगभग 40 वर्ष, लुंगी-कमीज-चप्पल, मस्तक पर त्रिपुंड, चोटी, छोटे बाल।

स० तरलोचनसिंघ : आयु लगभग 40 वर्ष, पैंट-शर्ट-टाई-बूट, पगड़ी।

प्रो० कपूर : आयु लगभग 50 वर्ष, पैंट-शर्ट-बूट, गंजे, आँखों पर चश्मा।

2 बैरे, कुछ ग्राहक।

स्थान : कॉफ़ीहॉउस, सज्जा तदनुकूल।

(प्रो. कपूर और स. तरलोचनसिंघ आमने-सामने बैठे हैं। प्रो. कपूर के सामने पड़ी मेज पर 5 अख़बार, 3 पत्रिकाएं और 2 मोटी किताबें एक-एक-एक रखी हैं। उनकी दृष्टि दोनों हाथों में पकड़ी एक अन्य मोटी किताब पर टिकी है। स. तरलोचनसिंघ बैठे-बैठे कभी मूंछों की नोकें कड़क करते हैं, कभी पगड़ी सम्हालते है, कभी जम्हाई लेते हैं। 2 कुर्सियां खाली पड़ी हैं। एक मिनट यही दृश्य।)

स. : यार, छड भी ! तू तो निरा किताबी कीडा बनता जा रहा है।

क. : किताबी कीडा न बना तो असली कीड़ा बन जाऊँगा। असली कीड़ा होने से किताबी कीड़ा होना कहीं बेहतर है।

स. : (जम्हाई लेते हुए जिसके कारण आवाज़ बिखरी-सी है)—मैं विचारक हूँ, लोगों को पढने का सामान मुहैया करता हूँ—लोगों का सामान नहीं चुराता फिरता। पढ़ने से मौलिकता पर आघात लगता है।

क. : ठीक है, जब विद्यार्थी थे तब विद्या की अर्थी निकालते थे, अब

आधापक यानी अध्यापक हो गए हैं तो आधा पक गया ज्ञानरूपी-माल बेचते हैं।

विचार सुनेगा तो दंग रह जाएगा !

तो करो दंग या तंग। (वे हाथों में पकड़ी किताब सामने की गड्डी पर जमा देते हैं।)

(स. दोनों मूछों पर ताव देकर, छाती फुलाकर, दोनों हाथों को दोनो जार्घो पर जमाकर, मुँह खोलने जा ही रहे थे कि मि. कुप्पूस्वामी प्रवेश करते हैं।)

नमस्कारम् !

गुड डे !

(तीसरी कुर्सी पर बैठते हुए) क्या थिंकिंग हो रहा है जी ?

होने जा ही रहा था कि...

लो जी, सुनो; पंजाबी दुनिया की सबसे पुरानी जुबान है क्योंकि सृष्टि ही पंजाब से शुरू हुई थी। अभी जापानी विशेषज्ञों का दल आकर यह कह गया है।

सृष्टि तो सॉउथ से बीगिन हुआ था जी, क्योंकि विंध्याचल और दक्षिणी पहाड़ चार अरब साल ओल्ड है। हिमालिया तो नया पहाड़ है जी। जूलॉजी से औरकिओलॉजी तक सब यही बोलता है जी। वर्ल्ड का फर्स्ट बुक ऋग्वेद में तमिल का थर्टी-थ्री वर्ड्स है।

लेकिन इसका फैसला कौन करेगा कि पंजाबी ज्यादा पुरानी है या तमिल? यह तो कोई तटस्थ और बड़ा विद्वान् ही कर सकता है।

(कुछ क्षण शांति रहती है।)

(अचानक उछलते हुए) : लो फासला करनेवाला विद्वान् आ गया !

फ़ासला नहीं, फैसला !

सॉरी, फ़ासला...

फ़ालसा नहीं, फैसला !

इक्कोई गल्ल ऐ !

(उठकर खड़े होते हुए) : आइए आचार्य जी ! आइए आचार्य जी !!

(कुछ कदमों की दूरी से ही आचार्य ने दोनों हाथ जोड़कर 'नमस्कार' कहा और आकर चौथी कुर्सी के पास खड़े हो गए।)

(सोत्साह) आप हैं आचार्य गजानन पाण्डेय, इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंडोलॉजिकल रिसर्च के डाइरेक्टर !

(कु. ने करबद्ध 'नमस्कारम्' कहा; स. ने उन्हें ऊपर से नीचे तक

देखा—लगभग 10 सेकिंड तक, तब दाहिना हाथ बढ़ा दिया जिसे आ० ने दोनों हाथों के बीच में शिष्टाचारपूर्वक दबाते हुए मिलाया; क० ने खड़े होकर दायाँ हाथ बढ़ाया और आ० ने उसे भी अपने दोनों हाथों के बीच में लेकर प्रेमपूर्वक मिलाया।)

क. : खड़े क्यों हैं ? बैठिए न।

आ. : (बैठते हुए) विद्वानों के दर्शन बड़े सौभाग्य से होते हैं और जब ऐसा सौभाग्य प्राप्त होता है तब मैं बैठना-उठना, खाना-पीना, आना-जाना, सब-कुछ भूल जाता हूँ। (स० एवं क० की ओर संकेत करते हुए) आप दोनों विद्वानो का शुभ परिचय ? आपको तो जानता हूँ—तमिल के धुरंधर विद्वान् हैं।

कु. : (हाथ जोड़कर) आप हैं प्रोफेसर सर...

आ. : (मुस्कराकर) वह तो देख ही रहा हूँ !

कु. : तरलोचनसिंघ। खालसा कॉलेज में पंजाबी के लेक्चरर हैं।

स. : आप वर्ल्डफ़ेम का स्कॉलर है; सेन्सक्रिट, हिस्टरी, आरकीओलॉजी का अथॉरिटी !

आ. : (मुस्कराकर) मेरी मूल रुचि भाषाविज्ञान एवं प्राच्यविद्या...

स. : ए की होंदा ?

आ. : (मुस्कराकर) · इण्डोलॉजी।

(कुछ देर शान्ति।)

कु. : और आप हैं अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर कपूर...

स. : तो अचार जी, आप क्या करते हो ?

क. : मतलब कि आपके इंस्टिट्यूट ऑफ़ (कुछ रुकते हैं) फंडामेन्टल...

आ. : (मुस्कराकर) फंडामेन्टल नही इंडोलॉजिकल (वे कुर्ते की दाई जेब से विजिटिंग-कार्डस् की गड्डी निकालकर एक-एक कार्ड तीनों को देते हैं जिसे तीनों ऑखें फाड़कर देखते ही रह जाते हैं—स० का मुँह फैल जाता है, क० की ऑखें फैल जाती हैं, कु० के दोनों हाथ बँध जाते हैं।)

स. : गजब दा सोणा कारड ऐ !

क. : बहुत महँगा !

कु. : और इसी से पता चलता है कि आचार्य जी कितना बड़ा काम...

आ. : (दोनों हाथ जोड़कर, मुस्कराकर) भारतीय संस्कृति के उत्थान के लिए यह अनिवार्य है कि प्राचीन एवं दुर्लभ पाण्डुलिपियों की खोज की जाए। उदाहरण के लिए, कालिदास ने भास, सौमिल्ल और कविपुत्र इन तीन

महान् पूर्ववर्ती नाट्यकारों का उल्लेख किया है; इनमें से भास के नाटकों की खोज तो महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री जैसे दिग्गज विद्वान् के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हो चुकी है, और अभी बीसवीं सदी मे ही हुई है, पर सौमिल्ल और कविपुत्र के नाटकों का कहीं पता ही नहीं हे। हमारा इंस्टीट्यूट इस दिशा में प्रयत्नशील है। इसमे डेढ़ हज़ार दुर्लभ पाण्डुलिपियॉ विद्यमान हैं। किन्तु सौमिल्ल और कविपुत्र से संबधित कोई पाण्डुलिपि अभी तक हाथ नहीं लगी।

आप अचार हो, सिरफ संस्कृत की बात करते हो—भापा में संस्कृत, धरम में संस्कृत, करम में संस्कृत, जैसे पंजाबी भाषा और सिख पंथ कुछ है ही नहीं।

(मुस्कराकर) सरदार जी, ऐसा सभव ही नहीं है। पंजाबी एक महान् भाषा है। इसमें वारिसशाह जैसा कवि हुआ है जिसे मैं रूमी और जायसी की टक्कर का मानता हूँ। महान् साहित्यकार भाई वीरसिंह को मे पजाबी का शेक्स्पीअर सिद्ध कर चुका हूँ। पाकिस्तान में भी प्रयोग के कारण पंजाबी एक अन्तरराष्ट्रीय भाषा है। जैसे विश्व हिन्दी-सम्मेलन, विश्व तमिल-सम्मेलन, विश्व तेलुगू-सम्मेलन, विश्व कन्नड-सम्मेलन, विश्व बांग्ला-सम्मेलन इत्यादि होते है, वैसे ही एक विश्व पजाबी-सम्मेलन होना चाहिए। हमारा संस्थान इस दिशा में भी प्रयत्नशील है। (एक मिनट रुककर स० को आकृति का निरीक्षण एवं क० और कु० पर दृष्टिपात करते हैं। स० के चेहरे पर मुस्कान और चमक देखकर खुश होते हैं।) सिखपंथ एक महान् पंथ है। यह प्रगतिशीलता और धर्मनिरपेक्षता में अद्वितीय है। श्री गुरुनानकदेव जी महाराज ने बाबा फ़रीद की प्रशस्ति की है। श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज ने हरिमंदिर की नींव का पत्थर मियॉ मीर से रखवाया है। श्री गुरुगोविन्दसिह जी ने रामावतार, कृष्णावतार एवं चण्डीचरित रचे हैं।

(वे कुछ पल रुके। प्रभाव का आकलन किया।)

(हाथ जोड़कर)—आप ज्ञानी पुरुष हो !

इसमें ज्ञान क्या ? ये तो सर्वज्ञात तथ्य हैं ! सिखपंथ की प्रगतिशीलता के कारण ही आज सिख भाई संसार पर छा गए हैं। पहले कहावत थी "जहाँ न जाए रवि तहाँ जाए कवि"; अब मैंने एक नई कहावत गढ़ी है, "जहाँ न जाए करतार वहॉ जाए सरदार" ! जीवन के हर क्षेत्र में सिख सबसे आगे हैं। कहते है सरदार, पर हैं असरदार भी !

स. : (बैरे को बुलाकर) मेरे लिए एक मुर्ग़ा, साब (क० की ओर संकेत कर) के लिए एक कप कॉफी, इन साब (कु० की ओर संकेल कर) के लिए एक ढोसा और आप आ० की ओर संकेत कर) के लिए एक प्लेट स्पेशल फ्रूट-आइसक्रीम लाओ।

(एक मिनट सन्नाटा।)

क. : आचार्य जी, अंग्रेजी के बारे में आपका क्या विचार है ? क्या भारत में इस भाषा का कोई भविष्य है ? क्या...

आ. : अंग्रेज़ी आज विश्व की सबसे महान् भाषा है—आज के महान् अमेरिका की भाषा, कल के महान् ब्रिटेन की भाषा, संपन्न कैनेडा की भाषा, विशाल ऑस्ट्रेलिआ की भाषा, समृद्ध न्यूजीलैण्ड की भाषा और ब्रिटेन के सारे पूर्ववर्ती उपनिवेशों की प्रमुख ज्ञान-विज्ञान भाषा; यही कारण है कि आज रूस, फ्रास, जापान, चीन इत्यादि में भी विदेशी भाषा के अध्ययन में अंग्रेज़ी को शीर्षस्थ स्थान प्राप्त है।

(एक पल रुकते हैं। क० सिर हिलाते हैं।)

जहाँ तक भारत का संबध है, अंग्रेज़ी सर्वोपरि है, जैसाकि संविधान के "इडिआ, दैट इज़, भारत" से ही स्पष्ट है। संविधान अंग्रेज़ी मे है, संसद का प्रधान माध्यम अंग्रेजी है, राष्ट्रनिर्माता नेहरू अंग्रेज़ी के ग्रंथकार थे और वे इसे ताज़ा हवा और सेहत लानेवाली 'खिड़की' कहा करते थे। इस खिड़की के बद होते ही भारत का बौद्धिक स्वास्थ्य मटियामेट हो जाएगा, तहस-नहस हो जाएगा। भारत ने अंग्रेज़ी को अनेक साहित्यकार दिए हैं। अमेरिका और ब्रिटेन के बाद सबसे अधिक अंग्रेज़ी अख़बार भारत में छपते हैं। मैं तो उस भारतीय को अशिक्षित मानता हूँ जो अंग्रेज़ी नहीं जानता। सारा आधुनिक भारतीय साहित्य अंग्रेज़ी साहित्य से अनुप्राणित है। मेरा संस्थान एक ऐसा अपूर्व शब्दकोश निकालने जा रहा है जिसमें अंग्रज़ी शब्दों के अर्थ सारी भारतीय भाषाओं में दिए गए हैं।

(दो बैरे आकर सारा सामान रख जाते हैं।)

कु. . (हाथ से ढोसे का निवाला लेते हुए) आप तमिल जानते हैं जी ?

आ. : (चम्मच से आइसक्रीम को मुँह तक लाते-लाते, रुककर)—तमिल संसार की एक महानतम एवं प्राचीनतम भाषा है। संत तिरुवल्लुअर की भर्तृहरि, सादी, कबीर इत्यादि से तुलना करने वाले एक विशाल ग्रथ की आवश्यकता है। डॉ० अल्बर्ट श्वेट्ज़र ने तिरुवल्लुअर की प्रशसा की है। महाकवि कम्बन् का स्थान वैसा ही ऊँचा है जैसा वाल्मीकि

या तुलसीदास का। अहा, क्या वर्णन है : आकाश से उतरती, बादलों को फाड़ती, पवन को चीरती, गर्जन करती ताटका !

(वे आँख बन्द करके दोनों हाथ उठा देते हैं; कुछ पल इसी मुद्रा में। तीनों व्यक्ति विस्मित।)

और सुब्रह्मण्य भारती—रवीन्द्र, इक़बाल मैथिलीशरण, प्रसाद, बल्लत्तोल, मेघाणी इत्यादि की अमर माला का अमर सुगंधित सुमन !

(पुनः आँखें बंद! दोनों हाथ उठे।)

मैं तिरुवल्लुर, कम्बन् एवं भारती पर विराट् राष्ट्रीय तुलनात्मक अध्ययन कराने की योजना बना रहा हूँ।

(कुछ पल सन्नाटा। इस बीच खानपान।)

महाराज, आप राष्ट्रीय एकता और साहित्यिक उन्नति के लिए महान् कार्य कर रहे हैं। हमारे योग्य सेवा ?

मुझे भी कुछ करने का अवसर दें।

मुझे भी जी।

(मुस्कराकर) आप जैसे प्रबुद्ध एवं जागरूक महापुरुषों से यही आशा थी। हम सब साहित्यकार हैं। मनुष्य के भावों एवं विचारों की अनेकता आरोपित और नक़ली है। अतः हम सब एकता के प्रतीक है। मनुष्य-जाति का सारा साहित्य एक है और प्रमाणित करता है कि मनुष्य एक है।

(कुर्ते की जेब से चंदे की कड़क और चमकदार रसीद निकालकर स० के सामने रख देते हैं। स० उसे खोलकर उलटते-पलटते तथा कुछ पल सोचते हैं। तब कुछ लिखते हैं और तत्काल एक सौ एक रुपए निकालकर आचार्य को देते हैं। नत होते है। आचार्य करबद्ध विनय के साथ स्वीकार करते हैं। अब आचार्य रसीदबुक क० की ओर बढाते हैं। वे भी वही करते हैं किन्तु रुपए एक सौ-इक्यावन देते हैं। अब कु० की बारी आती है। वे भी वही करते है किन्तु रुपए दो सौ-एक देते हैं। आचार्य कुर्ते के बटन खोलकर नीचे की बंडी की जेब मे रुपए रखते हैं, रसीदबुक लेकर हस्ताक्षर करते हैं तथा तीनों को एक-एक पुर्जा पकड़ा देते हैं। इसके बाद रसीदबुक कुर्ते की जेब में रख लेते हैं।)

अब आप लोगों को संस्थान का साहित्य नियमित रूप से मिलता रहेगा। आप सब अपनी रचनाएं एवं चित्र हमारी स्मारिका के लिए अवश्य भेजिएगा।

(सहसा घडी देखते हैं और 'ओह' कह खड़े हो जाते हैं।)
विद्वानों की संगति में समय पर लगाकर उड़ जाता है। राष्ट्रपति भवन जाना था—ख़ैर, अभी अधिक विलम्ब नहीं हुआ; क्षमा करें !
(वे तीर की तरह निकल जाते हैं। तीनों व्यक्ति खड़े होकर करबद्ध सम्मान प्रदान करते है। जब वे दायाँ हाथ उठाकर हिलाते हुए बाहर चले जाते हैं, तब सब बैठ जाते हैं। कुछ पल सन्नाटा रहता है।)

स. : मैं तो समझता था कि धोतीपरशाद कोई पोंगापंडित होगा लेकिन ये तो ग़ज़ब दा सकोलर निकला !

क. : सर चंद्रशेखर वेंकटरमण, सर एस० राधाकृष्णन्, राइट-ऑनरेबल श्रीनिवास शास्त्री से लेकर महामना मालवीय, शेरेपंजाब लाला लाजपतराय, सर गगाराम तक की पगड़ियाँ भूल गए थे ?

कु. : (रसीद को ध्यान से देखते हुए) मेरा सॉउथ में तो लोग बहुत सादा रहता है (कुछ रुककर) लेकिन ये झुमरी तलैया किधर पड़ता है जी? सॉउथ में तो कहीं नहीं है ?

क. : क्यों ? झुमरी तलैया से क्या मलतब ?

कु. : आचार्य जी का इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजिकल रिसर्च का हेड ऑफिस !

स. : ओए, ए की होंदा ?
(तीनों कुछ पल चकित-से एक-दूसरे को देखते हैं।)

(पटाक्षेप)

12. चकानचक गुरू

पात्र

चकानचक गुरू : आयु लगभग 50 वर्ष, रंग गोरा, घुटनों तक धोती ओर जनेऊ प्रदर्शित करती जालीदार बनियान, दाएं कंधे पर लाल गमछा, कुछ गंजे पर छोटी-सी चोटी साफ दृग्गम्य, मस्तक पर गोल रोली, लाल आँखें और बेफ़िक्र आवाज़।

गोबर्धनदास : आयु लगभग 20 वर्ष, गोरा और तगड़ा शरीर, लँगोट पर गमछा और जनेऊ प्रदर्शित करती सैंडो बनियान, मस्तक पर त्रिपुंड, छोटे-छोटे बाल और चोटी।

पहलवानसिंह जालिमपुरवाले : आयु लगभग ५० वर्ष, गोरा और तगड़ा शरीर, ऐंठी और तनी भारी मूँछें, लाल आँखें, धोती-कुर्ता-साफा।

(चकानचक के पिता) : आयु 80 पार, भारी शरीर, धोती और कमीज़, चश्मे की एक टाँग धागे से कान पर लिपटी।

स्थान : चौराहे पर दुकान जिस पर बड़े अक्षरों में 'भाँग का ठेका', तथा इसके नीचे कुछ छोटे अक्षरों में 'प्रो० ठाकुर पहलवानसिंह जालिमपुर वाले' का बोर्ड टँगा है। दुकान के अंदर ठाकुर साहब पालथी मारे बैठे हैं तथा ग्राहक के आने पर पुड़िया पकड़ा देते हैं। दुकान के सामने भारी तख़्त पर पालथी मारकर डटे हुए गोबर्धनदास बड़ी सिल पर बड़े लोढ़े से भाँग पीस रहे हैं। तन्मय, सशक्त, पसीने से तर-बतर, जिसे पास रखे कपडे से यथासमय पोछ लेते हैं। चेहरा लाल हो आया है, नसें तन गई हैं। तख़्त के नीचे जमीन पर दरी बिछी है जिस पर भँगेड़ी बैठे

हुए उन्हें आदरपूर्वक और टकटकी लगाकर देख रहे हैं। एक धोती-कुर्ता पहने है, दो पाजामा-कमीज़, तीन गमछा-बनियान, चार जाँघिया-बनियान, पाँच सिर्फ लुंगी। कुछ ग्राहक जो बाद में आते हैं।

(बाईं हथेली पर दाएँ अँगूठे से तंबाकू रगड़ते हुए चकानचक गुरू का प्रवेश। भंगेड़ी उन्हें देखने लगते हैं, किन्तु गोबर्धनदास का ध्यान नहीं टूटता।)

च. : डटे रहो बेटा गोबर्धनदास, बड़े जीवट के रँगरूट हो ! भोला बाबा की बूटी बड़े भाग से मिलती है और पिसाई का पुन्न तो तुम समझो बहुत ऊँचा है क्योंकि इसमें परोपकार छिपा रहता है। कोई विरला ही ठीक पिसाई कर सकता है।

गो. : (सिर उठाकर फिर नीचे करते हुए मौन नमस्कार करता है और जुटा-का-जुटा रहता है।)

भंगेड़ी १ : गुरू, पिसाई पास करो तो छनाई सुरू हो जाय; अब बिलंब केहि कारन कीजै ?

च. : (तंबाकू रगडते हुए) यहाँ दूर से ही समझ जाते हैं। ताव देखा जाता है। बाल धूप में नहीं सपेत किए।

भंगेड़ी २ : गुरू की बात ! आपका मुकालबा नखलऊ और डिल्ली तक कोई नहीं कर सकता, फिर कानपुर किस खेत की मूली है ?

च. : बच्चा, ये न कहो, कानपुर का अपना रंग है, ढंग है, जिस पर मुलुक-जहान दंग है। कानपुर से ही होकर गंगा मैया परागराज और कासी पहुँचती हैं। अब ये जो खइनी मैं इतनी देर से रगड़ रहा हूँ तुम समझो कानपुर से जुड़ी हुई है जैसाकि कबी ने कह दिया है :

कलकत्ते से चली तमाखू, रही कानपुर छाय,
जेहिके घर माँ लत्ता नाहीं सोऊ तमाखू खाय,
तमाखू मोरी मोहिनियाँ

इसकी रगड़ाई का भी तुम समझो बडा महत्त है; पहिले

पच्चीस रगडे जोरदार, अगले पच्चीस मद्धिम, तब लरम, इससे चैतन्यचूर्न करता है तन-मन गरम और दूर भागते है दुनियाँ के भरम ।

(ठा. : दुकान से निकलकर आते और गुरू को श्रद्धापूर्वक देखते हैं।)

ठा. : राम-राम गुरू ! कितनों के हाथ की रगडी खइनी खाता हूँ मुदा संतोख आपकी रगडखाई से ही होता है। आपका पुन्न-परताप है। हो गया कोरस पूरा ?

च. : (कुछ फुर्ती से रगड़ते हुए) गिन्ती तो बतियाते-बतियाते बिसर गई लेकिन कुछ बेसी ही बैठेगी ! (उन्होंने बाई हथेली से तंबाकू दाई में की तथा दाई आगे बढाई, शिष्टाचार के लिए बायाँ पंजा दाई कोहनी के नीचे बीचोबीच रख दिया।)

ठा. : (चुटकी भरकर मुँह में रखते हुए) वैसे तो तमाखू, बीडी, सिगरेट, हुक्का, नसवार, कौन बात का बतंगड़ बनाए, जो है सो पचास परकार से परजोग की जाती है लेकिन खइनी के रूप में परजोग सगल ऊपर है क्योंकि बीड़ी, सिगरेट और हुक्के से धुएं की बदबोय दूसरों के सिर का दर्द बन जाती है, उधर नसवार की दनादन छीको से सबको अटपटा लगता है।

च. : चेला, तूने लाख टके की बात कह दी और टके-टके के बाबू-साहेब लोगों की खइनी की थुक्कमथुक्का के कारन निन्दा की भद्द उड़ा दी ! (शेष चूर्ण मुख में रखते हैं।)

ड़ी 3 : गुरू गोवर्धनदास पहलवान पर तरस खाओ—लाख गबरू ज्वान हैं, सजीले रॅगरूट हैं, लेकिन मेनहत बेसी हो गया।

ड़ी 4 : देखो, गाल टिमोटर हो गए हैं !

ड़ी 5 : पसीने का अँगौछा चुचुवा गया है ।

नचक : (तख़्त के पास जाकर पिसी बूटी का लस देखते हैं, कुछ पल सोचते हैं, तब दाएं हाथ की तर्जनी उठाकर 'हाल्ट'

का संकेत करते हैं; गोबर्धन पिसाई रोक देता है।)

चेला, कलजुग में भोला बाबा की बूटी की सच्ची पिसाई संभौ नहीं पर जितनी हो सकती है उतनी तूने कर डाली है। इतनी भी किसी बिरले के दम का जलूसा है—ये पापड़ सब नहीं बेल सकते।

ठा. : गुरू, सच्ची पिसाई की जो है सो पहिचान क्या है ?

च. : सच्ची पिसाई की पहिचान ये है कि तुम समझो सिल लोढ़े के साथ चिपककर ऊपर उठने लगे; लेकिन सच्ची पिसाई सतजुग, तिरेता और दुवापर में ही होती है, कलजुग में नहीं !

(भँगड़ी 1 उठकर गुरू के पैर पकड़ लेता है और "आप गियानी हैं" कहकर बैठ जाता है। गो० अब तक बाते सुन रहा था, अब हाथ से पिसी हुई बूटी इकट्ठी करने लगता है।)

च० : और अभी क्या है ? घोर कलजुग में ऐसी पिसाई भी नहीं हो पाएगी, सतजुग में बूटी खाकर पूरे एक दिन का धियान लगता है, तिरेता में आधे का, दुवापर मे चौथाई का, कलजुग में घंटे भर का और वह भी किसी-किसी को, लेकिन घोर कलजुग में तुम समझो लगेगा ही नहीं। (वे रहस्यमय ढंग से सिर हिलाते है।)

भंगेड़ी : गुरू, अब घोर कलजुग में कोर-कसर क्या है ? गऊ भिस्टा खाने लगी है, बराभन झूँठ बोलने लगे हैं, नेता भिरिष्ट हो गए हैं !

च० : (गूढ़ मुस्कान के साथ सिर हिलाते हुए) अभी तो कलजुग का पहिला चरन ही है जैसाकि वेद कहता है, 'कलि प्रथम चरने आरियाबरते जम्बूदीपे भरथखंडे' और तुम समझो कि वेद को कौन काट सकता है ? घोर कलजुग में आदमी बित्ता भर का होगा और जिसके पास एक मटुका अनाज होगा वह 'मटुकमनि' कहा जाएगा—उसका दबदबा होगा जैसा अपने ठाकुर पहेलवानसिंघ जालिमपुर

वाले का है !

(ठाकुर चकनाचक के पैर पकड़ते हैं, भँगेड़ी 3 "धन्नि है, धन्नि है" कहकर आँखें मूँद लेता है, गोबर्धन कहता है, "गुरु, बूटी तइयार है।" चकनाचक तख़्त पर चढते तथा पालथी मारकर बैठते हैं।)

भोला बाबा की बूटी धरम-करम की चीज है, गियान-धियान और जोग-भगती की चीज है, सराफ़ की तरह लौंडे-लफाड़ियों का नसा नहीं, जिससे मुँह से बदबोय आती है और नसेबाज या तो मारपीट करता है या नाली मे पड़ा मिलता है।

(भँगेड़ी "धन्नि है" कहते हैं, ठा० सर हिलाते है, गोवर्धन तख्त के नीचे उतर आता है। चकानचक सिल के बीचोबीच लोढे को खड़ा करते है तथा उस पर तरल विजया डालते हुए "हर-हर महादेव" कहते हैं, इसके बाद लुगदी के गोले से एक गोली बनाकर लोढ़े पर रख देते हैं। अब आँखें बंद कर 'ध्यान' लगाते हैं।)

चकानचक गुरू को सिवजी और माता भवानी का इस्ट हे। एक बार नसाबंदी के दरम्यान जो है सो सरेआम पीते-पिलाते धर लिए गए। लेकिन मैंने जमानत कर ली। गुरू हवालात की हवा खाए, लात खाए, तो चेले पर थुडू ! (वे आगे बढ़कर नाली में तंमाकू की पीक थूकते भी हैं।) मुकदिमा चला, गुरू जो है सो जइसे देख रहे हो वइसे ही कोरट में गए। मजिस्टर दंग, देखकर गुरू का रंग ! पूँछा, ("टुमारा नाम ?" गुरू ने आँखो मे आँखे डालकर कहा,) "चकानचक !" वह सन्न रह गया। पूँछा, "बाप का नाम ?" गुरू ने सिर उठाकर कहा, "डाटे रहो बिरिक"! इस पर भी वह खीझा नही। अजगुत जरूर किया। पूँछा, "पेसा ?" गुरु ने दोनों हाथ उठाकर आसमान की ओर देखा और गाया "छान-छान, किसी की न मान" ! मजिस्टर भगत बन गया और जो

है सो साफ बेलौस बरी कर दिया। ये ऑखों देखी है, कानों सुनी नहीं !

(चकानचक ने ऑखें खोलीं, सब लोग सजग हुए।)

छान छान,
किसी की न मान,
जब निकल जायगी जान,
तब कौन कहैगा छान ?

चौ० : हॉ, तो बच्चा गोबरधनदास, आओ और सउदा-सुलुफ करो। मेरी ड्यूटी पूरी।

ठाकुर ने तंबाकू थूककर तख़्त पर रखी बाल्टी से चुल्लू में पानी लेकर कुल्ला किया और गोबर्धन से एक भारी ग्लास चकानचक की ओर तथा एक अपने लिए सकेतित्त किया। भॅगेडी 1 ने मंझोले ग्लास की ओर संकेत किया, भँगेडी 2 ने गोली के लिए, भॅगेड़ी 3 ने भी, भॅगेड़ी 4 और 5 ने छोटे ग्लासों के लिए, गोवर्धन तैयारी में लग गया।)

च० : **बम् संकर पसपती,**
टॉंगे दबाए लखपती !

(तंबाकू थूककर बाल्टी से पानी लेते और कुल्ला करते हैं। तब तक भारी ग्लास स्वयं ठाकुर पेश करते हैं। वे तख़्त पर पालथी मारकर बैठते और धीरे-धीरे पीते हैं। ठाकुर नीचे बैठकर उनके लगभग साथ-साथ। इस बीच भॅगड़ी 1, 4 और 5 थोड़ी-थोड़ी तरल विजया पहले उनके गि[illegible] में डालकर तब स्वयं पीते हैं तथा भँगेड़ी 2 और 3 अपनी गोलियों का कुछ अंश भेंट करते हैं तथा उनके गटक जाने के बाद स्वयं गटककर पानी से उतारते हैं।)

च० : (गोलियाँ उतारकर तथा रस पीकर) चेला लोग, ये बूटी का रस ही वेद मे सोमरस कहा गया है जिसको पीकर रिसी-मुनी धियान लगाते और गरंथ लिखते थे। कहा है :

डटे रही अलमस्त भजन में, पी लेना हर की बूटी,
बरम्हा छानै, बिस्नू छानै, छानै संकरजी बूटी।

(दरी पर बैठे चेले भी साथ-साथ गाते हैं। बार-बार यह समूहगान गाया जाता है। इस बीच ग्राहकों के आ जाने के कारण ठाकुर दुकान के अंदर चले जाते है और गोबर्धन किसी को गोली तो किसी को गिलास बेचने लगते हैं, दुकान से पुडिया खरीदनेवाले ग्राहक तो आते-जाते हैं, लेकिन गोलीवाले पानी से उतारकर और गिलासवाले पीकर दरी पर बैठ जाते हैं।)

विजया पर लाखों कबित्त रचे जा चुके हैं। भोला बाबा की नगरी कासी या बनारस तुम समझो कि तिरसूल पर बसी है। बिद्या की थाह नहीं। एक ओर गंगा की धारा, सब ओर गियान की धारा ! वहाँ संसकीरत, हिन्दी, अँगरेजी, सब पढने-पढ़ाने वाले बिद्वानों ने विजया नही छोड़ी। नागा बाबा पीते है, लँगोटीधारी साधू पीते हे, धोतीधारी पंडित पीते हैं, सूटवूटधारी प्रोफेसर पीते हे और इसटूडेन्ट पीते हैं। कासी या बनारस का बिद्वान और बिद्यारथी एक ओर विलाइती गियान से लबालब्ब है, दूसरी ओर देसी बूटी से धबाधब्ब। यही असली जिन्दगी है। पूँछो, क्यों ? तो तुम समझो कबित्त गाता हूँ :

हरी हरी देखते ही तबियत हो जाती हरी,
भरी भरी साँस भी हरी हरी होती है।
रसना "रस ना" नहीं कहती एक बार भी,
हरी हरी से ही हरी खरी खरी होती है।।
मन हरी हरी पाकर हरी हरी सोचता है,
बात की बात में तरी तरी होती है।
हरी हरी देखकर आत्मा प्रफुल्ल होती,
हरी हरी होकर हरी हरी में खोती है।।

गो० : (अचानक च० के पैर पकड़कर)—गुरू, बहुत ऊँचा कबित्त है; इसमें मस्ती भी है, मनमौजीपन भी है, फक्कड़पन भी है और आतिमा का परमातिमा से मेल भी है। आपने लिखा है ?

च० : (आँखें बंद कर दोनों हाथ आसमान की ओर उठा देते हैं) सब भोला बाबा और माता भवानी की किरपा है! ये क्या, पच्चासों कवित्त रच चुका हूँ (आँखें खोलते हैं।) (आँखें खोलते ही सामने लाठी के सहारे वृद्ध को आते देखते हैं और बला की फुर्ती से तख़्त से कूदकर दूसरी दिशा में नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं।)

वृ० : (एक हाथ उठाकर चीख़ते हुए)—हरामजादे, उल्लू के पट्ठे, तुझे मौत आए; यहाँ नसे में चूर कबित्त सुना रहा है, वहाँ घरवाली तपेदिक में दम तोड़ रही है ।
(सब लोग चकित, स्तब्ध एवं दुखी।)

(पटाक्षेप)

13. बाबा मस्तराम

पात्र

तराम : आयु 40 के आसपास, काला रंग, काली जटाएं, काली दाढ़ी, काली मूछें, भारी शरीर, लाल ऑखें, गरुई आवाज़, तन पर लँगोटी, हाथ में डंडा, नंगे पैर।

सिंघ : बस्ती के चौधरी, आयु 50 के आसपास, काला रंग, खिचड़ी गलमुच्छे, घुटनों तक धोती, मोटा कुर्ता, भारी पगडी, कंधे पर अँगोछा, लाल ऑखें, भयानक आवाज, लंबे चमरौधे (ठेठ देहाती जूते)।

स्थान : शहर से कुछ बाहर की, आसपास खेतों वाली छोटी-सी झुग्गी-झोंपड़ी बस्ती, जिसके एक किनारे साफ की गई जमीन पर सात विभिन्न आयु के पुरुष बैठे हैं जिनकी पोशाक् अलग-अलग हैं। थोड़ी दूर-दूर जूते रखे है। उनके सामने एक अच्छा-सा बोरा बिछा है, जिस पर कोई आसीन नहीं है।

चौ० : (पास की एक झोपड़ी से निकलकर) बाबा मस्तराम पर बरमबाबा की किरपा है और बरमबाबा भी ऐसे-वैसे नहीं, नदी के पास वाले जंगल के भारी और पुराने पीपल पर हज़ारों साल से रहनेवाले। सायँ-सायँ होता है वहाँ! दूर से ही दिल भायँ-भायँ होने लगता है। लेकिन बाबा हैं कि रोज अकेले जाकर रात में दिया जलाते हैं! एक दिन तो बरमबाबा ने परगट होकर दरसन तक दिया था!! भूत-परेत-पिसाच सबका झाड़फूँक करते हैं, टोने-टोटके तो चुटकी बजाकर उतार दते हैं। लो, वे आ रहे हैं। (गलमुच्छे ठीक करता है, पगड़ी ठीक करता है, कुर्ता ठीक करता है)। (झूमते-झूमते बाबा मस्तराम आते

हैं। उपस्थित लोग खड़े होकर स्वागत करते है। चौधरी उन्हें सादर बोरे पर बिठाता है। वे पालथी मारकर आसीन हो जाते हैं। डंडा दाईं ओर ज़मीन पर रख लेते हैं।)

बा० : पिछली रात एक अगियाबैताल का मामला आ पड़ा। ठाकुर लटूरीसिंघ का लड़का जब बड़े तड़के बाग में गिरे हुए आम उठाने जाता तब धुंध के बीच अगियाबैताल लप्प-लप्प करता ऊँचक-नीचक करता। लप्पा-लप्पी कभी तेज, कभी मद्धिम। बिचारा जान बचाकर भागता। दिल धक्क-धक्क। मैंने लटूरीसिंघ की पिराथना पर धियान दिया। जाकर बाग का मुआइना किया। मंतर और ततर से जान लिया कि यहाँ कोई अगियाबैताल नहीं है।

चौ० : (चकित होकर) लेकिन लड़के को तो दीखता था ?

बा० : (हँसकर) उसमे सडजंत्र था।

(सभी चकित मुद्रा में घूरते हैं।)

चौ० : क्या ? कैसे ? क्यों ?

बा० : इसका पता चलाने के लिये दो रातें जागा। पहली रात जाकर बाग के पास एक झाडी में छिपकर बैठना पडा। सब कुछ समझ गया। दूसरी रात लटूरीसिंघ से यह कहकर गया था कि जरा अँधेरे में ही लड़के को भेजें। लड़के को समझा दिया था कि डरे नहीं—मै जो हूँ। लड़का आया तो उसे वही लप्पा-लप्पी और उछल-कूद दिखाई दी। चिल्लाकर भागने वाला ही था कि क्या देखता है—अगियाबैताल "हाय मर गया। हाय, मर गया" कहता हुआ धरती पर पसरा पड़ा है !

(लोग चकित नेत्रों और मुद्राओं में घूरते हैं।)

बात यह थी कि वह अगियाबैताल नहीं था, बल्कि लटूरीसिंघ का नौकर झुमरुवा था जो एक लालटेन लेकर बाग के आम चुराने जाता था। ज्योंही लडके को देखता, लालटेन की बत्ती कभी नीची और कभी ऊँची करते हुए उछल-कूद मचाता। लड़का डर से भाग खडा होता। बस ये कहो कि डर से परान नहीं निकले थे ! मैंने पहले

दिन अकेले जॉच-पडताल की। दूसरे दिन जैसे ही वह लालटेन ऊॅची-नीची करके चंडालनाच करने लगा, मैने पीछे से आकर एक भंघोटना पैरों पर ऐसा जमाया कि चारो खाने धड़ाम ! सिर पर धर देता तो जान निकल जाती और थाना पुलिस का बावेला उठ खड़ा होता; इसीलिए लरमी से काम लिया। लड़के का भै जाता रहा। लटूरीसिंघ ने चिलम-पर-चिलम का सतकार किया। दस रुपए भेंट किए और चरन छुए।

चौ० : यहॉ भी चिलम का पूरा परबंध है।

बा० : लेकिन गॉजा मैं खुद रगडकर चिलम पर धरता हूॅ क्योंकि दूजे की रगड़ कच्ची बैठती है। (चौधरी की संकेत पर उपस्थित लोगों में से एक पुडिया बढ़ाता है। बाबा पुड़िया खोलकर निरीक्षण करते हैं, सूॅघते हैं तथा बाईं हथेली पर रख देते हैं। रगड़ना बद नहीं करते।)
माल अच्छा है लेकिन रगड़ भी अच्छी होनी चाहिए; हमारे गुरू झरकटिया बाबा का मंतर था :

रगड़ दे रगड़,
दुनिया से झगड़,
टोपी ना पगड़,
घोड़ा ना सगड़।

चौ० : (हाथ जोडकर) गुरू, इसका अरथ पल्ले नही पड़ा, बताएगे ?

बा० : (रहस्यमय ढंग से सिर हिलाते हुए) संतो की बानी गूढ होती है। कबीरदास की बानी सुनी है ?

कबीरदास की उल्टी बानी।
बरसे कम्मर भीजै पानी।।

यहॉ कबीरदास ने रच्छा करने वाले जोग की बरखा से दुनियादारी के रसबस को भिगाकर बहाया है ! ऐसे ही कहा है :

कहो कबीर कस ?
अस नहीं तस !

यहॉ अरथ है कि हे कबीरदास जी, क्या ऐसा है ? अरथात दुनियॉ जैसी चलती है, क्या ऐसी ही चलनी

चाहिए ? कबीरदास कहते हैं, ऐसी नहीं, वैसे अरथात जोग और भगती से भरी चलनी चाहिए ! हमारे गुरू झरकटिया बाबा की गूढ़ बानी का असली अरथ है कि दुनियादारी को रगड़ दे लेकिन ऊपरी अरथ है, गाँजे को तगड़ी रगड दे ! आगे कहते हैं कि दुनियादारी मे मत पड़ क्योंकि न टोपी रहती है और न पगड़ी; न घोड़ा बचेगा और न सग्गड़, अरथात ऊँची हो या नीची सारी मरजाद मिट जाएगी, रोबदाबवाली सवारी-सिकारी सब मिट्टी में जाएगी ।

(सब "धन्नि है ! धन्नि है !" कहकर हाथ जोड़ते हैं, आँखें मूँदते हैं, सिर झुकाते हैं।)

गुरू झरकटिया बाबा का मंतर था :

सब कुछु आय।
कतौं कुच्छु न आय।।

चौ० : इसका अरथ तो और भी कठिन...

बा० : ये बेद का गियान है। अरथ बैठता है कि है सारा ससार है तो लेकिन वैसे ही जैसे सपना, असल मे कहीं कुछ नहीं है, सब कुछ झूँठा है। सुनो :

चुनि चुनि कंकड़ महल बनाएं,
लोग कहें घर मेरा रे,
ना घर मेरा ना घर तेरा,
चिड़िया रैन बसेरा रे।

(बाबा रगड रोककर लुगदी-सी चौधरी को थमाते हैं। चौधरी के संकेत पर उपस्थित लोगों में से एक अपने कुर्ते की जेब से निकालकर बड़ी-सी चिलम पकड़ा देता है। चौधरी चिलम पर गाँजा फिट करते हैं। वह व्यक्ति जेब से दियासलाई निकालकर गाँजे पर आग छुवाला है। गाँजा चमकता है। चौधरी चिलम बाबा को पकड़ाते हैं। बाबा ने चिलम उठाते हुए आकाश की ओर देखा और कुछ बुदबुदाए। तब चिलम ओठों पर लगाई। एक करारी खीच—सारे शरीर की वायु कक्ष मे भर गई और वह फूलकर कुप्पा हो गया, मुँह सिमटकर चिलम में घुसता प्रतीत हुआ और तपे तवे जैसा लाल हो गया,

उसकी और मस्तक की नसें उभरीं, तनीं और फूल गईं, आँखें अंगारे बरसाती प्रतीत हुईं। बाबा ने मुख तथा नासापुटों से धुआँ उड़ाते हुए, इस विलक्षण दृश्य से अभिभूत एवं नत चौधरी को चिलम पकड़ा दी। चौधरी ने उसे दोनों हाथों में जकड़कर ओठों की ओर बढ़ाया तो अब तक धुआँ निकालते हुए बाबा ने कहा, "सब कुछ भसम हो चुका है—पहाड़सिंघ, क्या राख से दम लगाएगा ?" चौधरी रुक गए। बाबा ध्यानलीन हो गए।)

चौ० : इतना गाँजा चार हब्बूसों के भी छक्के छुड़ा देता !

व्यक्ति एक : नौसिखुवा तो मर जाता !

व्यक्ति दो : ये पापड़ सबके बेलने के नहीं !

व्यक्ति तीन : राम भजो !

व्यक्ति चार : ये सब परभू की देन है। झरकटिया बाबा तुम समझो कि पाँचसौ-एक रगड़े खाए सवा तोले गाँजे से नीचे की चिलम पर हाथ ही न लगाते थे और तुम समझो कि उनकी निभ भी गई ! परन टूटा नहीं ! बिच्छू और साँप के बच्चे से डंक लगवाते थे, तब कहीं जाकर लहर आती थी ! इस घोर कलिकाल में भी तुम समझो कि पहुँचे हुए पड़े हैं लेकिन हाँ, छिपे हुए; नहीं तो धरती रसातल को चली जाती ! गुन ना हिरानो गुनगाहक हिरानो है।

व्यक्ति पांच : इस समय धियान में है।

व्यक्ति छह : भइया, धियान की बात कुछ और ही है ! धियान लगाने वाला जो है सो दस-दस दिन तक धरती के अंदर बंद रहकर भी टनाटन रह सकता है। ससरीर सरग में उड़ सकता है ! एक जोगी को हम जो हैं सो मिला था। वह जब धियान लगाता था तब जो है सो धरती से एक हाथ ऊपर उठ जाता था।

व्यक्ति सात : सिवजी का धियान सगल ऊपर माना गया है जिसका परमान भी पाया गया है : "बीते संबत सहस सतासी।"
(बाबा आँखें खोलते हैं प्रज्वलित एवं उग्र।)
एक बार हम अमरनाथ की जात्रा पर थे तो घोर बरफान में एक ठूँठ-सा दीखा। धियान दिया तो पता चला कि

ये बरफ का ठूँठ नहीं, आदमी है जिस पर बरफ जम गया है। वहीं बैठकर काँगड़ी तापते रहे। गरमी पाकर बरफ पिघला और लकड़ठूँठ के जगा पर एक बाबा था--डाढ़ी धियान में बैठे जाँघों पर कुंडली मार रही थी, पलके नाक के नीचे के कोनों तक पसर गई थीं, सरीर और केस सब सपेत ! हम दंग रह गए ! तभी बाबा ने हाथों से पलके उठाईं, इधर-उधर देखा और पूँछा, "बच्चा, ये कौन-सा जुग चल रहा है ?" हमने बताया, "महाराज, ये कलजुग है !" बस, बाबा उसी छिन अंतरधान हो गए ! (सब मंत्रमुग्ध। तभी सात में से एक व्यक्ति कुछ विचलित हुआ और ऐंठता-सा मूर्च्छित-प्राय हो गया।)

पहाड़सिंघ : इसके हाथ-पैर मुडने न देना। अभी ठीक करता हूँ जरा, एक जूता तो लाना !

(सब चकित। एक पल कोई नहीं हिलता।)

अरे भाई, डरो नहीं। जूता मारना थोड़े ही है। (एक व्यक्ति जूतों में से एक ले आता है। चौथरी मूर्च्छितप्राय व्यक्ति के हाथ-पैर मुड़ने न देने के काम पर डटे हैं किन्तु जूते पर ध्यान देते है। बा. जूते का खुलाभाग मूर्च्छितप्रायः व्यक्ति की नाक से लगाकर रख देते हैं। कुछ देर निरीक्षण करते हैं, फिर अपनी जटाओं से टटोलकर एक जुवाँ निकालते हैं और मूर्च्छितप्राय व्यक्ति के एक कान में डाल देते हैं। अब निरीक्षण करने के बाद आँखें बंद करके कुछ बुदबुदाते हैं। मूर्च्छित व्यक्ति कुछ पल बाद सजग-सा होने लगता है। चौधरी उसकी नाक से लगा जूता हटाते हैं। वह कान हिलाता है, कान में तर्जनी डालता है, उठ बैठता है।)

चौ० : धन्नि हो बाबा !

(सब 'धन्नि' और 'वाह-वाह' कहते हैं।)

बा० : (आँखें खोलकर) सब गुरू का परताप और परभू की किरपा है ! (आँखें बद कर लेते है।)

चौ० : बाबा लोगों में बड़ा तागत होता है।

(इसी समय सात में से एक अन्य व्यक्ति हिलने-झूलने

तथा "हम आ गए, हम आ गए' चिल्लाने लगता है।)

बाबा : (ऑखें खोलकर उसे घूरते हुए) आने वाले कौन हो तुम?

व्यक्ति : (ध्यान न देते हुए) हम आ गए, हम आ गए !

बाबा : (उठकर उसके पास आते और उसके मत्थे पर अपनी विशाल दाई हथेली की टक्कर देते हुए) कौन हो तुम?

व्यक्ति : (बहुत ज़ोर से) हम हैं पकरीभिसार के छत्तरपाल बाबा! हमें नहीं जानते ?

बाबा : तो यहाँ क्या करने आए हो ? अपने गाँव पकरीभिसार से इत्ती दूर यहाँ सहर कानपुर में क्यों आए हो ?

व्यक्ति : यहाँ नातिन की सादी तै हुई है; घर-वर देखने आया हूँ।

बाबा : तो देख चुके न, सरबत-पानी पियो, चिलम पियो ओर जाओ।

व्यक्ति : नातिम के घर का सरबत-पानी और चिलम हमको बरजित है।

बाबा : तो महराज, अब परस्थान करो। राम-राम !

(हिलने-डुलने वाला व्यक्ति शांत हो जाता है।)

चौधरी : गजब है; इसी की सादी पकरीभिसार में तै हुई है !

बाबा : छत्तरपाल बाबा लड़की के पुरिखा होंगे, जो घर-बार देखने आ गए थे; डरने का कारन नहीं। मैंने तो समझा था कि पासवाले खेत के जखई बाबा हैं—कबर है न; वो बकरा लिए बिना न टलते !

चौधरी : जब बाबा महजूद हैं तो डर काहे का ?

बाबा : (झूमते हुए) मगन रहु चोला ! आओ, भजन हो जाए क्योंकि भजन के बिना जिन्नगी बेकार है—भजन ही सार है !

मत कर रेलमपेला
चेला, मत कर रेलमपेला !

(सब दुहराते हैं। बाबा बार-बार ताली बजा-बजाकर गाते हैं और सब वैसे ही दुहराते हैं।)

मत कर रेलमपेला
चेला, मत कर रेलमपेला !
बिगड़ जायगा खेला
चेला, मत कर रेलमपेला !

मर्द वो जिसने झेला
चेला, मत कर रेलमपेला !
टूट जायगा ठेला
चेला, मत कर रेलमपेला !
माटी केरा ढेला
चेला, मत कर रेलमपेला !
दो दिन का है मेला
चेला, मत कर रेलमपेला !

(बहुत अधिक जोश में बार-बार गाते और सब बहुत अधिक जोश में दुहराते हैं। अचानक बाबा उठकर नाचने लगते हैं और बेहद जोश में लम्बी छलाँगबाज़ी करते-करते चारों खाने चित्त होकर गिर पड़ते हैं। चौधरी "बाबा के सिर पर कौन आ गया ?" कहकर चकित होता है।)

(पटाक्षेप।)

हास्य-प्रबंध

(मौर्ख्यशास्त्र)

14. ईडिऑटिक्स, दैट इज़, मौर्ख्यशास्त्र[1]

(भूमिका)

प्रत्येक ग्रंथ, चाहे वह किसी विज्ञान से संबद्ध हो या सामाजिक शास्त्र से या कला से या धर्म से या साहित्य से अर्थात् किसी भी विषय से, भूमिका के बिना वेसा ही रह जाता है जैसे पूँछ बिना पशु और मूँछ बिना पुरुष। पूँछ भूमिका के सदृश आगे नहीं होती अतः अलंकार में दोष आ जाता है, किंतु अर्थ में बाधा नहीं पड़ती। मूँछ वाला अलंकार एकदम ठीक बैठता। यद्यपि अब मूँछ का वह दबदबा नहीं रहा, किंतु अर्थ में बाधा नहीं पड़ती और मूँछ को पुरुषार्थ-प्रतीक मानने वाले इससे संतुष्ट रहेंगे। एक पंथ दो काज ! यों, जिस प्रकार पूँछ बिना पशु और मूँछ बिना पुरुष जीवित रह लेता है, उसी प्रकार भूमिका के बिना ग्रंथ भी रचा जा सकता है, फिर भी, 'शोभा' के लिए उसका होना आवश्यक तो है ही। पहले काव्यों में भूमिका न होती थी और यदि होती भी तो ग्रंथ के अंदर, जैसे रामायण या इलिअॅड या रामचरितमानस या 'पैराडाइज़ लॉस्ट' में; किंतु जब से कविगण अपनी विचार-सरणि से भी पाठकों को लाभान्वित करने की भीष्म-प्रतिज्ञा कर बैठे हैं तब से काव्यों में भी भूमिका आवश्यक क्या प्रायः अनिवार्य हो गई है। बीसवीं सदी की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका प्रायः प्रत्येक कवि दार्शनिक अथवा विचारक अथवा विद्वान् भी है। इसलिए, प्रायः सभी कवि भूमिकाएं लिखने लगे हैं। इससे लाभ भी हुआ हे। अधिकांश कवियों की भूमिकाएं उनके काव्यों से कहीं अच्छी हैं क्योंकि वे सुचिंतित नहीं तो चिंतित तो रहती ही हैं। उनका कुछ अर्थ तो है ! यद्यपि काव्य-ग्रंथों में भूमिकाएं लिखी जाने लगीं, तथापि उनको वास्तविक विस्तार एवं गोरव गद्य के अनंत अजिर में ही प्राप्त हो सकता था। इधर, हिंदी में आचार्यो

1. 'इंडिआ, दैट इज़ भारत' (भारतीय संविधान) की विश्ववादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक 'तर्ज पर'।

की संख्या (राष्ट्र की आनुपातिक जनसंख्या के अनुपात से ही सही) पर्याप्त से पर्याप्त आगे जा चुकी है। संस्कृत जैसे महानतम स्तर के साहित्य में जितने आचार्य तीन सहस्राब्दियों में हुए थे उससे अधिक हिंदी-साहित्य में तीन दशाब्दियों मात्र में हो चुके हैं: और, अभी तो आरंभ ही हुआ है ! एकाध कवियों को भी आचार्य कहलवाने का चसका लगा है, जिसके लिए 'स्पेशल मेक-अप[1]' भी करना पड़ता हे ! किन्तु असली आचार्य गद्यवाले ही माने जाते हैं ? हिंदी में आचार्य कोन हे ? किसी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय में हिंदी-विभाग का अध्यक्ष ! क्यो? सामान्यतः उसके 'डॉक्टर' एवं विशेषतः उसके 'अडॉक्टर' शिष्य उसे, उसकी या अपनी, प्रत्यक्ष या परोक्ष, प्रेरणा से 'आचार्य' कह सकते हैं, कुशल प्रकाशक उसके 'कालजयी' ग्रंथ प्रकाशित कर साहित्य को समृद्ध कर सकते हैं, ओर ''परस्पर प्रशंसन्ति'' के चिरंतन नियम के अनुसार 'अन्य आचार्य' भी उसके 'आचार्य' पर अपनी स्वीकृति की अटल मुद्रा अकित कर सकते हैं ! 'आचार्यगण' विभिन्न सरकारी-ग़ैरसरकारी समितियों, समारोहों, यात्राओं, भाषणों, साक्षात्कारों[2], परीक्षाकार्यो, परीक्षणकार्यो, निरीक्षणकार्यो, सिद्धांत-रक्षणो (वस्तुतः अस्मिता-रक्षणों) 'इत्यादि' में अतीव व्यस्त रहते हुए भी यत्किंचित् अध्यापन तथा अत्यधिक सृजन तथा अधिकतम संपादन कर लेते हैं, यह उनकी अपार क्षमता का द्योतक हे, आश्चर्यजनक है। इस अपार क्षमता का आधार ''जीवो जीवस्य भोजनम्'' हे जो नितांत न्यायसंगत अर्थात् प्राकृतिक है : अधीनस्थ आचार्य, प्रपाठक, प्राध्यापक, शोधछात्र श्रम करते हैं जिसका 'परिपाक' आचार्य का सिहावलोकन कर देता है ! अनाचारपत्र[3], कर्तिकाएं[4] इत्यादि में चेले-चेलियों की घुसपैठ से भारी लाभ यह होता है कि इसमें प्रकाशनार्थ अनेक रचनाएं उन तक पहुँच जाती हैं जिनका परिष्कार कर वे साहित्य की सेवा करते हैं। ऐसा संयोग भी हो सकता है, संदेह भी। मैंने बहुत वर्ष पहले 'स्टेट्समैन' (नई दिल्ली) हेतु 'क्राइसिस इन हिंदी लिटरेचर' (हिंदी-साहित्य में संकट) लेख भेजा। पता नहीं चला कि क्या हुआ ! किंतु संयोगात् डॉ. महीप सिह का 'क्राइसिस इन हिंदी क्रिटिसिज़्म' (हिंदी-आलोचना में संकट) अवश्य पढ़ने को मिल गया ! मैंने सम्मेलन (अब 'सड़मेलन' शब्द उचित होगा) की पत्रिका हेतु 'जगनिक' पर एक शोधलेख भेजा क्योंकि सं० स्वर्गीय डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल (निधन 10 जनवरी 1991) से पत्र व्यवहार कर लिया था (अन्यथा दुस्साहस न करता)। पता नहीं चला कि क्या हुआ ! किंतु संयोगात् डॉ० भगीरथ मिश्र का आल्हा (आल्हखण्ड, परमाल रासो)

1 विशिष्ट सज्जा।

2 इंटरव्यू उर्फ 'अंतर्व्यूह' (तमाशा ऊपरी, 'रणनीति' अंदरूनी) !

3 समाचारपत्र का असली नाम अनाचारपत्र ही हो सकता है।

4. पत्रिका का असली नाम कर्तिका ही होना चाहिए। कैंची और लेई का चमत्कार !

पर लेख अवश्य दिखाई दे गया। दोनों लेख अपने-आप में स्वतंत्र थे, मौलिक थे। पर चूँकि मैंने पहले भेज रखे थे, जिस पर न कोई सूचना मिली न पत्रोत्तर अतः संयोग विलक्षण लगा।

'आचार्यगण' किसी भी विषय के किसी भी ग्रंथ की 'गंभीर भूमिका' लिख सकते हैं। ऐसी भूमिकाएं संकलित रूप धारण कर 'महाग्रंथ' बन सकती हैं तथा मानवता की अजर-अमर सेवा कर सकती हैं। 'आचार्यगण' केवल महान् तथा अजर-अमर ग्रंथ ही लिखते हैं, 'शेषजन' सामान्य तथा जर-मर ग्रंथ मात्र लिख सकते हैं। अनेक आचार्य तो अतिविख्यात भूमिका-लेखक के रूप में ही अमर हैं !

बहरहाल, भूमिका का महत्त्व सर्वत्र है। साहित्य में सबसे अधिक। और यह, लगातार बढ़ता जा रहा है। वस्तुतः संप्रति साहित्य में भूमिकायुग चल रहा है। साहित्यकार ग्रंथ पर भूमिका को वरीयता प्रदान करता है और पाठक केवल भूमिका से ही काम चला लेता है : लेखक डाल-डाल चलता है, पाठक पात-पात! दोनों तरफ है आग बराबर लगी हुई ! सुना है, आज का युग व्यस्तता का युग है : बाथ-रूम, समाचारपत्र, पत्रिका, हॉटेल, रेस्ट्राँ, कॉफ़ीहॉउस, क्लब, पिक्निक्, टूअर, कल्चरल-प्रोग्रैम, बी० सी० आर०, ब्लू-फ़िल्म, सिनेमा इत्यादि की भयावह व्यस्तता पर दूरदर्शन का आतंक, इस पर भी डॉक्टर (असली, नक़ली नहीं) ओर क्लीनिक, नर्सिंग होम इत्यादि ! कोई थाह है ! महान् या विद्वान् या श्रीमान् लोगों को सिर उठाने की फ़ुर्सत नहीं ! साधारण मानव का आधा जीवन क्यू मे बीतता है ! रेलयात्रा का क़्यू (आरक्षण इत्यादि), बस का क़्यू, बिजली के बिल का क़्यू, पानी के बिल का क़्यू, यदि करदाता है तो आयकर-क़्यू; यदि मकान अपना है तो आवासकर क्यू, सुपर बाजार का क़्यू, दहीबड़े की दुकान का क्यू, आइसक्रीम की दुकान का क़्यू, सिनेमा का क्यू, अन्य-अन्य क़्यू—ज़िन्दगी की शक़्ल क़्यू जैसी होती है ! समाचारपत्र, दूरदर्शन की व्यस्तता ऊपर से आधा जीवन इस-सब में 'कट' जाता है, शेष जीवन आधे में कामकाज, नोकरी-चाकरी, युग-निन्दा, भ्रष्टाचार-विगर्हणा, राजनीति-चोंचलेबाज़ी, लड़ाई-झगडे, परिवार-नियोजन-चिन्ता, मासिक बजट बनाना-बिगाड़ना, और हाँ, लगे हाथ प्यार-मोहब्बत ! जीने का समय कहाँ मिल पाता है ? 'आज' के 'नए' मानव का जीवन सचमुच बहुत कठिन, जटिल, व्यस्त है ! ऐसी विपम स्थिति मे यदि छात्र-छात्रा को ग्रंथ पढ़ने पड़े या प्राध्यापक-प्राध्यापिका को पढ़ाने के संदर्भ मे उनका आद्यंत अनुशीलन करना पड़े, तो कयामत बरपा हो जाए; अतः सभी को केवल भूमिका से काम निकालने की विवशता का सम्मान करना ही पडता है। कुंजी अथवा गाइड तक पढने का समय कहाँ ? अत. कुंजीकार अथवा

गाइडकार 'विद्वान्' भी भूमिका-लाभ प्रदान करने की कृपा करने लगे हैं, जो सर्वथा प्रशस्य है, क्योंकि इससे उनका प्राध्यापक-प्राध्यापिका-जाति से लेकर छात्र-छात्रा-जाति तक के प्रति संवेदन स्पष्ट होता है। अतएव, मैंने भी मौर्ख्यशास्त्र (ईडिऑटिक्स) का प्रवर्तन करते समय 'प्रस्थान'-ग्रंथ की भूमिका लिखनी आवश्यक समझी, तो ठीक ही किया।

मौर्ख्यशास्त्र (ईडिऑटिक्स) एक शत-प्रतिशत मौलिक रचना है। मैं जानता हूँ कि हिंदी में मौलिक लिखना अपराध है : वह भी कोई साहित्य है जो महान् पश्चिम से प्रेरित न हो ! जब भोजन, वस्त्र, साज, सज्जा, भवन, मार्ग, यात्रा, पुलिस, सेना, दफ्तर, यूनिवर्सिटी, कॉलेज, स्कूल इत्यादि-इत्यादि-इत्यादि सब पश्चिम के अनुकरण पर आधृत हैं तब साहित्य को पश्चिम पर आधृत न करना घोर पाप और अक्षम्य अपराध नहीं तो क्या है ? मुझे अपराध स्वीकार है। दंड भी भोग रहा हूँ (आचार्यगण-शापसमूह, संपादकगण-आक्रोशसमूह, पाठकगण-उपेक्षा समूह से 1980-81 ई० की राजयक्ष्मा, 1983 ई० में मधुमेह, 1987 ई० वाम-वक्षाभाग-शोथ, 1990 ई० से रक्तचाप इत्यादि तक के दण्ड-समाहार को कीर्तिमान माना जा सकता है) ! किन्तु एक बात स्पष्ट है—'मौर्ख्यशास्त्र' जैसा कोई व्यवस्थित ग्रंथ हिंदी में, भारत में, विश्व में कहीं नहीं है, यद्यपि मौर्ख्य से अधिक व्यापक एवं तलस्पर्शी विषय कोई अन्य हो ही नहीं सकता। आश्चर्य है, जो विषय अधिकांश ग्रंथों में प्रायः आद्यंत भरा रहता है उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया ! मौर्ख्य जीवन-व्यंजन का लवण है। मुझे हर्ष है कि मैं ऐसे महान्, सर्वव्यापी पर अछूते, गंभीर विषय का प्रवर्तन कर रहा हूँ, उस पर प्रथम ग्रंथ रच रहा हूँ। निःसन्देह, यह प्रस्थान-ग्रंथ है, किंतु इसे अन्य प्रस्थान-ग्रंथों के सदृश विशद ग्रंथसूचियों का लाभ नहीं प्राप्त हो सका। अच्छा होता, यदि कोई 'आचार्य' इस विषय पर लेखनी उठाने का अवसर निकाल पाता क्योंकि वह साधिकार, गंभीर एवं यथार्थ विवेचन, विश्लेषण एवं संश्लेषण कर सकता था। इससे भी अच्छा होता, यदि इस महान् शास्त्र का उद्भव एवं विकार पश्चिम की चिन्तन-उर्वर वसुन्धरा में होता, क्योंकि वहाँ अनेक नवीन शास्त्र प्रायः प्रत्येक दशाब्दि में उद्भूत एवं विकसित होते रहते हैं। किमधिकम्, अभी इस शास्त्र पर शत-शत ग्रंथ रचे जा सकते हैं। मुझे आशा है, अधिकारी आचार्य इस ओर ध्यान देंगे; और, यदि पश्चिम की दृष्टि इस ओर पड़ गई तो विषय को वास्तविक दृष्टि ही प्राप्त हो जाएगी !

'मौर्ख्यशास्त्र' मेरे जीवन भर के अध्ययन-अनुशीलन का परिणाम है। सौभाग्यवश, इसे रचना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थल (दिल्ली) भी प्राप्त हो गया है। भारत में (संसार की बात नहीं कर रहा क्योंकि वह बहुत बड़ा है और

उसमें टोक्यो, न्यूयार्क, लदन, मास्को, पेरिस, बर्लिन जैसे महानगर स्थित हैं) दिल्ली मौर्ख्य के विविध रूपों के अध्ययन, अनुशीलन, अनुसंधान एवं आस्वाद की दृष्टियों से अतुलनीय नगरी है। यहाँ सारे देश का मौर्ख्य-सार सरलतापूर्वक देखा-समझा जा सकता है। यहाँ विश्व के प्रायः सभी देशों के मौर्ख्य की बानगियाँ भी प्राप्त हो सकती हैं। इस महान् नगरी की महान् मौर्ख्य-परम्परा शताब्दियों पुरानी है। स्वनामधन्य मोहम्मद तुग़लक़ की कब्र यहीं पर है। कई नेताओं को कई नेताओं इत्यादि ने मोहम्मद तुग़लक़ से तुलनीय माना है। जिस प्रकार गायकों के लिए मियाँ तानसेन की ग्वालियर-स्थित क़ब्र तीर्थ है उसी प्रकार मौर्ख्य-पंडितों के लिए मोहम्मद तुग़लक़ की। मिर्ज़ा ग़ालिब ने 'एक ढूँडो हज़ार मिलते हैं' की स्थापना इसी नगरी में की थी, हालांकि तब (1869 ई० में मृत्यु) आबादी बहुत कम थी और आज़ादी उससे भी कम। अब उन्हें हज़ार की जगह कोई और सख्या लिखनी पड़ती। आप्त-वाक्य की प्रामाणिकता न्यायशास्त्र तक प्रतिपादित करता है। स्थान उपयुक्त था। किन्तु कतिपय कठिनाइयाँ भी रही हैं। इस संदर्भ में लेई-कैंची का अचूक सहारा नहीं मिल सका (जिसके बल पर संविधान बना)। प्रायः किसी भी ग्रंथ का लेई-कैंची से संबंध निर्विवाद है—लेखनी-मसि का सबंध इसके बाद आता है, बुद्धि का अन्त में। उद्धरणों का अवलम्ब भी नहीं मिला, जिनसे ग्रंथ का आकार तो बढ़ता ही है, प्रायः वे ही ग्रंथ की आत्मा तक हो जाते हैं। आजकल विद्वान् एवं साहित्यप्रेमी प्रकाशकों की कृपा से किसी ग्रथ का महत्त्व सामान्यतः उसके आकार तथा विशेषतः उसके मूल्य पर निर्भर करता है—वस्तु या सामग्री तो अत्यन्त गौण है। इस दृष्टि से भी मौर्ख्यशास्त्र 'सम्पन्न' नहीं है। मैं न नामी हूँ न गिरामी, क्योंकि किसी राजनैतिक दल की सेवा के पुण्य से वंचित हूँ, पद्मविभूषण या पद्मभूषण या पद्मश्री ('भारतरत्न' तो भारती-सेवक के लिए संभव नहीं—उसके लिए अभारतीय-ख्याति अपरिहार्य है। अतः कोई हिन्दी या भारतीय भाषा का साहित्यकार इसके योग्य नहीं माना जा सका) नहीं हूँ, न ज्ञानपीठ पुरस्कार या ज्ञानमुख पुरस्कार अथवा साहित्य अकादमी[1] पुरस्कार या भारत-भारती पुरस्कार या कबीर-पुरस्कार या अन्य तद्वत् सरकारी पुरस्कार ही पा सका हूँ; केवल अनवरत अध्ययन, चिन्तन एवं लेखन के मौर्ख्य-पथ पर ही चलता आया हूँ (कोल्हू का बैल रहा हूँ)। यह अयोग्यता

१ 'साहित्य टकादेमी' नाम मेरा रखा ही है, जिसे कई लोगों ने लपक लिया है। मीडिआ का 'तात्त्विक' नाम 'मैडिआ' भी मैंने ही रखा है। मैंने एक ओर हिन्दी-साहित्येतिहास को नए कालनाम-युगनाम दिए और दूसरी और मौर्ख्यशास्त्र का प्रवर्तन किया, तीसरी ओर बौद्धिकम्स का प्रवर्तन किया और चौथी ओर अनाचारपत्र, दुर्दर्शन, आभासवाणी, साहित्य टकादेमी जैसे और बौद्धिक नामांतर किए। पाकिस्तान का पापिस्तान और बांग्लादेश का कांग्लादेश 'तात्त्विक' नामकरण भी किए हैं।

सबसे बड़ी है। किन्तु अनेक विवशताओं और अयोग्यताओ के बावजूद, मैं इस गंभीरतम विषय पर लिखने का यत्किंचित् अधिकारी अवश्य हूँ। बाल्यकाल से अब तक मैं मौर्ख्य-दर्शन के लिए भटकता आया हूँ। विभिन्न संपादकीयो से लेकर संसद तक, विभिन्न दीक्षांत-भाषणों से लेकर ग्रंथों तक, विभिन्न यात्राओ से लेकर विविध प्राध्यापनों तक मैंने मौर्ख्य का गहन शोध किया है। मैंने मौर्ख्य के शत-शत रूपो के साक्षात्कार किए हैं। मौर्ख्यनुशीलन मेरे जीवन का तप है। सामान्यतः धार्मिक, मज़हबी, दार्शनिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक, राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, क्रीडागत, मल्लकलागत, चलचित्रगत और विशेषतः दूरदर्शन-कार्यक्रमों (अधिकतर समाचारों), आकाशवाणी-कार्यक्रमों (अधिकतर समाचारों), समाचारपत्रों (अधिकतर सपादकीयों एव पाठकपत्रों) के अथाह सागर से मौर्ख्य-रत्नों की खोज कितना कठिन कार्य है—इसे वज्र-मूर्ख तक समझ सकता है। इस कठिन कार्य में व्यय होता है, कष्ट होता है और अपार धैर्य के बिना इसका संपादन संभव ही नहीं है। मैंने सुदीर्घ काल तक सामग्री जुटाई है, अर्से तक विचार किया है, और इतने पर भी, डरते-डरते लिखा है क्योंकि मौर्ख्य को स्वीकार करना किसी-किसी के ही दम का जलूसा है। प्रत्येक व्यक्ति कभी-न-कभी और कहीं-न-कहीं मौर्ख्य का आभास या भास करता है, एकाध बार तो कह तक डालता है, किन्तु स्वीकार नहीं करता और दूसरे के कहने पर भिड तक जाता है। मानव अंतर्विरोधों का पुज है। अपनी बात भी दूसरे के मुख से स्वीकार नहीं करता। अहं की जटिलताओं का विश्लेषण कठिन है। वैसे, सामान्यत. देश और विशेषतः दिल्ली में अनेक अधिकारी विद्वान् विद्यमान है तथा पड़ोस के पाकिस्तान का कहना ही क्या, पश्चिम की मौर्ख्य-महानता तो वहाँ की धनगत-महानता एवं दलगत-महानता के अनुरूप अद्वितीय ही है; फिर भी, जब सक्षमतर व्यक्ति कतराते हैं तब मैं भी कतराऊँ—यह उचित नहीं। एक शास्त्र के प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त हो गया तो सारा तप एवं श्रम धन्य हो जाएगा। सहृदय पाठको एवं सुविज्ञ विचारको ! क्या आप मुझे मौर्ख्यशास्त्र के जनक का पद प्रदान करने में कृपणता का परिचय देंगे ? आचार्यो एवं महानों की चिन्ता नहीं क्योंकि वे अपने अतिरिक्त केवल उसी को महत्त्व देते हैं जिसके आगे नाम-दाम-काम बनाने वाली खीसें निपोरते हैं अथवा जो उनके आगे ऐसी खीसे निपोरता है—महान् मानव ने खीसें निपोरने का गुण उस महान् शुनक से प्राप्त किया है जो ऋग्वेद, रामायण, महाभारत, ओडिसी इत्यादि महत्तम स्तरीय ग्रंथों में चित्रित है। परन्तु आप तो भिन्न हैं अर्थात् भिनभिनाते नहीं हैं। भिन + न = भिन्न। होमर पाश्चात्य कविता के जनक माने जाते हैं, थेलीज़ पाश्चात्य दर्शन के, यूक्लिड पाश्चात्य रेखागणित के, अरस्तू पाश्चात्य विज्ञान के, मार्क्स वैज्ञानिक-

समाजवाद के; और, पश्चिम में ऐसे जनकों की संख्या बहुत है। पूर्व इस दिशा मे भी पश्चिम की नकल कर रहा है। सौभाग्यवश अब राष्ट्रों के जनक भी प्रकाश मे आने लगे हैं—उनके पहले उनके राष्ट्र पितृहीन थे। सुन यात सेन, लेनिन, गाधी, कमाल पाशा, जिन्ना, हो ची मिन्ह, मुजीब इत्यादि के नाम पर्याप्त होंगे? इधर, स्वतंत्र भारत में राज्यों के जनक भी उभरे हैं। राज्य का जनक कौन है? वह व्यक्ति जो कम-से-कम दस वर्ष मुख्य मंत्री रहे या वर्ग-विशेष या जाति-विशेष या नृवंश-विशेष के वर्चस्व-प्रतिष्ठापन हेतु विराट् युद्ध का नेतृत्व करे—गोपीनाथ बारदोलोई (असम) का नाम लेना उचित न होगा क्योंकि वे राष्ट्रपुरुष भी थे, किन्तु रविशंकर शुक्ल (मध्य प्रदेश), मोहनलाल सुखाड़िया (राजस्थान), प्रताप सिंह कैरों (पंजाब), अन्नादोरै (तमिलनाडु), इत्यादि के नाम लिए जा सकते हैं। संभवतः वह दिन अधिक दूर नहीं जब जनपद-जनक, क्षेत्र-जनक, ग्राम-जनक अथवा नगर-जनक, क्षेत्र-जनक इत्यादि प्रकाश में आने लगेंगे। भारतीय साहित्य मे भी 'जनकों' की संख्या बहुत बड़ी है : वाल्मीकि कविता के जनक हैं, भरत[1] काव्यशास्त्र के जनक हैं, बंकिमचंद्र आधुनिक बांग्ला-साहित्य के जनक हैं (आधुनिक भारतीय उपन्यास के जनक हैं), नर्मद आधुनिक गुजराती-साहित्य के जनक हैं, फकीर मोहन सेनापति आधुनिक उड़िया-साहित्य के जनक हैं, भारतेन्दु हरिचन्द्र आधुनिक हिन्दी-साहित्य के जनक हैं, गुरुजाड़ अप्पाराव आधुनिक तेलुगू-साहित्य के जनक हैं; और सभी साहित्यों में ऐसे जनक विद्यमान है। संसार में काव्येतर विधाओं के जनक भी कम नहीं हैं : मॉन्तेन निबंध के जनक माने जाते हैं, एडगर एलेन पो आधुनिक कहानी के जनक माने जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका अभी तरुण राष्ट्र है, किन्तु एक छोटा-सा जनक (पो) वहाँ भी हो चुका है।[2] इस परिस्थिति में, मुझे मौर्खशास्त्र का जनक न मानना घोर अन्याय होगा। मेरी कठिनाई इन सब जनकों से कहीं बड़ी है, क्योंकि इनके पास कोई-न-कोई आधार था, कोई-न-कोई परम्परा थी और मुझे शतशः आत्मनिर्भर रहकर जनककार्य संपादित करना पड़ रहा है।

भूमिका बढ़ती जा रही है और मैं भूमिकावादी नहीं हूँ, प्रसिद्ध भूमिका-लेखक नहीं हूँ, इस स्थिति में नहीं हूँ कि चार-छह पुस्तकों अथवा पुस्तिकाओं की भूमिकाएँ संगृहीत करके विचारक अथवा विवेचनात्मक-गद्यकार अथवा समीक्षक अथवा

---

1 रामानुज भरत, जैन-पूज्य ऋषभदेव-पुत्र भरत, रसशास्त्राचार्य-नाट्याचार्य भरत (आद्याचार्य भरत)।

2 वैसे, वैज्ञानिक जनकों की अमेरिका में कमी नहीं : वायुयान-जनक विल्बर राइट एवं ऑरविल राइट (बंधुद्वय), वाष्पपोत-जनक रॉबर्ट फुल्टन, अणुबम-जनक ओपेनहाइमर, उद्जनबम-जनक एडवर्ड टेलर इत्यादि। आविष्कार भी वहाँ सर्वाधिक हुए हैं। अमेरिका वैज्ञानिक उन्नति का महानतम एवं प्रतीक राष्ट्र है।

दार्शनिक अथवा ऐसा ही कुछ बन सकूँ और मानव जाति के ज्ञान में वृद्धि करके अमर हो जाऊँ। ख्याति एवं गौरव सर्जन से अधिक परिस्थिति पर निर्भर करते है। फिर भी, प्रस्तुत प्रबंध (मौर्ख्यशास्त्र—1969 ई०) की रूपरेखा का स्पष्टीकरण आवश्यक है। यदि निकट या दूर भविष्य में मौर्ख्यशास्त्र स्नातक अथवा स्नातकोत्तर कक्षाओं का विषय बन गया, तो मेरा ग्रंथ ही आधार-ग्रंथ अथवा प्रस्थान-ग्रंथ माना जाएगा, क्योंकि मैं इस शास्त्र का जनक माना जाऊँगा। तब यह भूमिका विशेष उपयोगी सिद्ध होगी। विश्वविद्यालय दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहे हैं, प्रायः प्रति वर्ष उनमें नवीन विषयों (ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों से लेकर विश्व एवं ब्रह्मांड तक प्रसरित) का समावेश किया जा रहा है। अतएव, मौर्ख्यशास्त्र जैसे आधार-विषय का भविष्य केवल उज्ज्वल ही हो सकता है। 'मौर्ख्यशास्त्र' देखकर डॉ० पुष्पा बंसल, डॉ० शशिभूषण सिंहल ने विस्मय व्यक्त किया, प्रो० महेन्द्र कुमार विद्यार्थी ने इसे विलक्षण माना, अंग्रेजी-विद्वान् डॉ० श्रीकृष्ण त्रिवेदी ने संसार भर के साहित्य की अपने ढंग की अकेली पुस्तक बताया है। अनेक विद्वान् (जिन्हें यात्रा, भाषण, नियुक्ति, भूमिकालेखन, अध्यक्षता, मुख्यअतिथि-व्यस्तता, उद्घाटन इत्यादि-इत्यादि-इत्यादि की भयावह व्यस्तता के कारण अध्ययन का अवकाश नहीं मिल पाता—अनुशीलन का तो प्रश्न ही नही उठ पाता) इसके विषय में सुनकर चकित रह गए। अतः निराशा का कारण नहीं।

प्रस्तुत प्रबंध का शीर्षक डॉलर एवं पेट्रो-डॉलर के प्रभाव तथा साम्यवाद एव समाजवाद की उन्नति-अतीतकथा एवं वर्तमात-अधोगति युग के नेताओं एव विद्वानों तक को कठिन लग सकता है—ग़ज़लबाज़ तो मौर्ख्यशास्त्र को मुखछवि-सुधारशास्त्र समझ सकते हैं (कॉस्मेटिक्स का ज़माना है जो पॉलिटिक्स के बाद तथा एस्थेटिक्स एवं एथलेटिक्स के साथ एक शास्त्र तक समझ लिया जा सकता है)। साधारण जनता मौर्ख्यशास्त्र को मुख्यगतशास्त्र या मुख्यमंत्रिशास्त्र तक समझ सकती है। इसलिए 'आमफ़हम ज़ुबान' या सर्वहारा भाषा जो पढे-लिखे लोगों से प्रकाशकों तक में समादृत है, विश्वभाषा-रानी अंग्रेज़ी के 'ईडिऑटिक्स' शब्द को गढ़कर चस्पाँ कर दिया है। यह प्राविधिक शब्द मैंने स्वयं गढ़ा है। 'ईडिअॅट' शब्द से 'ईडिऑटिक्स' शब्द गढ़ने में मुझे वैसी कोई कठिनाई नहीं हुई जैसी केन्द्रीय प्रशासन के अंग्रेज़ी से हिंदी शब्द गढ़ने वाले या अनुवाद-शब्द प्रस्तुत करने वाले 'आचार्यों' को होती है क्योंकि न भत्तों का भड़भंड था न दौरो का द्वंद्व। जब 'साहित्य संगम' नाम को लतियाते हुए 'साहित्य अकादमी' को वरीयता प्रदान की गई थी तब सर राधाकृष्णन् ने इसकी विद्वत्तापूर्ण व्याख्या की थी : संस्कृत का साहित्य एवं यूनानी का अकादमी अर्थात् विश्व की दो

महानतम आधार-भाषाओं का समन्वय या पूर्व-पश्चिम का समन्वय ! मेरे मत से, 'साहित्य' शब्द सांप्रदायिक है; यह खेद का विषय है अतः नाम 'अदब अकादमी' होना चाहिए था क्योंकि 'अदब' एकदम असांप्रदायिक या धर्मनिरपेक्ष है। इससे भी बड़ा खेद है कि 'भरत' शब्द को संविधान में मान्यता प्रदान की गई जो राष्ट्र की धर्मनिरपेक्षता एवं समाजवाद के एकदम विरुद्ध है, क्योंकि भरत हिंदू हैं, सामंती युग के प्रतीक हैं, सर्वहारा के निकट नहीं हैं। अयोध्या का नाम बाबरपुर रखा जाना चाहिए क्योंकि राम कथा हैं, व्यक्ति नहीं (जो कभी और कहीं नहीं हुए) एवं अयोध्या एक कल्पित नगरी है—राम एवं अयोध्या कथा, कल्पना, मिथ्या हैं जिनके कारण सांप्रदायिकता भयानक रूप से बढ़ी है, जबकि समाजवादी बाबर धर्मनिरपेक्षता, प्रगति एवं शांति का प्रतीक है जिसने मुसलमान आबादी न होने पर भी एक निर्जन एवं शांत स्थान में पवित्र मस्जिद बनवाई थी जिसमें तुलसीदास सोते थे ("माँगि कै खइबो मसीति को सोइबो"—कवितावली)। प्रतिक्रियावादी बूर्ज्वा तत्त्वों ने राम की कल्पना के साथ अयोध्या, जनकपुर, सीतामढ़ी, बक्सर, प्रयाग, शृंगवेरपुर, चित्रकूट, पंचवटी, ऋष्यमूक, रामेश्वरम् इत्यादि की कल्पनाएं भी कर डालीं (जैसा कि कभी और कहीं नहीं की गई थीं) और रामनवमी, विजयादशमी, दीपावली, होली जैसे त्यौहार गढ़ डाले और उन्हें राममय बनाने का पाप किया—इस सब स्थानों के नाम बदलकर तथा इन पर्वों से राम को नेस्तनाबूद कर प्रगतिशीलता एवं धर्मनिरपेक्षता की रक्षा करनी ही चाहिए। हर्ष है कि रामनवमी की सरकारी प्रचार एवं समाचारपत्र उपेक्षा करते हे तथा विजयादशमी को 'सत की असत पर विजय' एवं दीपावली को 'ज्योति-पर्व' कहते हुए 'राम' का 'कॉम्प्लीट ब्लैक-आउट' कर राष्ट्र को पच्चीसवीं सदी की ओर ढकेलते हैं। रामसाहित्य पर कम-से-कम भारत में रोक लगानी चाहिए (चीन, जापान, कोरिआ, वियतनाम, लाओस, कम्बोडिआ, थाईलैण्ड, मियानमार[1] या म्याँमा या बर्मा, मलेसिआ इत्यादि की रामायणों पर प्रतिबंध का विश्वव्यापी आंदोलन भी छेड़ा जा सकता है)।...देखिए, विषय इतना जटिल है कि कहॉ से कहॉ खींच लाया ! हाँ, तो प्रकृत विषय पर आता हूं : अंग्रेज़ी भारत की जनभाषा है, इसे भारत के अंतिम लाट (बिना 'लॉर्ड' हुए ही) चक्रवर्ती राजगोपालाचारी से लेकर उनके अन्य उत्तराधिकारियों अन्नादोरै, करुणानिधि, रामचंद्रन् इत्यादि बखूबी समझा चुके हैं तथा अनेक बंगाली और अकाली भी इस मामले में अगुवे बनकर कृतार्थ हो चुके हैं। हिंदी की तो चिंदी-चिंदी उड़ रही है : सरकारी-गै़रसरकारी दफ्तरों में अंग्रेज़ी की अर्ज़ी पर विशेष ध्यान दिया

1 सांप्रदायिकता की 'गंध' आती है। हिंदू कुश (हिंदू कत्ल) जैसे प्रगतिशील नाम से उलटी ध्वनि। भारत को नाम बदलने का आग्रह करना चाहिए।

जाता है क्योंकि हिंदी गँवारों और ग़रीबों की भाषा समझी जाती है (बीम्स ने हिंदी को आर्यपूर्व वासियों की भाषा माना है, सर सैयद अहमद ख़ाँ ने गँवारो की और तासी सर के भक्त थे ही) जिसकी अर्ज़ियाँ फाड़कर फेंकी न भी गई तो फ़ाइलों के बोझ तले कराहते-कराहते मर जाती हैं। अंग्रेज़ी बोलने से लाख काम बनते हैं और रोब ग़ालिब होता है। यहाँ तक कि 'आइ लॅव यू' का जो उभयपक्षीय प्रभाव पड़ता है वह हिंदी या किसी अन्य भारतीय भाषा के इसी वाक्य का नहीं (फ़िल्में भी साक्षी हैं)। अंग्रेज़ी में गाली देना तक योग्यता का द्योतक माना जाता है। हिंदी पर प्रतिबंध लग जाए तो फालतू बकवास से नजात मिले और लगे हाथ शोर से पर्यावरण-रक्षा भी होती चले—अंग्रेज़ी में बोलचाल बेहद कम ही संभव है, क्योंकि सोच-समझकर बोलना अप्रतिवार्य है, शब्दाभाव मौन-प्रेरक है, कोष-उपलब्धि सर्वत्र संभव नहीं। अंग्रेज़ी का जनभाषा होना इसी से सिद्ध है कि बेरे, ड्राइवर, क्लीनर, कंडक्टर, टेलर, बार्बर, कॉब्लर, स्वीपर, टैक्सीवाले, स्कूटरवाले, ताँगेवाले, इक्केवाले, कुली उर्फ पोर्टर इत्यादि इसे न बोलने वालों को हिकारत की नज़र से ही नहीं देखते, उनसे तंग भी आ जाते हैं। मेरे एक मित्र एक रेस्त्राँ में जा बैठे और जब बैरा ('बहरा' नहीं) आया तब बोले, "एक जाम कहवा !" वह उनकी ओर आँखें और मुँह तीनों फैलाकर घूरने लगा (सयोगात् वे विश्वविद्यालय-विद्वान् भी थे)। वे फिर बोले, "एक जाम..." उत्तर मिला, "जाम तो है पर कहवा क्या है ?" वे बोले, "जाम नहीं, चषक।" बेरा मालिक की ओर लपका। रेस्त्राँ उस समय ख़ाली था। अतः मालिक कॉउन्टर छोड़कर आए और बोले, "साब, ऐसा जुबान बोलो जो समझ... !" वे बोले, "एक कप कॉफ़ी !" दोनों प्रसन्न होते भए और काम बन गया। एक बार बैंक में पैसे लेने गया तो देखा दो बाबू उर्फ़ क्लर्क लड़ रहे हैं किंतु लड़ाई का माध्यम अंग्रेज़ी होने के कारण वह 'व्हाट डू यू थिंक ऑफ योरसेल्फ ?'[2] "आई विल सी यू।"[3] इत्यादि से आगे न बढ़ पाने के कारण टॉय-टॉय-फिस्स होकर रह गई और ऐसा तब हुआ जब दोनों मित्र पंजाबी थे जिनकी प्राणवत्ता विश्वविश्रुत है और पंजाबी भाषा का तेज़ और ओज तो बहरे भी भली भाँति जानते हैं। पब्लिक ('अपब्लिक' होता तो अर्थ आसानी से खुलता) स्कूलों के लड़के सरकारी स्कूलों के लड़कों की तुलना में कम बोलते हैं, कम गरियाते हैं, कम लड़ते हैं, जिसका एकमात्र कारण महान् अंग्रेज़ी भाषा ही है (जिसमें महारत के लिए पॉप्डीज पढ़ने और ब्लू फ़िल्म्स देखने से लेकर सल्मान रश्दी की क्विकी 'द सेटेनिक वर्सेज़' उपन्यास तक पढ़ना पड़ता है)। एक किस्सा पेशेनज़र है। लखनऊ स्टेशन से निकलकर

1. कई लोग इस संदर्भ में ग़लत बोलते हैं।
2. तुम अपने को समझते क्या हो ?
3. मैं तुम्हें देख लूँगा।

एक सज्जन रिक्शेवाले से बोले, "सचिवालय चलोगे ?" रिक्शेवाला उनका मुँह ताकता रहा। उन्होंने प्रश्न दुहराया तो उत्तर मिला, "ये जगा सगल नखलऊ मे कहीं नहीं है।" कुछ पल झख मारने के बाद उन्होंने कहा, "सेक्रेटेरिएट चलना है ?" 'सेक्रेटेरिएट' जैसे सरल एवं सुन्दर शब्द के सुनते ही रिक्शेवाला तत्क्षण जमीन से उचट कर रिक्शे की गद्दी पर जा डटा, "बइठिए, पहिले आप अँगरेजी मे बोला तो समुझ में नहीं बइठा—अपना हिंदी में बोलने पर संचोक कइसा ? अभी चहुँपा देता हूँ !" पढे-लिखे लोगों की भाषा का नामकरण भी हो जाना चाहिए। इस भाषा के तीन नमूने पेश हैं (जो क्रमशः साइंटिस्ट, टीचर एव क्लर्क-वाइफ़ के हैं) .

1. इन्पुट कॉस्टली हो गए हैं देअरफ़ॅार ऑउटपुट का कॉस्टली होना इम्मिनेन्ट है। फ़र्टिलाइज़र्स के बिना प्रोडक्शन इन्क्रीज़ करना इम्पॉसिबूल है। डेपलप्ड सीड्स एड प्रॉपर इरिगेशन भी एशेंसल हैं। फ़ार्मर्स को इस सब का अंडरस्टैंडिग कराना होगा...।

2. इंडिआ का कल्चर बहुत एंशंट है जो रिग्वेदा से ही क्लीअर है। उपानिसादस् एंड पुरानाज़, बुड्ढा एंड माहावीरा, शंकरा एंड रामानुजा, वाल्मीकि एंड कालिदासा, अजेंटा एंड एलोरा, फ़तहपुर सिकड़ी एड ताजमहल तो बट् या फ्यू सिबल्स हैं...

3. हमारा मदर-इन-लॉ हमको बहुत एमबारास करता था; न प्रॉपरली स्लीप करने देता था, न प्रॉपरली ईट करने देता था, न प्रॉपरली ड्रिंक करने देता था—लाइफ़ बर्डेन हो गया था...

इस भाषा के बोलने वालों के प्रति जनता की श्रद्धा अनायास उत्पन्न होती है क्योकि यह पूर्व-विश्वस्वामि-भाषा भी है, वर्तमान-विश्वस्वामिभाषा भी ओर "यथा राजा तथा प्रथा" सनातन सत्य है। मध्यकाल के स्वामि-प्रभाव-संस्कार सर तेजबहादुर सप्रू, मुल्कराज आनंद[1] इत्यादि से ग़ज़लबाज़ों, शेरबाज़ों, बज़्मबाजो इत्यादि तक में दिखाई दे सकते हैं : उर्दू में जो अंदाज़ेबयाँ, नज़ाकत और नफ़ासत है, जो कशिश है, वह हिंदी में कहाँ ? आखिर, बादशाहों, नवाबों, वकीलों ओर शायरों की नफ़ीस ज़ुबान रही है ! हमारे मेधावी छात्र 'इलीट'-भाषा अंग्रेज़ी को त्याग कर स्वयं को मूर्ख नहीं सिद्ध कर सकते : मम्मी ('ममी'), डैड ('डेड') ब्रदर, सिस्टर, कज़िन, नेफ्यू, हस्बेण्ड, वाइफ़, डार्लिंग, फ़ादर-इन-लॉ, मदर-इन-लॉ, ब्रदर-इन-लॉ, सिस्टर-इन-लॉ, फ्रेंड, ब्वॉय-फ्रेंड, गर्ल-फ्रेंड, बॉस, सर्वेन्ट इत्यादि सरल-सुगम एवं सुन्दर शब्दों के सामने अम्मा, बप्पा, भाई, दादा, दीदी, चचेरा भाई, भांजा, पति, पत्नी, प्रियतम, ससुर, सास, जीजा, साला, साली, युवक-मित्र,

1 अंग्रेजी के अलावा।

युवती-प्रेमिका, अधिकारी, सेवक इत्यादि कालातीत एवं पोंगापंथी शब्द बोलने मे शर्म क्यो न आए ? कहाँ 'अंकल' जैसा सार्वभौम प्रयोग, कहाँ चाचा या मामा या फूफा या मौसिया इत्यादि की फूहड़ विविधता (जो राष्ट्र की भावात्मक एकता की दृष्टि से भी निन्दनीय है) ! ठीक यही बात अपनी जगह 'ऑन्टी' पर लागू होती है। यह अंग्रेज़ी के दम का ही जलूसा है कि हिंदी-प्राध्यापक भी अपनी क्षमता-अक्षमता के अनुसार हिंदी भी अंग्रेजी में पढ़ाते हैं; क्योंकि इससे दबदबा बढ़ता है, रुतबा बढ़ता है और छात्रों को विषय समझ में भी ठीक-से तथा शीघ्रतर आ जाता है। अन्य विषयों में, अंग्रेज़ी माध्यम प्राध्यापकों के लिए अप्रतिवार्य है क्योंकि उसी में छात्रकाल में विषय रटा होता है तथा माध्यम-परिवर्तन से विषय समझने की जहमत फोकट-फ़ंड में उठानी पड़ती है। छात्र गँवार समझते हे सो घलुए में। भारत में ज्ञान पर माध्यम या भाषा (अंग्रेज़ी) को वरीयता प्राप्त है।

अतएव, 'ईडिऑटिक्स' का प्रयोग सर्वतः उचित एवं सामयिक है। 'मौर्ख्यशास्त्र, दैट इज़, ईडिऑटिक्स' की प्रेरणा मुझे संविधान के पूज्य नेहरू द्वारा आदेशित 'इंडिआ, दैट इज़, भारत'[1] से प्राप्त हुई है।

मौर्ख्यशास्त्र अपने विषय का आदिग्रंथ है। आशा है, मानव-प्रतिभा इसे अतग्रंथ नहीं बनने देगी। संसार में आदिग्रंथ कई हैं, जिनमें कुछ इतिहास की दृष्टि से अभी कल लिखे गए हैं और साहित्य की दृष्टि से उनमें आदि का कुछ भी नहीं है। किंतु मौर्ख्यशास्त्र वस्तुतः आदिग्रंथ है क्योंकि इसकी आदिता एवं मौलिकता निर्विवाद है।

मौर्ख्यशास्त्र एक शोधप्रबंध है जिसमें पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय एक निबंध है। किंतु पाँचों अध्यायों का विशेष एवं निकट संबंध पंच-ज्ञानेन्द्रियों एवं पंच कर्मेन्द्रियों के विशेष एवं निकट संबंध से स्पष्ट है। प्रथम अध्याय या निबंध का शीर्षक 'मौर्ख्य एवं उसका इतिहास' है जिसमें मौर्ख्य की व्युत्पत्ति, उसका अर्थ एव इतिहास विवेचित है। द्वितीय अध्याय या निबंध का शीर्षक 'मौर्ख्यशास्त्र का अन्य शास्त्रों से संबंध' है जो सामाजिक शास्त्रों में आवश्यक रूप से रहता ही है। तृतीय अध्याय या निबंध का शीर्षक 'मौर्ख्य एवं साहित्य' है। मैं साहित्य का सेवक हूँ (लोग माने या न माने)। अतएव, साहित्य के सर्वव्यापक मौर्ख्य से घनिष्ठ संबंध को यत्किंचित् अधिकार के साथ विवेचित, विश्लेषित एवं संश्लेषित करना अपेक्षाकृत सुगम रहा है—कितना अच्छा होता यदि कोई दिग्गज आचार्य या जाना-माना कवि (कविसम्मेलनी कवि होता तो

१ हरि विष्णु कामठ (एक योग्यतम सांसद) ने 'भारत, दैट इज, इंडिआ' का आग्रह किया, किंतु नेहरू जी हठ में अडिग रहे।

सोने में सुगंध क्योंकि जनसंपर्क मौर्ख्य का व्यापक दर्शन कराता है) इस विषय पर पूरे अधिकार से लिखता (मुझे आचार्य मानने वाले कम हैं और कवि मानने वाले उससे भी कम)! मौर्ख्य का साहित्य से संबंध निरूपण करने में मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि अन्य विषय पीछे हैं—द्वितीय अध्याय या निबंध प्रमाण है। अतः आशा है अन्य विषयों (विशेषतः इतिहास) के विद्वान् मुझ पर पक्षपात का आरोप न लगाएंगे। चतुर्थ अध्याय या निबंध में 'सर्वमौर्ख्यवाद' पर प्रकाश डाला गया है। सर्वमौर्ख्यवाद मौर्ख्यशास्त्र की रचना के परिश्रम-दधि का नवनीत है। निस्सन्देह, यह दार्शनिक निरूपण सब को संतुष्ट कर सकेगा। किसी को उपेक्षा का उपालंभ न देना पड़ेगा। मेरा बौद्धिक-अद्वैतवाद, बौद्धिकरस एवं वस्तुवाद का सिद्धांत-त्रय इसमें विशेष उजागर हुआ है। पंचम अध्याय या निबंध का महान् शीर्षक है, 'संसार के मूर्खो, एक हो!' मुझे विश्वास है, मार्क्स एवं एंजेल्स के 'द कॉम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' के 'संसार के कामगरो, एक हो!' से भी बहुत-बहुत व्यापक आयामों तक प्रसरित इस निबंध को कॉमरेडगण-कॉमरेडनीगण बहुत पसंद करेंगे। वैसे भी, मैंने मौर्ख्यविवेचन में सार्वभौम समता का प्रतिपादन आद्यन्त किया है, यत्र-तत्र-सर्वत्र किया है; अतः साम्यवादियों एवं समाजवादियों से न्याय की विशेष आशा कर सकता हूँ। कर्मवादी, नियतिवादी, काफ़िरवादी, नरकवादी, हिंसावादी, संप्रदायवादी मुझे पानी पी-पीकर गरिया सकते हैं; किंतु वे भी यदि ध्यान देंगे तो अपने साथ पूरा न्याय पाकर मेरी प्रशंसा करेंगे। मैंने 'संसार के मूर्खो, एक हो!' का जो इंकलाबी नारा बुलंद किया है, उसका महत्त्व अपार सिद्ध हो सकता है। यदि संसार के मूर्खों की एक साधारण संख्या भी अपने-आपको पहचान सके, अपनी छिपी हुई शक्ति का आकलन कर सके, एकत्र हो सके (बुद्धिजीवी, ब्राह्मण, सारमेय एवं हस्ती एकत्र न होने या आपसी फूट के लिए कुख्यात हैं—इससे भी लाभ उठाया जा सकता है), अपना दल बना सके, तो वह महानतम दल होगा, सच्चा धर्मनिरपेक्ष दल होगा, वास्तविक विश्ववादी दल होगा, क्योंकि मौर्ख्य एक सार्वभौम सत्य है। सर्वं खलु इदं मौर्ख्यम्! सर्वमौर्ख्यवाद उसका दर्शन होगा। दल का प्रतीक सर्वहारापूज्य रासभ होगा। इसीलिए, रासभ के धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक (जैविक), ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक महत्त्व की मीमांसा इसी अध्याय या निबंध में की गई है। यह उपसंहारात्मक अध्याय या निबंध एक बड़ी सीमा तक भावात्मक हो गया है; फिर भी, इसकी भावात्मकता ने शास्त्रीयता की अवहेलना नहीं की अर्थात् हृदय बुद्धि के साथ-साथ चला है अथवा इडा ने श्रद्धा को गले लगाया है।

जिन दिनों मैं मौर्ख्यशास्त्र की सृष्टि कर रहा था उन दिनों की व्यस्तता को

तोड़कर एक कक्षा के छात्रों ने पूछा. "सर, आजकल क्या लिख रहे हैं ?" मैंने सच-सच बता दिया (यह ऐसी लत है जिसके कारण मेरी अनेक स्थापनाएं आचार्यों, लिक्खाडों, कवियों इत्यादि तक मेरे ग्रंथ-प्रकाशन से पूर्व ही पहुँच जाती है और वे 'मौलिकता' का दबा-दबा दावा तक करने लगते है)। उन्होने गर्वदीप्त होकर कहा, "तब तो हम लोगों से आपको बहुत सामग्री मिलती होगी?" इस पर मैंने अपने प्राध्यापक-बंधुओं, आचार्य-बधुओ एवं कवि-वधुओं के प्रति संपूर्ण सम्मान का ध्यान रखते हुए कुछ-कुछ ऐसा कहा था · मैं आप लोगों की वर्तमान ऊर्जा का आदर करता हूँ, आपकी भावी प्रतिभा के प्रति श्रद्धा रखता हूँ, किंतु अभी प्राध्यापक-कक्ष, दीक्षांत-भाषण, अन्य भाषण, कवि-सम्मेलन इतना अधिक आगे पड़ जाते है कि विनम्र क्षमा-याचना का ही अवलंब ग्रहण करना पड़ रहा है। हर्ष है कि उदार छात्रों ने क्षमा कर दिया। खेद है कि प्राध्यापकों, आचार्यों, कवियों इत्यादि ने न्याय नहीं प्रदान किया।

संभव है, यह ग्रंथ लोकप्रिय नहीं तो साहित्यिकगण-प्रिय हो जाए क्योंकि इसमे मूल प्रवृत्ति का विशद विवेचन किया गया है ? यदि प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, तो संभव है, मैं इस दिशा में और आगे बढ सकूँ। युग की प्रगति को देखते हुए, मुझे निराशा का कोई कारण नहीं दीखता।

15. मौर्ख्य और साहित्य[1]

मौर्ख्य एवं साहित्य का संबंध इतना घनिष्ठ एवं स्पष्ट है कि अब मुझे केवल कहना है, 'विवेचन' नहीं करना। दो अध्यायों के कठिन परिश्रम के बाद मैं राहत की सांस ले रहा हूँ। साहित्य सामाजिक-चित्रागार है और समाज मौर्ख्य-विश्वकोश है। अतएव, प्रस्तुत अध्याय में मैं जो-कुछ कहूंगा, वह पाठक को जाना-पहचाना लगेगा और वह मंझन के "देखने ही पहिचान्यों तोही" अथवा प्रसाद के "परिचित-से जाने कब के, तुम लगे उसी क्षण हमको" जैसे उद्‌गारों को उद्धृत करने लगेगा।

कविता 'साहित्य मे साहित्य' है, और नगेन्द्र के आलोचना को सृजनात्मक साहित्य मानने के बावजूद, सृजनात्मक साहित्य में उसका स्थान अतुलनीय रूप से सर्वश्रेष्ठ है। कविता साहित्य की आत्मा है। कविता अन्य विधाओं की जननी हे, अतएव, उसी को वरीयता प्रदान करना उचित है।

मौर्ख्य-रहित साहित्य की कल्पना असम्भव है। नेपोलिअॅन के वास्तविक एव 'प्रमाता' (प्रमत्त नहीं) के द्वारा संशोधित शब्द क्षमा करें। भाव मौर्ख्य का उदात्त-रूप हैं। आचार्यो ने भाव (स्थायीभाव, अनुभाव, संचारीभाव अथवा 'व्यभिचारी' भाव का तत्त्व रस-सिद्धांत की आत्मा है) की डुगडुगी पीटकर ही साहित्य-रसिकों को नचाया है। कहा जाता है, भाव के बिना मानव जीवित नहीं रह सकता।

भावुक शब्द का उच्चारण करते ही विह्वल-मौर्ख्य साकार हो उठता है। भावुक से लक्ष्मी घबराती है। किंतु, वह सरस्वती के हंस की स्वर्ग में उड़ान देख-देखकर जी लेता है। भावुक पर सरस्वती की कृपा थी; किंतु इधर एक अर्से से उस पर आलोचक नामक विचार-अनुभूति तनय (अथवा विरोध-निलय) ने एकाधिकार स्थापित कर लिया है। चूंकि अधिकांश आलोचक भूतपूर्व-कवि होते हें, इसलिए कविता के दोषों को समझना उनके लिए अति सुगम रहता है। सम्प्रति कवि-अश्व की वल्गा पर आलोचक-सूत का नियंत्रण स्थापित हो चुका है ओर

---

1 'मौर्ख्यशास्त्र (ईडिऑटिक्स)' ग्रंथ से।

इसीलिए, उनकी गति में नियन्त्रण के दर्शन कठिन हो गए हैं। आलोचक के कर्त्तव्य अनेक हैं। कौन कवि है, कौन सुकवि है, कौन महाकवि है, कौन विश्वकवि हे, कौन ब्रह्माण्डकवि है, कौन अकवि है, कौन कुकवि है, सच्ची कविता कौन हे, झूठी कविता कौन है, अकविता कौन है, उच्चादर्श क्या है, निम्ना दर्श क्या है, शून्यादर्श क्या है, श्लील क्या है, अश्लील क्या है, किस विधा का 'उदात्त' रूप केसा होना चाहिए, विश्व-कल्याण किसे कहते हैं, अभ्युदय और निःश्रेयस् क्या हे, आदि-आदि जटिल प्रश्नों के विस्तृत उत्तर देना उसी के दम का जलूसा हे। उसका काम बड़े जीवट का है, इसमें शक करना खतरे से खाली नही। यों, नेता उसे सहयोग अथवा प्रेरणा दे सकता है। सिकन्दर (यूनानी, हिन्दुस्तानी नहीं) ने कहा था, मैं परमात्मा हूँ और लोग मेरा नाम जपे। लुई चौदहवे कहा करते थे, 'मैं फ्रांस हूँ, मैं राज्य हूँ।' नैपोलिअॅन कहा करते थे, 'मै क्रांति हूँ।' आलोचक कहता है, मैं साहित्य का नियामक हूँ। आलोचक स्वयंभू साहित्य-सम्राट् है। किंतु जिस प्रकार जनता सम्राटो को नहीं प्रत्युत संतों की पूजा करती है, उसी प्रकार साहित्य में कवि का स्थान आलोचक से बहुत अधिक श्रेष्ठ मानती है। कवि के पश्चात् नाट्यकार, उपन्यासकार आदि सृजनात्मक प्रतिभा के धनी रचयिता आते हैं। आलोचक का स्थान अंत में आता है। रूपक की दृष्टि से इसे यों कहा जा सकता है; साहित्य शरीर में काव्य आनन है, नाटक-उपन्यासादि अन्य विधा-समूह उदरादि हैं, आलोचक पुच्छ है। गाड़ीवान बैल की पूँछ मरोड़ता हे, आलोचक साहित्यकार का मेरुदण्ड तोड़ता है।

कहते हैं, जब मनु आदिमानव के साथ-साथ आदिनरेश भी बन गए, तब सोमरस में विशेष रुचि लेने लगे। एक दिन वे सोमातिपान किए सरस्वती नदी के सुरम्य पुलिन पर मंद अटन कर रहे थे। सहसा एक 'महान् विचार' उठा जो सिद्धार्थ के बोध और मोहम्मद के इलहाम आदि का आदिरूप था। उन्होंने सोचा, "सोमरस एकाकी है। एकाकी रमण नहीं कर सकता। मैं स्वयं एकाकी जीवन की अरम्यता का अनुभव कर चुका हूँ।" वे विकल हुए। विकलता चिंतन और मनन, अनुभूति एवं अभिव्यक्ति आदि की जननी है। तत्काल आकाशवाणी (पुरानी, नई नहीं) हुई, "सोम एकाकी नही रहेगा। उसे नवरस, षट्रस, द्राक्षारस, इक्षुरस, जम्बूरस, इसरस, उसरस आदि का उल्लासप्रद साहचर्य प्राप्त होगा।" इसके साथ आस्वाद तथा भोजकत्व आदि शब्दों के गहन प्रयोग इस आकाशवाणी के शतशः अनुरूप है। रस का भारी महत्त्व है। कुछ लोग मौसमी के रस को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान करते हैं, कुछ सतरे के रस को, कुछ अनार के रस को, कुछ अनन्नास के रस को, कुछ नवरस को, कुछ इसरस को, कुछ उसरस को, चूंकि अन्य रसों पर पर्याप्त ग्रंथ नहीं मिलते (यों आयुर्वेद में रसायन विद्यमान

है, किंतु आधुनिकाल में उसका मौलिक तथा गहन विकास नहीं किया जा सका) ओर उनके बारे में लोगों की जानकारी बहुत सीमित है, इसलिए, नवरस का महत्त्व सबसे बढ़ा-चढ़ा है। मै साहित्य से संबंध रखता हूँ, इसलिए भी ऐसा ही कहूँगा। मेरे विचार से, यह विषय विवादास्पद नहीं है। यह रसों का आपसी मामला है। पर लोग कहते हैं, बिना कोई दृश्य अथवा लौकिक रस पिए नवरस का अदृश्य एवं अलौकिक आस्वाद ठीक-ठीक नहीं प्राप्त हो पाता। कवियों ओर शायरों के जीवन इसे सत्य सिद्ध करते हैं।

रस, आस्वाद, भोजकत्व आदि स्थूल शब्दों का सूक्ष्म काव्यानन्द के प्रसग मे प्रयोग करना समीचीन नहीं है। नाट्यशास्त्र में रस की मीमांसा दृश्यकाव्य के लिए हुई है. जिसे उचित कहा जा सकता है। किंतु अनुशीलन-काव्य के प्रसंग मे उसका प्रयोग स्थूल प्रतीत होता है। श्रव्य-काव्य अतीत का सूचक है। अतएव, रस-सिद्धांत आज कोई बाह्य महत्त्व नहीं रखता। इधर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

कुछ विद्वान् कहते हैं, रस एक है। किंतु उन्होने यह बतलाने की कृपा नहीं की कि उस एक रस का नाम क्या है ? यदि रस एक है, तो, वह मौर्ख्यरस तो नहीं है ? यों, मौर्ख्यरस सब रसो में ऊभ-चूभ रहता है। स्वयं रसराज (रसाल नहीं) में नख-शिख से नायिकाभेद तक सर्वत्र व्याप्त मौर्ख्य को अन्धा भी देख सकता है। सुना है, कविसम्मेलन अथवा मुशायरे में केवल मौर्ख्यरस की निष्पत्ति होती है, यद्यपि रचनाएं देशभक्ति, रामराज्य, सर्वोदय, पंचशील, विश्वबन्धुत्व, योजना, परिवार-नियोजन आदि से लेकर उल्फत, शबनम, शोला, खंजर, कयामत आदि तक प्रसरित रहती हैं। उनमे जनता की विशाल उपस्थिति इसका अपर प्रमाण है। जनता महान् कविता उसे मानती है, जो उसकी समझ में न आए। जनता उत्कृष्ट कविता उसे समझती है, जो उसकी समझ में आ जाए। कविसम्मेलन अथवा मुशायरे का वातावरण अथवा माहौल ललकार-ललकार कर मौर्ख्यरस की वरीयता, वस्तुतः एकमयता, बताता रहता है। हास्यरस वहॉ लास्यरस से गले मिलता दिखाई पड़ता है। हास्यरस के कवि की आकृति एवं प्रकृति, कृति एवं विकृति, सब में शुद्ध मौर्ख्य साकार रूप ग्रहण करता है। कवि सम्मेलन को 'जमाने' और 'चलाने' वाला 'तत्त्व' हास्यरस माना जाता है। अतएव, वहॉ मौर्ख्यरस-निष्पत्ति की एकात्मकता को किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रह जाती।

कविसम्मेलन (अथवा मुशायरे) की कविता श्रव्यकाव्य होती है, या दृश्यकाव्य, या दोनों, या क्या ? इस कठिन प्रश्न का उत्तर कोई 'आचार्य' ही दे सकता है, क्योंकि वह उनके अध्यक्ष-पद को सुशोभित करने के जन्मसिद्ध अधिकार का अनेक अवसरों पर सदुपयोग कर चुका होता है। वह अनुभव-

दग्ध प्राणी होता है, इस तथ्य को अस्वीकार करना भयावह प्रतीत होता है।

सम्प्रति कविसम्मेलन कविता का ही नहीं, प्रायः सभी ललित-कलाओं का 'आस्वाद' प्रदान करने लगा है। कविसम्मेलन सर्वकलासार बन चुका है। इस दृष्टि से, उसकी तुलना चलचित्र से की जा सकती है। कविगण जो सुनाते है, उसे 'कविता' कहा जाता है। सहयोग के बिना कवि 'जम' (यहाँ अर्थ जड़ता से सम्बद्ध नहीं है) नही सकता, यह ध्रुव सत्य है। कवि 'जम' गया अथवा कवियित्री 'जम' गई, तो समझ लीजिए हाजरा को 'जमजम' मिल गया ! जब कुलंजन अथवा स्प्रे आदि द्वारा मधुर किए गए कण्ठों से विभिन्न रागों का आलाप वातावरण को सुसज्जित करता है, तब 'वाह-वाह' का व्यापक जयघोष व्योम तक प्रसरित हो जाता है। यदि ऐसा न हुआ, तो समझिए कि कलाकार 'उखड' गया। हास्य की सफलता वैयक्तिक अट्टहासों की असंख्यता के कारण ब्रह्माण्डहास का रूप ग्रहण करने लगती है। रस-सिद्धांत के स्मित से अपहसित तक के भेद वहाँ निरुपाय हो जाते हैं। इस दिशा मे, किसी 'आचार्य' को नूतन भेद स्थापना करनी चाहिए। कविगण अगणित भाव-भंगिमाओं द्वारा 'भावो' का सम्यक् सम्प्रेषण करते है, अतएव, अभिनय का आनन्द (लौकिक अथवा अलौकिक की जटिल समस्या का समाधान 'आचार्य' के निवन्ध अथवा प्रबन्ध का विपय है) भी, लगे हाथ, प्राप्त होता रहता है। चित्रकों एवं मुद्राओं के बिना कविसम्मेलन-आत्मविरहित शरीर मात्र रह जाता है। अतएव, वैज्ञानिक-चित्रकला भी सामहित हो जाती है। कतिपय कवि झूम-झूम कर गाते हैं जिससे नृत्य का पुट भी आ जाता है। संक्षेप में, कविता एवं संगीत, अभिनय एवं चित्र, लास एवं नृत्य आदि सभी का 'आनन्द' कविसम्मेलन अकेले ही दे डालता है। इसीलिए, अब किसी-किसी 'मंच' पर चलचित्र के अभिनेता तथा कविसम्मेलन के कवि एक साथ दृष्टिगोचर होने लगे हैं। दोनों ही 'कलाकार' अथवा 'फनकार' (फन का अंग्रेजी-अर्थ भी यहाँ लागू होता है या नहीं, यह बिन्दु 'विद्वानों' मे 'विवाद' उत्पन्न कर सकता है। यों, 'विद्वानो' में, इसके बिना भी, 'विवाद' होता ही रहता है) होते हैं। इसलिए दोनों का इस प्रकार एकत्र होना एक शुभ लक्षण है। इससे फनकारों के जज्बाती मेल का मैदान साफ होता है। ललित-कलाओ के निलय कविसम्मेलन में कुछ हस्तकलाओं के दर्शन भी हो जाते हैं। कई मनचलो का कहना है, जेब काटना सबसे बड़ी हस्तकला है। इसमें हाथ की सफाई की बारीकी ताज्जुब मे डाल देती है। किंतु, अभी इस कथन को 'मान्यता' नहीं प्राप्त हो सकी। मान्यता प्रशासन ही प्रदान कर सकता है और वह इसे औपचारिक रूप से अपराध मानता है। इसे लाइसेंस भी नहीं प्राप्त है। इसे पुलिस का अनन्य सहयोग अनौपचारिक रूप से ही प्राप्त होता है। सम्भव है, भविष्य मे इस सहयोग

को कानूनी मान्यता प्राप्त हो जाए; किंतु अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। हर्ष है कि 'भ्रष्टाचार' को जीवन का एक पथ (जनता की भाषा अथवा दूरदर्शन की भाषा, अथवा आकाशवाणी की भाषा, जवाहरलाल नेहरू की "आम फहम जुबान" अथवा राजीव गाँधी के जन-प्रसारण-माध्यम की दृष्टि से "ए वे आफ लाइफ") मान लिया गया है। कविगण सौंफ, लौंग, इलायची, मिसरी-डली, पान, सिगरेट, भाँगगोलियों, शराब की छोटी या बड़ी बोतलो के सचय में इस हस्तकला के एक उपरूप का ही समुचित प्रयोग करते हैं। कलम की सफाई और गले की सफाई के साथ हाथ की सफाई का मेल स्पष्ट है।

कविसम्मेलन में 'सरस्वती के प्रिय पुत्र' कविगण एकत्र होते हैं। किंतु उनके आयोजक-संयोजक 'लक्ष्मी के प्रिय पुत्र' होते है। हंसवाहिनी एवं उलूकवाहिनी के वरद पुत्रों का मिलन अद्भुत रस के अनुकूल बैठता है। कई बार हंस-उलूक-सघर्ष की दृश्य-श्रुत्य ध्वनियाँ, हिसाब-किताब साफ किए जाते समय, देखी-सुनी जा सकती हैं। तब रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों के अनुकूल वातावरण की सृष्टि हो जाती है। इसी झमेले से बचने के लिए, कुछ लोकप्रिय कवियों ओर मारूफ शायरों ने अपनी फीस तय कर रखी है जिसका एक संतोषजनक अंश अग्रिम रूप से लिया जाता है। यों, कुछ लोग कविसम्मेलन को असुर-ससुर-सम्मेलन भी कहते हैं। कण्ठसुर, नकसुर, कुलंजनसुर, स्प्रेसुर आदि-आदि की बानगी लेनी हो, तो वहाँ पहुँचना निहायत जरूरी है।

कवियों और कवयित्रियों की सज्जा अपने-अपने स्तर पर सभी रसो के अनुरूप होती है। कवि और कवयित्री का, अधिकतम प्रसंगों मे, कुरूप होना स्वयंसिद्ध है, क्योंकि यदि वे रूपवान हों तो कविता न लिखें, कविता उन पर लिखी जाए। कवियों और कवयित्रियों की चित्रावली इस तथ्य को सरलता से स्पष्ट कर देती है। हाँ, यह सम्भव है कि कवि और कवयित्री 'आचार्य' और 'आचार्या' (अभी यह विशेषण किसी 'विभूति' पर लागू नहीं हुआ, पर हो सकता हे) की तुलना में कम कुरूप हों, क्योकि उनमें कुण्ठाएं अपेक्षाकृत अल्प होती है। कवि अथवा कवयित्री को ध्यान से देखना बहुत जरूरी है, भले ही ऐसा करना कष्टकर अथवा भ्रमोत्पादक हो। कृति की रस-निष्पत्ति से पूर्व ही आकृति की रस-निष्पत्ति हो जाती है। शृंगार से शात तक, रौद्र से वीभत्स तक, करुण से हास्य तक, सभी रस वहाँ 'देखे' जा सकते हैं। कृतियों में प्रायः रस-वैचित्र्य (प्रयोग नया है, 'आचार्य' विचार करें कि उचित है या अनुचित या दोनो ?) उभर आता है अर्थात् वीररस की कविता हास्यरस की निष्पत्ति कर जाती है अथवा शृंगार-रस की कविता करुण-रस की निष्पत्ति कर जाती है, आदि-आदि। किंतु व्यक्तियों की रस-निष्पत्ति ऐसे वैचित्र्य से प्रायः मुक्त रहती है।

इस नेतृत्वप्रधान युग में कविसम्मेलन, जनता का भावात्मक नेतृत्व करने के लिए लपक पड़े हैं। यह सर्वथा स्वाभाविक है। अतएव गणतंत्र दिवस, स्वतन्त्रता दिवस, गांधी जयंती (शास्त्री जयती भी) आदि नूतन 'पर्वों' पर उनका होना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। राष्ट्रीय स्तर के इन शुभ अवसरों से लेकर मुण्डन, कनछेदन, विवाह आदि वैयक्तिक स्तर के शुभ अवसरों तक कविसम्मेलन का व्यापक प्रसार कविता के उज्ज्वल भविष्य का संकेत मात्र कर सकता है। पश्चिम मे कवि एव पाठक बराबर-बराबर रह गए हैं। किंतु, भारत में ऐसा नहीं 'दीखता'।

सार्वजनिक हित एवं भावात्मक नेतृत्व के ध्येय के कारण कविसम्मेलनो के उद्‌घाटन प्राय. नेताओं द्वारा किए-कराए जाने लगे हैं। कविता की लोक-व्यापकता के लिए यह अत्यन्य शुभ लक्षण है। सत्यं-शिवं-सुदर से आपूर्ण ('अपूर्ण' नहीं) कविता यदि घर-घर न पहुँची, तो उसका महत्त्व क्या ? प्राचीन-मध्यकाल मे कविता-लता राजा-सामन्ततरु पर आश्रित रहती थी। अब तरु-परिवर्तन हो गया है, अर्थात् अब कविता-लता नेता-तरु पर आश्रित रहने लगी है। बात एक ही है। कविता चिरंतन है, रस चिरंतन है, रस-सिद्धांत चिरंतन है, आश्रय चिरतन हे, सब-कुछ चिरंतन है (कम-से-कम भारत में)।

स्वतंत्र भारत में राजनीति और कला का संयोग अत्यंत संतोषजनक स्तर पर हो रहा है। यों, राजनीति स्वयं एक महान् कला है। इसे राजनीतिज्ञ के सिर से पेर तक आसानी से देखा जा सकता है। किंतु, यहाँ बात संयोग की हो रही है। जन-सभाओं में लोकप्रिय गायको और प्रशस्तकण्ठ कविता का प्रवेश अतीव शुभ है। कभी-कभी यह निर्णय नहीं हो पाता कि जनता इनको सुनने आई हे या नेताओं को ?

कविसम्मेलन की कुछ अधिक चर्चा का कारण स्पष्ट है। कविता अब या तो कविसम्मेलन में 'दिखाई' देती है या शिक्षण-संस्थाओं में। इन दो मे कविसम्मेलन अधिक सार्वजनिक है। अतएव, प्रजातंत्र एवं समाजवाद के इस उन्नत युग में उसका विशेष उल्लेख आवश्यक है।

सम्प्रति कविता दो स्थलों पर ही विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती हे—सार्वजनिक स्तर पर कविसम्मेलन में एवं विशिष्ट स्तर पर शिक्षालयों मे। यों, एक तृतीय स्थल भी है, आकाशवाणी, किंतु आकाशवाणी की कविताओ के समय लोग या तो पूर्ण-विश्राम करते या सुई को इधर-उधर दौड़ाते दीखते हैं। लगभग सौ-फीसदी लोग रेडिओ सिनेमा के गीत सुनने के लिए खरीदते है, भले ही, लगे हाथ, जब-तब मन-बेमन, खबरें और तखरीरें भी सुन लेने की तकलीफ गवारा कर लेते हैं, अतएव, अब शिक्षालयों में काव्य-स्थिति का वर्णन आवश्यक है।

शिक्षण-संस्थाओं में साहित्य की विधाओं का अध्ययन 'तत्त्वों के आधार' पर होता है। कोई कृति उठाई और तत्त्वों की भट्टियों मे डाल-डाल कर तपा डाली। तब मूल्यांकन ' 'विद्वान्' लोग प्रत्येक तथ्य को तत्त्वों के कटघरे में बद किए बिना मान ही नहीं सकते। प्रत्येक बिन्दु की सख्याएं निश्चित कर दी जाती हे और उनसे बाहर निकलना घोर पाप घोषित कर दिया जाता है। स्थायीभव हो या अनुभाव, संचारीभाव हों या काम-दशाएं, सब सख्याबद्ध ! काव्य को भेदों-उपभेदों में अनुशासित कर दिया जाता है तथा प्रत्येक कृति को उनके खूटो म मजबूती से बॉध दिया जाता है। रचना-पशु को विवेचन-रूप में बाँधने का कार्य 'आलोचक' अथवा 'आचार्य' नामक प्राणी करता है।

गद्य की विधाओं में नाटक. उपन्यास, कहानी, एकांकी आदि के तत्त्व (कथानक आदि) 'निश्चित' हैं। शेक्सपीअर और शॉ हों या भारतेन्दु और प्रसाद, टॉल्स्टॉय और दॉस्ताएव्स्की हो या प्रेमचन्द और शरद, मोपासॉ और चेखव हो या सुदर्शन और जेनेन्द्र, जगदीशचन्द्र माथुर और भुवनेश्वर प्रसाद हों या रामकुमार वर्मा और लक्ष्मीनारायण मिश्र, सबकी सारी कृतियॉ तत्त्वों के साँचे में 'फिट' (प्रचलित अर्थ में) कर दी जाती है। इस प्रकार, आलोचना और आचार्यत्व, अध्ययन और अनुशीलन, सभी सतुष्ट हो जाते है। "संतोष परमं सुखम्" भारत का मूल मंत्र रहा है।

भारत में हिन्दी को बहुत कम महत्त्व प्राप्त है; और वह भी उसकी गहराई की वजह से नहीं, फैलाव की वजह से। प्रथम श्रेणी का महत्त्व अंग्रेज़ी के लिए सर्वथा सुरक्षित है, क्योंकि वह नेताभाषा है, प्रशासक भाषा है, विद्वान्भाषा हे, श्रीमान्भाषा है, इसलिए, विश्वभाषा है। स्वर्गीय अन्नादोरै आदि 'मनीषियों' की दृष्टि से वह भारत की जनभाषा है, यद्यपि तमिल का गौरव उससे भी कुछ बॉस ऊपर उठा हुआ है। अकाली नेता स्वर्गीय मास्टर तारासिंघ और मुस्लिमलीगी नेता मरहूम मियाँ इस्माइल अंग्रेजी के बिना देश के टुकड़ों में बँट जाने की आशका व्यक्त कर चुके हैं। अंग्रेज़ी के बाद का महत्त्व बांग्ला और उर्दू को प्राप्त है क्योंकि बाग्ला के रवीन्द्र को नोबेल-प्राइज़ प्राप्त हुआ था और उर्दू के इक़बाल लीगी-लीडर थे। बांग्ला देश और पाकिस्तान बन जाने के कारण ये दोनों, अनायास ही, अतरराष्ट्रीय भाषाएं भी बन गई हैं। यों, हिन्दी क्षेत्र नेता-उत्पादक क्षेत्र माना जाता है; कितु, यहाँ के पदप्राप्त नेता अधिकतर, लोकप्रिय तथा विश्ववादी होने के कारण, अंग्रेजी-भक्त ही रहे हैं। हिन्दी-क्षेत्र से इन विराटात्माओं का संबध निर्वाचन तक सीमित रहा है। विश्व का ध्यान हिन्दी की ओर अभी कम ही गया है। किंतु, हिन्दी के धाकड प्राध्यापकों एवं 'आचार्यों' को विश्व या भारत से कोई सरोकार नहीं। वे 'अपनी साधना' में व्यस्त हैं। उनकी 'स्थापनाएं' केवल

'अपने लिए' होती है। ''क़ाजी क्यो दुबले ? शहर के अंदेशे में !'' लोकोक्ति का मर्म वे सदैव मर्म में रखते हैं।

हिंदी में महान् 'आचार्य' वह है, जो 'स्थापनाएं' कर सके। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस दिशा में अन्यतम है। उनका 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' मोटा पोथा ह। किंतु, उसका तीन-चौथाई भाग कवि-परिचय एवं उद्धरणों से 'भरा' गया हे, शेष में 'स्थापनाएं' है। 'रासो' एवं 'वीरगाथा' शतश- विपरीत अर्थ-व्यञ्जक शब्द हैं। किंतु, उन्होंने रासो-काव्यों के आधार पर वीरगाथाकाल नाम का खूंटा गाड दिया था और वह अब तक बरकरार है। इतिहास के ग्रंथ मे भक्तिकाल का नामकरण। इस 'पद्धति' पर प्रेमकाल, करुणाकाल, घृणाकाल आदि नामकरण करना अत्यंत समीचीन सिद्ध हो सकता है। भक्ति एक उदात्त प्रवृत्ति-प्रतिक्रिया हे, जिसकी महत्ता एव चिरन्तनता सभी स्वीकार करेंगे। किंतु, उसे इतिहास के एक काल के आसन पर प्रतिष्ठित कर देना इतिहास के तत्त्व की दृष्टि से विचित्र प्रतीत होता है। रीतिकाल नाम 'हिंदी वाले भी' कम ही समझ पाते है। आधुनिककाल गद्यकाल है, क्योंकि शुक्ल जी गद्यकार थे। अन्य 'आचार्य' शुक्ल जी तक नहीं पहुंच पाए, ऐसा सुना है। डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने भी इतिहास लिखा है। उन्होंने एक बार बीमारी में ग्यारह उपन्यास पढ़ डाले थे। उन सबके नाम तो याद नहीं रहे, पर उनके अध्ययन ने इतिहास लिखने में मदद जरूर दी होगी। यों, वे सूफ़ी काव्यों को आजकल के चलते उपन्यासों जैसा मानते हे। वे गम्भीरता का ठेका सिर्फ़ कबीर वगैरह को देते हैं। ज़माने को भॉपकर तुलसी ओर सूर पर हमला नहीं किया। हज़ारीप्रसाद किसी भी विषय की चर्चा कालिदास-कबीर-रवीन्द्र के तिगड्ड के साथ ही कर सकते हैं। इससे विषय मे गम्भीरता अपने-आप आ जाती है। बाजे-गाजे की बैसाखी पर कविता की मोहक चाल ही उन्हें प्रिय है। सम्भवतः उनकी दृष्टि में, आदर्श कविता वह है, जो संगीत के सॉचे में ढाली जाए, इस दृष्टि से, चलचित्र-कविता महानतम कविता सिद्ध होती है। संगीत प्रायः साहित्य पर आधारित है। किंतु, 'आचार्यजी' इससे कोई मतलब नहीं रखते। स्वर्गीय नन्ददुलारे वाजपेयी भी 'आचार्य' थे। उन्हें अपने मित्रों (प्रसाद, निराला, पंत) के अतिरिक्त कोई सच्चा-कवि ही नहीं लगा। वे सच्ची कविता की खोज में गाली-गलौज से भी नहीं घबराते थे। नगेन्द्र का स्थान भी 'आचार्य-वर्ग' में आता है। 'आचार्य क्षेमेन्द्र' और 'आचार्य नगेन्द्र' मे तर्ज मिल जाती है ! दोनों सुकुमार आचार्य ! उनके 'आचार्यत्व' का प्रधान कारण 'रस-सिद्धांत' है, जिस पर कई-कई हज़ारों के कई-कई पुरस्कार मिल चुके है। 1964 ई० में ग्रंथ-विमोचन भी हुआ था। संकटमोचन और ग्रंथ-विमोचन मे पर्याप्त निकटता प्रतीत होती है, यद्यपि अर्थ में अंतर है। तब से ग्रंथ-विमोचन

का नया रिवाज खूब जोर से चल पड़ा है। कहा जाता है, इस ग्रंथ में नगेन्द्र रस-सिद्धांत के व्याख्याता के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। दिल्ली के सुसभ्य वातावरण में रहने (उत्पन्न होने नहीं) के कारण नगेन्द्र को तुलसी आदि का स्पष्ट-भाषण अशिष्ट लगता है। उन्हें लोकगीतों में शालीनता का अभाव बेतरह खटक जाता है। रामचन्द्र शुक्ल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी और नगेन्द्र ये चार 'आचार्य' प्रमुख माने गए है। शुक्लजी की सामग्री एवं उसके काल-विभाजन के आधार 'विनोद' एवं 'नवरत्न' जैसे महान् ग्रंथों के प्रणेता मिश्रबंधु को 'आचार्य' नहीं माना गया, क्योंकि 'आचार्य' वही हो सकता है जिसे विश्वविद्यालय-पद, प्रशासन-सम्मान, पुरस्कार-गौरव, शिष्य-प्रशंसक दल, प्रकाशन-सुविधा और पचास से अधिक आयु प्राप्त हो—कुछ न लिखने पर भी ऐसा व्यक्ति 'आचार्य' कहा जा सकता है। आश्चर्य है कि हिंदी-साहित्येतिहास, कबीर, तुलसी एव रत्नाकर पर उच्चस्तरीय आलोचना प्रस्तुत करने वाले, तथा इन कसौटियो पर भी खरे डॉ० श्यामसुन्दरदास तक को 'आचार्य' नहीं माना गया, जिनका कार्य शुक्लजी के समकक्ष तथा हजारीप्रसाद जी इत्यादि से अधिक महत्त्वपूर्ण हे। कई आचार्य कविता के लिए अनुभूति अनिवार्य मानते हैं। प्रायः सभी ऐसा मानेंगे। किंतु, वे अनुभूति की बछिया को हृदय के खूँटे से अलग होने की इजाजत नहीं देते। कविता के हृदय के खूँटे से खुलकर बुद्धि के नए चारे की ओर लपकते ही सारा गुड़ गोबर हो जाता है। हृदय और बुद्धि का युगल उन्हें जयशकर प्रसाद के महाकाव्य कामायनी से प्राप्त हुआ होगा।

अनेक 'आचार्यों' (रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति पुरानों को छोडकर) ने कामायनी की गुड्डी को सातवें आसमान तक उडाने की बेहद कोशिश की है, किंतु यह कृति अखिल-भारतीय (विश्वस्तरीय तो बहुत दूर रही) मान्यता तक प्राप्त करने मे असफल रही है। कामायनी एक शिल्पप्रधान काव्यकृति है। कामायनी एक निवृत्तिप्रधान काव्यकृति है। कामायनी का नायक महाकाव्य के नायक से गौरव के उपयुक्त नहीं हे। वह धीरोदात्त, धीरशांत, धीरललित, धीरोद्धत, कुछ भी नही है। कामायनी की पात्रसंख्या महाकाव्योचित नही है। कामायनी का महत्त्व जो भी है, उसके रूपक-पक्ष के कारण नहीं, उसके काव्य-पक्ष के कारण है। कामायनी का दर्शन, यदि वह कुछ है तो, बीसवीं सदी के अनुकूल नहीं है। कामायनी एक सुकुमार रचना है। अतएव उसकी समता रामचरितमानस जैसे विश्वविश्रुत महाकाव्य से कर देना अनुचित चपलता तथा विश्व-साहित्य के अध्ययन के अभाव के कारण उत्पन्न भावुकता का आलोड़न-विलोडन मात्र है। यों, कामायनी एक उत्कृष्ट कलाकृति है। उसकी भाषा प्राञ्जल है। उसके काम एवं लज्जा सर्गो में उच्चस्तर की सुकुमार कविता के दर्शन होते है। लज्जा एवं इडा आदि कतिपय

सर्गों में बिम्ब-विधान भी उच्चकोटि का है। वह आधुनिक हिंदी की सर्वोत्तम रचना है।

'सफल' काव्यमर्मी वह है, जो प्रभावी विशेषण गढ़ सके। कामायनी के लिए 'छायावाद का उपनिषद्' एक रोचक विशेषण है। छायावाद भावमूलकता का प्रतीक है, उपनिषद् ज्ञानमूलकता का। हृदय-मस्तिष्क के प्रतीकों का गँठजोड़ हृदय-मस्तिष्क को पृथक् मानने-मनवाने वालों ने यहाँ अत्यंत समारोहपूर्वक कर डाला है। यदि ऐसा विशेषण मैं गढता, तो वह उचित होता, क्योंकि मै हृदय-मस्तिष्क-पार्थक्य-चर्चा को निराधार मानता हूँ। किंतु, वह गढन्त छायावादोपासकों की है! पल्लव की भूमिका को 'छायावाद का घोषणा-पत्र' कहा जाना भी बहुत विचित्र लगता है। 'चुनाव-घोषणापत्र' सुनना विचित्र नही लगता। किंतु, छायावाद, साम्यवाद आदि के सदृश, कोई राजनैतिक वाद नही, जिसके बल पर चुनाव लडने हों और घोषणा-पत्र निकालने हों, 'छायावाद का घोषणापत्र' विश्व-विख्यात 'द कॉम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' से प्रेरित शब्द-विकृति मात्र है। क्या छायावाद कोई दल था, जिसके अनुयायी एक दृष्टि में आस्था रखकर काम करने की विधिवत् घोषणा करते ? हिंदी में ऐसे विशेषण गढ़ने की बीमारी पश्चिम से आई है। यदि विशेषण सूक्ष्म एवं यथार्थपूर्ण हो, तब उनसे बहुत-कुछ को बहुत-थोड़े में समझने की सहायता मिलती है; किंतु, ऐसा कम ही होता है।

हिंदी में साहित्येतिहास-लेखन अत्यन्त सरल है। मनमाने काल और मनमाने युग ढालकर, साहित्यकारों के जीवन-वृत्त अवतरित कर, उनके काव्यांशों को उद्धृत कर, 'विद्वान्' तथा 'आचार्य' बहुत शीघ्र ही इतिहास रच डालते है। गद्य की विधाओं के नामकरण किसी प्रमुख कहे जाने वाले लेखक तथा उसके इधर-उधर पूर्व-उत्तर शब्द लगाकर भी किए जाते हैं; जैसे पूर्व-प्रेमचन्द-युग, प्रेमचन्द-युग, उत्तर-प्रेमचन्द-युग । यह केवल एक उदाहरण है। ऐसी 'विद्वत्ता' एव ऐसे 'आचार्यत्व' के निदर्शन बाजारों में भरे पड़े हैं।

इधर भाषा-विज्ञान की बड़ी धूम है। वह छात्रों के लिए, पर्वतीय प्रदेश मे आई रेलगाडी को सदृश, अतीव विस्मयकारी विषय है, वह विषय ऐसा है, जिसमें संभावना का रॉकेट आसानी से छोडा जा सकता है। इसी विषय ने आर्यो को भारत से बाहर से ला बसाया है। इसी विषय ने भारोपीय-परिवार की खोज की है। इस विषय का वास्तविक अनुशीलन जो 'ज्ञान' प्रकाशित करता है, वह 'इलहाम' लगता है। मैंने भाषा-विज्ञान का पर्याप्त अध्ययन नहीं किया। किंतु, कुछ 'खोजें' की हैं। ये 'खोजे' मैक्समुलर से लेकर सर वैलेन्टाइन शिरोल तक की आत्माओं को बहुत रुच सकती हैं। उन पर विस्तृत प्रकाश यहाँ नहीं पड सकता। यहाँ केवल सार-संचय संभव है। संस्कृत का भाषा-वैज्ञानिक अर्थ है,

सॉक्रेटीज-आविष्कृत भाषा। ''सॉकेटीज़'' (ट और त का भेद भी कोई भेद है। वह तो अंग्रेज़ी की वजह से है। सॉक्रेतीज या सुकरात।) की 'सैंस्कृट' से निकटता है। ग्रीअर्सन आदि ने कृष्ण और खीष्ट की निकटता इसी 'पद्धति' पर स्थापित की है। पाली भाषा सन्त पॉल ने बनाई थी, किसी विवाद की गुंजाइश ही नहीं है। सब कुछ एकदम साफ है। पल्टू प्लेटो के अवतार थे, इसमें विवाद करना, सूर्य के प्रकाशवान होने पर शंका करने के सदृश, निरर्थक है। रामकृष्ण भण्डारकर प्रख्यात पशिचम भक्त् विद्वान थे। उन्होंने राम को मिस्र के सम्राट् रैमसीस से सबद्ध कर दिया है। इस 'पद्धति' पर, बाइबल की 'जिनेसिस' को 'जिन' से सबद्ध किया जा सकता है। जैन का अर्थ है, जिन (जितेन्द्रिय) का अनुयायी। जिनेसिस अर्थात् जनन (सृष्टि की उत्पत्ति) की जो कथा बाइबिल के आरंभ मे दी गई है, वह जिनकृत है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। मुझे विश्वास है, जैन भाई मेरी जिन-जिनेसिस-स्थापना से अत्यंत प्रसन्न होंगे तथा प्रसिद्ध जैन-पत्रों मे मेरे चित्र छपवा देंगे, जिससे मैं अजर-अमर हो जाऊँगा। क्या मौर्ख्यशास्त्र लखटकिया (ज्ञानपीठ) पुरस्कार की आशा कर सकता है ? सृजनात्मक प्रतिभा इसमें लबालब भरी है। सरस्वती की कृपा इस पर है, यह लक्ष्मी का वाहन भी स्वीकार करेगा। फिर इसकी मौलिकता का क्या कहना ! जिधर से पलटकर देखो, मौलिक-ही-मौलिक । लिखनफट ('मुहफट' का विकास) होने के कारण, 'आचार्य' मुझ पर फूटी आँख भी नही डालते। स्वतन्त्रचेता होने के कारण, 'नेता' मुझ पर कदापि प्रसन्न नहीं हो सकते। बुद्धिमान् होने के कारण, जनता का वात्सल्य मेरे पास भी नहीं फटक सकता। इस स्थिति में, लखटकिया पुरस्कार ही मुझे डूबने से बचा सकता है। पर ज्ञान की ओर पीठ वाले मुझे देख ही न पाएंगे !

सुनने में आया है, प्रतिभा परमात्मा की देन है (यों प्रत्येक वस्तु परमात्मा की देन है; इसलिए बात बनती नहीं—पर सब-कुछ चलता है !) और कवि बनते-बनाते नहीं, जन्म से होते हैं (यों सभी जन्म से ही होते हैं; इसीलिए बात बनती नही—पर सब-कुछ चलता है!) किंतु देखा यह गया है कि कोई ढंग की नौकरी न पाने या प्रेम मे असफल हो जाने या घर से निकाल दिए जाने आदि-आदि के 'सयोग' ही कविता को जन्म देते हैं। वाल्मीकि की पटमारी, कालिदास की डालकाट-बुद्धि, शेक्सपीअर की हिरनचोरी और तुलसीदास की रत्नावली-भर्त्सना आदि कथाएं इस 'संयोग-सिद्धात' को स्पष्ट कर देती हैं। कविता आजीविका का साधन भी रही है। यहाँ प्रतिभा-परमात्मा-सिद्धात कहाँ तक लागू होता रहा है ? पता नहीं, कविता-आजीविका-संबंध प्राचीन काल के चारणों से लेकर वर्तमानकाल के आकाशवाणी-कवियों तक व्याप्त है। जहाँ अनुभूति 'गहरी' नही

होती, 'फैली' होती है, वहाँ 'संयोग' नाटक, उपन्यास, कहानी आदि की ओर प्रेरित कर देता है। आलोचना की स्थिति कुछ भिन्न है। उसे लिखने की प्रेरणा कविता की असफलता के द्वारा प्राप्त होती है। रामचन्द्र शुक्ल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नगेन्द्र की कविताएं आलोचक को असफल-कवि सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। इस दिशा मे ड्राइडेन और मैथ्यू आर्नोल्ड आदि अधिक भाग्यशाली सिद्ध होते हैं।

होमर-काव्य (इलिअड-ओडिसी) में पग-पग पर मांसगन्ध-उत्साह देखता हूँ। जायसी का 'मेनू', सूर की "लुचुई पूरी सद्य जलेबी" आदि पर विचार से लगता है कि अब कविगण इन उत्कृष्ट कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक छके है। जायसी ओर सूर आदि के 'मेनू' इतिहास का भी करारा 'आदर' करते हैं । शेक्सपीअर का हेक्टर के द्वारा अरस्तू को उद्धृत कराना, तुलसीदास का राम को टोपी पहनाना तथा लंकाकाण्ड मे "बिबिध बिध गोला" चलवाना, केशवदास का रामचन्द्रिका मे अर्जुन भीम का (श्लेष की आड़ में ही सही) उल्लेख करना, मैथिलीशरण का रामकथा-संबद्ध भारी काव्य को 'साकेत' शीर्षक प्रदान करना (साकेत नाम बोद्धकाल का है) तथा 'पञ्चवटी' में रम्भा-शुक-सम्वाद की चर्चा कराना, प्रसाद का श्रद्धा द्वारा चरखा चलवाना आदि-आदि पढने से लगता है कि अब कविगण का मानव-परिचय इन कवियों के मानव-परिचय की अपेक्षा कही अधिक गम्भीर है।

मौर्ख्य और साहित्य के घनिष्ठतर संबंध को प्रकाशक से अधिक कोई नहीं समझ सकता। प्रकाशक का लक्ष्मी-सरस्वती से सेतु-सबंध होता है। लक्ष्मी की कृपा से वह प्रकाशक बनता है। सरस्वती की कृपा के फलस्वरूप रची गई कृतियों को प्रकाशित करते-करते उसका उनसे भी यत्किंचित् संबंध स्थापित हो जाता है। सरस्वती के कृपापथ पर चलता-चलता वह लक्ष्मी-मन्दिर के लक्ष्य तक पहुँचता रहता है। कतिपय प्रकाशक सृजनात्मक साहित्यकार तक होते पाए गए हैं, यद्यपि उनके इस रूप पर शंकात्मक इंगित करने वाली कथाएं भी प्रचलित होती रहती है। स्वर्गीय पण्डित बद्रीनाथ भट्ट ने 'टटोलूराम टलास्त्री' शीर्षक व्यग्य निबंध में एक ऐसे ही (अब स्वर्गीय) स्वनामधन्य प्रकाशक का वर्णन किया है।

साहित्यकारों का सबसे बड़ा मौर्ख्य यह है कि वे साहित्यकार हैं। किंतु इससे ही कथा का अन्त नहीं हो जाता। वे अपनी कृतियॉ प्रकाशित कराने को बेताब भी रहते हैं। मनोविज्ञान इसे अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति कहकर समझ-समझा सकता है। किंतु, प्रकाशक इसे 'छपास' का स्वयोग्यतानुरूप विशेषण प्रदान करते हैं। छपास-रोग आजकल के प्रायः प्रत्येक साहित्यकार में पाया जाता है। जो सक्षम हे, वे मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, दिनकर, जैनेन्द्र, वृंदावनलाल, यशपाल, अश्क,

गुरुदत्त, यज्ञदत्त आदि-आदि के सदृश प्रकाशक भी बन जाते हैं। जो स्थितिप्राप्त अथवा ख्यातिप्राप्त हैं, वे पंत, महादेवी, अज्ञेय, हज़ारीप्रसाद, नन्ददुलारे, नगेन्द्र आदि-आदि के सदृश प्रकाशको को कृतज्ञ करते हैं। इनमें से कुछ प्रकाशन के नाना रूपों से लाभ उठाते हैं। जो विशिष्ट-दिशा-पण्डित अथवा तिकडमी है, वे साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, साहित्य अकादमी आदि-आदि के द्वारों से आते-जाते रहते हैं। जो हवा का रुख पहचानते हैं, वे नाम-दाम-शासनसम्मान कमाते हैं। 'लोकप्रिय' कवियों तथा लेखको का कहना ही क्या : उनकी पुस्तकें फ़ुटपाथ, रेलवे तथा दूसरे बुकस्टालों पर गॅजी पडी रहती हैं, दनादन बिकती रहती हैं। 'छात्रोपयोगी साहित्य' के 'रचयिताओं' को भी हल्का-सा नाम और बहुत-सा दाम कमाते पाया गया है। जो गोबर-गणेश अथवा ढपोरशंख होते हैं, वे नाम या दाम काम, कुछ भी नहीं बना पाते और, भविष्य की अमरता का दम भरते हुए, मर जाते हैं। प्रकाशकों के सार्वभौम आखेट के सर्वाधिक दयनीय पात्र यही लोग बनते हैं।

साहित्यकारो में मानसिक तथा शारीरिक रोग चिरतन बन रहे हैं। एक श्रेष्ठ साहित्यकार, एक श्रेष्ठ नेता के सदृश, एक श्रेष्ठ रोगी अवश्य होता है। यदि कोई रोगरहित है, तो मैं उसे श्रेष्ठ साहित्यकार नही मान सकता। महान् साहित्यकार वह है जिसे कई स्थायी-अस्थायी रोग बराबर लगे रहते हों। 'भय' के कारण उदाहरण देने के लोभ का संवरण करना पड़ रहा है। छपास का अपेक्षाकृत नवीन रोग मुद्रण के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ है। इसका परिणाम 'बहुमुखी प्रतिभा' के उदात्त आवरण के साथ प्रकट हुआ है। सम्प्रति अधिकाश साहित्यकार बहुमुखी प्रतिभा के धनी होते हैं। इस प्रकार, उन्होंने, वाल्मीकि और व्यास, होमर और दांते आदि को बहुत पीछे छोड दिया है। 'महान्' साहित्यकार प्रायः अनिवार्य रूप से आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा-विवरण आदि भी लिखते है। इधर सयुक्तराज्य अमेरीका तथा सोवियत संघ इत्यादि की अहैतुकी कृपा ने भारतीय कवियो, लेखकों तथा आचार्यो का विदेशयात्रा पथ असामान्य रूप से प्रशस्त कर दिया था। अतएव यात्रा-साहित्य में विशेष वृद्धि हो रही थी। प्राय सभी 'वरिष्ठ' (गरिष्ठ नहीं) साहित्यकार दार्शनिक अवश्य होते हैं। वे अपने विचारों से जगत् का कल्याण अवश्यमेव करते हैं। भूतपूर्व-कवि तथा भूतपूर्व-कवयित्री इत्यादि संस्मरण अथवा विचार अनिवार्य रूप से प्रकट करते हैं। भूतपूर्व उपन्यासकार तथा भूतपूर्व आलोचक इत्यादि भी इस दिशा में तेजी से लपक रहे हैं। इस सबका शुभ परिणाम यह हो रहा है कि साहित्य के अजिर मे 'विचार' की राशि 'अपार' से गले मिल रही है।

'बहुमुखी प्रतिभा' के कारण साहित्यकारों की ग्रंथसंख्या भी सौ-सौ-दो-दो

सौ और कभी-कभी इससे भी आगे चली जाती है। फ्रांस के अलेक्जेंडर ड्यूमा बडे हक्कानी लेखक थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी। उनके 'सृजन-कार्यालय' में अनेक कर्मचारी नियुक्त थे। कोई उपन्यास लिखता, कोई यह, कोई वह ओर ड्यूमा टहल-टहलकर सबको सूत्र प्रदान करते रहते ! पश्चिम प्रगतिशील भू-खण्ड हे। पूर्व मे अभी 'वह बात' कहाँ ! फिर भी, उन्नति हो रही है। भारत में किसी सृजन-कार्यालय का व्यवस्थित अस्तित्व 'प्रकाश मे नहीं आया' किंतु, कतिपय ख्याति-प्राप्त तथा लोकप्रिय लेखक तथा 'आचार्य' इस दिशा मे गतिशील हे। इससे साहित्य का कल्याण तो होता ही हे, निर्देशित लेखक का कल्याण भी होता है, यद्यपि कई बार ग्रंथ में उसका नाम एकदम नहीं होता तथा अनेक बार दूसरे स्थान पर होता है। 'आचार्यों' द्वारा "लिखित, सम्पादित तथा प्रस्तुत" ग्रथो की विराट् संख्या इस तथ्य को स्पष्ट कर देती है। नेतागण जो ढंग के भाषण देते हे, वे सचिवों द्वारा लिखे गए होते हैं, इसे सभी समझदार लोग जानते हैं। ऐसे भाषणों के संग्रह प्रकाशित करने के लिए प्रशासकीय तथा सामान्य प्रकाशन संस्थानो में आवश्यकता से बहुत अधिक उत्साह दिखाई देता है। प्रत्येक बडा नेता जो-कुछ बोलता है अथवा लिखता है, वह-सब प्रेरक-साहित्य के अतर्गत 'अपने-आप ही' आ जाता हैं। इस दिशा में, उत्कृष्ट साहित्यकार लोकनायकों का अनुकरण ही कर रहे हैं। महाजनो येन गता स पंथः—पिछले जमानों मे भी, काव्यादि का क्रय-विक्रय बराबर होता रहा है। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि अनेक सम्राट्, राजा, धन-कुबेर आदि, लगे हाथ, कवि भी हो गए। विक्रेताओं के व्यक्तित्त्व केवल अर्थ प्राप्त कर सके, यह ठीक है; किंतु उनके कृतित्व तो 'अमर' हो गए ! उर्दू में शेर-फरोशी एक आम पेशा रही है। ज़ुरअत वगैरह खास किस्म के शेर-फरोश रहे हैं। हिंदी में पहले यह धंधा लघु उद्योग-वर्ग का था, किंतु अब इसमें उन्नति जीवन्तता की प्रतीक है। 'आचार्य' पद से ही निष्ठावान एव पूज्य होते हैं। अतः वे सीधा आर्थिक क्रय नहीं करते। वे नौकरी दिलाने, पाठ्य-पुस्तक का सम्पादक बनवाने, परीक्षा-संबंधी विविध कार्यों से लाभान्वित कराने, विशेष अर्थमूलक अंतरों (पीरियड्स) का आविष्कार करके उनका दान करने, अनुसंधान कार्य का निरीक्षक अथवा परीक्षक बनाने, यात्राओं की पृष्ठभूमि का निर्माण करने आदि-आदि के शालीन साधनों का प्रयोग करते हैं। दिल्ली भारत की राजधानी है और इस नाते सारे देश से आए पैसे का मनमाना प्रयोग करना उसके जन्मसिद्ध अधिकारों के अतर्गत आता है। अतएव, यहाँ इन शालीन साधनों के प्रयोग का खास सुभीता है। इससे विक्रेता की भी अधिक हानि नहीं होती क्योंकि ज्योही उसकी स्थिति सम्हली, वह दूसरों के द्वारा क्षतिपूर्ति कर लेता है। "जीवो जीवस्य भोजनम्" सनातन सत्य है।

प्रकाशक का 'साहित्यकार भी' बनना विशेष कठिन नहीं है। उसके पास अनेक पाण्डुलिपियाँ आती हैं। अतएव वह 'सारग्राहिणी प्रतिभा' के बल पर सरलतापूर्वक 'साहित्य-साधना' कर सकता है। दूसरे, क्रयपथ अतिप्रशस्त है ही। तीसरे, पुस्तक-सम्पर्क के कारण, यह 'मधुकरी वृत्ति' के बल पर 'उपयोगी साहित्य' की 'सृष्टि' अनायास कर सकता है। इतना होते हुए भी, आराध्यदेवी लक्ष्मी के वाहन की प्रेरणा से वह इन फालतू झमेलों में ज़्यादा नहीं पड़ता।

व्यावसायिक क्राति तथा उद्योगप्रधान युग की प्रेरणाओं से साहित्य में क्रय-विक्रय का जोर होना स्वाभाविक है। कतिपय 'आचार्य' अपने 'पट्ठों' से पी-एच. डी. बनवाने का नियमित शुल्क लेने लगे हैं। कतिपय 'विद्वान्' प्रबध-विक्रय करने लगे हैं। डॉक्टर की पदवी के अभिलाषी उनसे सौदा कर सकते हैं। उपन्यास और कहानी की बिक्री भी होने लगी है। यदि उन्नति का स्तर ऐसा ही रहा, तो महाकाव्य रचकर बेचे जाने का युग दूर नही रह सकेगा। इस युग का शायद ही कोई ऐसा 'आचार्य' अथवा नेता (जो लेखक भी हो) होगा, जिसने दूसरों के प्रयासों को अपना न बनाया हो। इस युग मे शायद ही कोई ऐसा कमाऊ लेखक होगा, जिसने दूसगे के प्रयासों को अपना न बनाया हो। इस युग का शायद ही कोई ऐसा कमाऊ लेखक होगा, जिसने आत्मविक्रय न किया हो। इसमे बुरा क्या है ? सब जगह ऐसा ही चलता है।

बीसवीं सदी की हिंदी-कविता में राष्ट्रीयता की धूम रही है। शायद ही कोई कवि होगा, जिसने बहती गंगा में हाथ न धोए हों, निराला ने "दिन में दस राष्ट्रीय गीत" रचने वाले कवियों एवं उनके विशिष्ट "स्वर" की चर्चा की थी। हिंदी मे राष्ट्रकवि कितने हैं ? यह जनसंख्या विशेषज्ञ तक नहीं जानते। राष्ट्रीय कविता रचने की प्रेरणाएं अपेक्षाकृत सरलता से प्राप्त हो जाती हैं। कोई आक्रमण हुआ, किसी ने देशनिन्दा की, किसी नेता का कोई नया या नया लगने वाला नारा आया, कोई नेता अथवा 'महापुरुष' मरा, किसी नेता अथवा महापुरुष की जयन्ती अथवा उर्स आई, कोई 'राष्ट्रीय पर्व' आया, कोई सम्मान्य विदेशी अतिथि आ पहुँचा, बस 'राष्ट्रीयता कविता रचना की नदी' में बाढ आ गई। यहाँ विषय-विषमता का कोई झगडा नहीं रहता; भारत जगद्गुरु है, अध्यात्म-तीर्थ हे, भूतल पर स्वर्ग है इत्यादि के मूल-सूत्र चिर-विद्यमान हैं ही। हिमालय, गगा, यमुना, राज्यों के नाम, महान् ग्रंथों के नाम, पवित्र अथवा ऐतिहासिक नगरों के नाम, 'महापुरुषों' के नाम इत्यादि 'तत्त्व' भी पहले से ही तैयार रहते हैं। 'मर जाएंगे' या 'कट जाएंगे' या 'खून बहा देंगे' या 'मार डालेंगे' 'खून पी जाएंगे' या 'धज्जियाँ उड़ा देंगे' के आह्वानों के लिए भी कोई प्रयास नहीं करना पड़ता हे। हाँ, 'एकता', 'धर्मनिरपेक्षता' का ख्याल (संगति वाला खास नहीं, आम) रखना

जरूरी है। बस, बेडा पार है। राष्ट्रीय कविता चल-चित्रों, समाचारपत्रों, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी, पाठ्य-पुस्तकों आदि में सरलतापूर्वक स्थान पा सकती है, क्योंकि वह प्रायः सबकी समझ में आ जाती है। नेता, अभिनेता, पूँजीपति, अधिकारी, छात्र, लिपिक आदि सभी 'प्रबुद्ध' वर्गों में उसका प्रवेश, अनायास ही, संभव है। 'धर्म' और 'कर्त्तव्य' की पूर्ति के साथ-साथ, 'नाम' ओर 'दाम' की प्राप्ति भी हो जाती है। कई व्यक्तियों का कहना है, वह शुभ दिन दूर नहीं है, जब हिंदी में केवल राष्ट्रीय कविताएं ही रची जाया करेंगी। सभव है, तब कविता को प्लेटो और मोहम्मद की आत्माओं का आशीर्वाद भी प्राप्त हो जाए !

सच्ची राष्ट्रीय कविता पर कई बार मतभेद हो जाता है। आकाशवाणी-अधिकारियों, पत्र-पत्रिका-सम्पादकों तथा प्रशासको की वजनदार राय है कि शुद्ध राष्ट्रीय कविता केवल गांधी और नेहरू, विनोबा और भू-दान, सहअस्तित्व ओर पचशील, धर्मनिरपेक्षता और योजना पर ही रची जा सकती है। 'कतिपय उदार चितक' इस 'सूची' में परिवारनियोजन को भी सम्मिलित करने लगे हैं। इस कट्टरपंथी सज्जन की अटल धारणा है कि शुद्ध राष्ट्रीय कविता केवल गाधीजी की बकरी पर ही रखी जा सकती है। इसमें अद्वैत और अहिसा, कृषि और स्वास्थ्य, सयम और ब्रह्मचर्य आदि आयः सभी 'उदात्त' तत्त्वों का सम्यक् समावेश अपने-आप हो जाता है। विषय बहुत बड़ा है; इसलिए, 'जयहिन्द'।

भारत के प्रायः सभी साहित्य 'महानतम' स्तर के हैं; ऐसा सुनने मे आया है कि हिंदी को छोडकर, सभी प्राचीनतम से लेकर प्राचीन तक की श्रेणी मे भी आ जाते है । तमिल का दावा है कि वह विश्व की महानतम तथा प्राचीनतम भाषा है। 'साहित्य का नोबेल पुरस्कार पाने वाले नेता' चर्चिल के लघु-संस्करण अन्नादौरै, जिनकी मूर्ति उनके तमिलनाडु के मुख्यमंत्रित्वकाल के आरंभ मे ही तमिल-साहित्य के स्तम्भों के साथ खड़ी की जा चुकी है, इस दावे के जोरदार समर्थक और प्रचारक थे। तमिल संस्कृत से भी अधिक प्राचीन है। तमिल का सस्कृत पर भारी प्रभाव है। स्वयं ऋग्वेद में तमिल शब्द विद्यमान है। नीतिकाव्यकार तिरुवल्लुवर विश्व के महानतम कवि हैं। कम्बर अथवा कम्बन कृत रामायण विश्व का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इधर, तमिल की प्राचीनता एव महानता की समता करनेवाली एक-और भाषा प्रकाश में आई है। वह है पंजाबी। एक ओर शेरों की भाषा है, दूसरी ओर मधुरतम भाषा भी। यदि कोई इस द्विविधसम्पन्नता मे परस्पर-विरोध की शंका करे, तो कृपाणें उचित समाधान कर सकती हैं। सुना है, पंजाबी का साहित्य भी अतीव महान् है। वारिसशाह पजाबी के होमर हैं। गुरुग्रंथसाहब सिखों की बाइबिल है ही। भाई वीरसिह पंजाब

के शेक्सपीअर थे ही। कमी क्या रह गई ? बकौल डॉ० गोपाल सिह, पंजाबी (उर्दू भी) हिंदी से अत्यधिक प्राचीन तथा सम्पन्नतर भाषा है। प्राणवान सिख भाइयों ने पंजाबी को पंथ के साथ सख्ती और मजबूती से बांध दिया है। पंजाबी के शुद्धिकरण के महत् अभियान में सस्कृत तथा हिदी की उच्चारण-प्रणालियों का बहिष्कार सर्वोपरि महत्त्व रखता है। बांग्ला अपनी महिमा स्थापित करने के लिए सस्कृत-अवहेलना नहीं करती। रवीन्द्र और उनके नोबेल-पुरस्कार से लेकर ताराशंकर और उनके ज्ञान-पीठ-पुरस्कार तक की स्पष्ट चर्चा करती है क्योकि वह ऐसा कर सकने की स्थिति में है। उर्दू का दावा है कि गालिब होमर और शेक्सपीअर के स्तर के कवि थे। किंतु, उर्दू भी इस दावे को ठीक साबित करने के लिए संस्कृत पर चोट करना ज़रूरी नहीं मानती। अन्य भाषाएं दावे नहीं करती, फिर भी, वे उन्नति कर रही हैं अथवा पहले से ही उन्नत हैं। हॉ नेतृत्व के लघुपथ पर चलने तथा लाभ उठाने के लिए राजस्थानी (मारवाड़ी, मेवाड़ी, मेवाती आदि के वास्तविक रूपो से कोई सरोकार नहीं, क्योंकि मूल उद्देश्य इधर से सबध ही नहीं रखता), मैथिली, डोगरी, पहाड़ी, सिन्धी आदि की विविध चर्चाए जब-तब सुनाई दे जाती हैं। मैथिली, सिन्धी और डोगरी को पृथक् भाषाओ के स्तर प्रदान कराये जा चुके हैं। हवा का रुख संख्यावृद्धि की ओर जा रहा है।

आधुनिक भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता अंग्रेज़ी के प्रति अगाध एवं अतर्क्य श्रद्धा है। सभी भाषाएं इस दिशा में एकरस उत्साह रखती हे। प्राय- सभी भाषाओं में शेक्सपीअर विद्यमान हैं। प्रायः सभी भाषाओ के साहित्य अनुवाद, अर्द्धानुवाद, छायानुवाद 'आदि' से लाभान्वित हुए है। भाषाओ के 'आचार्य' अंग्रेज़ी में बोलना गौरवास्पद समझते हैं। निस्संदेह इससे उनकी योग्यता का सिक्का जम जाता है। सुना है, अंग्रेजी ने भारत को राष्ट्र बनाया था। अंग्रेज़ी के आगमन से पूर्व वह महाद्वीप हुआ करता था। अंग्रेज़ी ने भारतीय भाषाओं को एकास्थावाद की विभूति प्रदान की है। झगड़ा भारतीय भाषाओ का है। अंग्रेज़ी-भक्ति में कोई झगड़ा नहीं।

इधर हिंदी में उच्च साहित्य की कसौटी बदल गई। पुरानी कसौटी से वह एकदम अलग है। कबीर और तुलसी से लेकर महावीरप्रसाद द्विवेदी ओर मैथिलीशरण गुप्त तक, साहित्य और जनता के मध्य सीधे संबंध की प्रतिष्ठा का प्रतिपादन स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। किंतु, अब स्थिति भिन्न है। रामचन्द्र शुक्ल ने 'गूढ़-गुम्फित विचार-सरणि' का कुछ ऐसा रमरसरा छेड़ा कि साहित्य विश्वविद्यालय की परिधि में विराम करने लगा। परवर्ती 'आचार्य' भी कमर कसकर जुटे। 'आचार्य' साधारण तथ्य भी शास्त्रीय और सैद्धान्तिक रूप मे प्रस्तुत करते हैं। शास्त्रीय से अभिप्राय शास्त्रसंबद्ध हो या न हो, 'आचार्य'-संबद्ध अवश्य

है। 'आचार्य' जंगम-शास्त्र हैं। कुछ लोग 'आचार्यो को 'दिमागी जंगबाज़' मानते है और कहते हैं, इनकी अक्ल पर जड़ता की जंग लगी रहती है। विषय विवादास्पद है। अत यहीं छोड़ता हूँ। 'आचार्य' जो कहते हैं, वह सब शास्त्रीय है। इधर, हिंदी में शास्त्रीयता की बेहद धूम का यही कारण है। शास्त्रीयता की मथानी से साहित्य-दधि को मथ-मथ कर 'आचार्यगण' (शिवगण नहीं) सिद्धांत-नवनीत निकालते हैं। 'आचार्यों' की 'साधना' का परिणाम यह हुआ है कि साहित्य जनता से दूर चला गया है और विश्वविद्यालयो की परिधि में अभिनव वानप्रस्थ का अभ्यास कर रहा है। 'आचार्यों' की इस देन का ऐतिहासिक महत्त्व है। 'आचार्यो' से मेरा अभिप्राय महावीरप्रसाद द्विवेदी के बाद की विभूतियों से है, क्योंकि इनका आचार-अनुकरण नहीं के बराबर हुआ और गूढ़-गुम्फित विश्वविद्यालयोपयोगी विचार-सरणि की साधना का आरंभ एवं विकास इन्हीं के द्वारा हुआ।

एक 'आचार्य' की सुदृढ किंतु अलिखित धारणा है कि साहित्य का सम्यक् 'आस्वाद' केवल एम० ए० सम्बद्ध छात्र अथवा डॉक्टर (दवा-वाले नही, बीमारी-वाले) लोग ही ले सकते हैं। रस, आस्वाद, भोजकत्व आदि बड़े 'शास्त्रीय' शब्द हैं। सूपशास्त्र अथवा पाकशास्त्र (तुलसीदास को धन्यवाद देते हुए) में इन शब्दो का 'शास्त्रीय' अर्थ भिन्न हो सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि सूपशास्त्र (सूप शब्द अंग्रेजी में भी है और उसकी ध्वनि बहुत दूर तक मेल खाती, दूसरी ओर गृहस्थी में भी सूप का प्रयोग होता है और उसका मूल संबंध भी इधर से ही है) अथवा पाकशास्त्र (पाकिस्तान से सर्वथा असम्बद्ध) साधारण शास्त्र हैं। दिल्ली के 'अशोका होटल' के प्रधान सूपकार को दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष से अधिक वेतन प्राप्त होता है, ऐसा सुना है। तुलसीदास ने 'छरस चारिबिधि जस श्रुति गावा' के कथन से इस शास्त्र का संबंध सीधे वेद से जोड दिया है। जो वेद मैंने पढे हैं, उनमें सूपशास्त्र अथवा पाकशास्त्र, 'छरस' अथवा 'चारिबिधि' का उल्लेख नहीं मिल सका। किंतु, जो वेद तुलीसदास ने पढ़े थे, उनमें ये विषय अवश्य रहे होंगे। 'विद्वानों' को इस महत्त्वपूर्ण विषय पर 'अनुसंधान' करना चाहिए। संभव है, वेद की तुलसीदास द्वारा पढ़ी गई प्रति प्राप्त हो जाए।

तुलसीदास संस्कृत के महान् पण्डित थे या नही ? उन्होने वेद पढ़े थे या नहीं ? इन विषयों पर विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों में मतभेद सभी विषयो पर होते हैं और होने भी चाहिए, अन्यथा ज्ञान-शकट गतिविहीन हो जायेगा। यदि प्रश्न उठे कि अमुक विद्वान् मनुष्य है, तो सम्बद्ध विद्वान् मतभेद अवश्य व्यक्त करेगा। यदि प्रश्न उठे तुलसीदास उत्पन्न हुए थे या नहीं, तो भी विद्वानों में मतभेद अवश्यंभावी है। शेक्स्पीअर के बारे में ऐसा मतभेद है भी। कतिपय

'मनीषियो' की मान्यता है कि शेक्स्पीअर मूलतः भारतीय थे। उनका नाम शेषप्पा अय्यर था। अंग्रेज़ी के प्रति तमिलनाडु की अगाध, अतर्क्य और अतुलनीय श्रद्धा के एक बड़े भारी कारण शेषप्पा अय्यर हैं। शेक्स्पीअर के साहित्य में व्याकरण तथा पौराणिक आख्यानों की अशुद्धियों का कारण भी स्पष्ट है, क्योंकि अंग्रेजी उनकी मातृभाषा न थी। मद्रास के निवासियों की धाराप्रवाह अंग्रेज़ी सुनकर भी 'शेषप्पा अय्यर सिद्धांत' की पुष्टि हो जाती है। शेषप्पा अय्यर की इंग्लैण्ड-यात्रा पर तमिलनाडु में मतभेद है। एक वर्ग सीधी यात्रा का प्रतिपादन करता है, दूसरा अरब से होकर जाने का। अरब में शेषप्पा अय्यर शेख़ पीरू के नाम से अभिहित एवं ख्यात हुए थे। किंतु उन्हें उपयुक्त वातावरण इंग्लैंड में ही मिला। कतिपय गोरांग अनु- संधानकर्ता शेक्स्पीअर की क़ब्र खोदकर असलियत का पता लगाना चाहते हैं। मैं उनकी खोज का परिणाम जानने को उत्सुक हूँ। यदि 'शेषप्पा अय्यर-सिद्धात' की पुष्टि हो गई, तो भारत में अंग्रेजी का भविष्य उज्जवलतर हो जाएगा। तमिलनाडु के विद्वानों को इस दिशा मे कार्य करना चाहिए। आरंभ में शेक्स्पीअर साहित्य में तमिल शब्दों की खोज अच्छी रहेगी। 'शेषप्पा अय्यर-शेक्स्पीअर सिद्धात', 'सुकरात-संस्कृत सिद्धांत', 'प्लेटो-पल्टू सिद्धांत', 'पॉल-पाली सिद्धात', 'राम-रामसीस सिद्धांत', 'कृष्ण-ख्रीष्ट सिद्धांत', 'लूका-मलूका सिद्धांत', इत्यादि के सदृश, अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इनमें से अधिकांश सिद्धांत मेरे द्वारा आरंभ किए गए है, इतिहास इसे नहीं भुलायेगा। यह ग्रंथ प्रमाण का कार्य करेगा। ये सिद्धात एकत्र किए जाएं तथा इन पर सम्यक् प्रकाश डाला जाए। इससे मानव जाति का महान् कल्याण होगा। जब ठाकुर टैगोर हो सकता है (वह भी पश्चिम में कम, भारत में अधिक) तब शेषप्पा अय्यर शेक्स्पीअर कैसे नहीं हो सकता ? 'अधिकारी' इधर बढ़ें, तो अच्छा रहे। या फिर कोई 'वयं रक्षामः' अथवा 'वैशाली की नगरवधू' जैसे 'ऐतिहासिक' उपन्यास रचने वाला चतुरसेन शास्त्री जैसा 'आचार्य' ही इधर बढ़े। हाँ, तो बात 'छरस चारिविधि जब श्रुति गावा' की हो रही थी। छरस अथवा षट्रस (षट्यंत्र अथवा षड्यंत्र अथवा खड्यंत्र इससे शतशः पृथक् है) नवरस से तीन संख्याओं की कमी भर रखता है। चर्वण, आस्वाद, भोजकत्व आदि-आदि बिंदु दोनों में प्राप्त होते हैं। यदि तुलसीदास वाला वेद मिल जाता, तो बात और बन जाती है ! फिर भी, 'षट्रस तथा नवरस' शीर्षक प्रबंध तो रचा ही जा सकता है। इससे रस-सिद्धांत को बड़ा बल मिलेगा। उसकी लोकप्रियता (यदि कोई है, तो) में वृद्धि हो जाएगी। यह वृद्धि विश्वविद्यालयों से बाहर नहीं जायेगी (यदि ऐसी आशंका हुई तो 'आचार्य' पदवी-दान रोक देंगे) क्योंकि विवेचन 'शास्त्रीय' होगा, प्रबंध में होगा, उसकी परीक्षा का निष्कर्ष 'आचार्यो' से आबद्ध होगा। 'शास्त्रीय' तथा 'प्रबंध' निश्चित रूप से

'विश्वविद्यालय के लिए' होते है। वाहनो (यंत्रचलित) में 'केवल महिलाओं के लिए' का नियम कई बार पुरुष प्रतीत होने वाले व्यक्ति तोड देते हैं। किंतु, 'शास्त्रीय' और 'प्रबंध' का 'केवल विश्वविद्यालयों के लिए' नियम अटूट है। प्राचीन भारत में श्रुति-शिक्षा केवल सवर्ण प्राप्त कर सकते थे। मनु आदि नीतिकारों ने एतद्विषयक नियम बना दिये थे। इसी प्रकार साहित्य का अध्ययन केवल विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राए अथवा प्राध्यापक-प्राध्यापिकाएं करें, ऐसा कोई औपचारिक नियम भी बन जाना चाहिए। इसका आस्वाद ऐरे-गेर-नत्थू-खैरे लें ! पिश्ते की बर्फी पीर-बावर्ची-भिश्ती-खर खाएं !! तौबा !!!..

कविसम्मेलन अथवा मुशायरा, रस, आचार्य, आलोचना, शास्त्रीयता, भाषाविज्ञान आदि-आदि बिंदुओं का यत्किञ्चित् उल्लेख हो चुका है। वातावरण बन चुका है। अतएव, अब काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निंबध, चम्पू (चम्पी से इसका कोई निकट या दूर का संबध अभी तक विवेचित नहीं किया जा सका), आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, यात्रावर्णन आदि-आदि पूर्णतः एवं अंशत सृजनात्मक विधाओं पर संक्षिप्त 'प्रकाश' डालना उचित प्रतीत होता है।

महानतम काव्य वह है, जो पढ़ा न जाता हो; किंतु जिसकी चर्चा सर्वाधिक होती हो। प्रत्येक प्राध्यापक एवं उच्चछात्र को जन्म से ही यह अधिकार प्राप्त है कि वह रामायण, महाभारत, इलिअड, ओडिसी, शाहनामा, डिवाइन कॉमेडी, रामचरितमानस तथा पैराडाइज लॉस्ट पर सम्मति प्रदान करे। सम्मति प्राय: प्रत्येक रूप में कुछ ऐसी हो सकती है, "...एक महान् ग्रंथ है, विश्व-वाङ्मय के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में एक। इसमें मानवता, विशेषतः राष्ट्र का, अत्यंत विशद चित्र अंकित किया गया है। अनुभूति की सजीवता एव अभिव्यक्ति के प्रवाह में यह काव्य अतुलनीय है।" कुछ अवसरों पर, सम्बद्ध काव्य के पात्रों आदि की चर्चा पर गहन मौन व्यक्तित्व को अतीव शोभा प्रदान करता है। कई अवसरों पर कवि के नाम पर विवाद उठ खड़ा होता है। महानतर काव्य वह है, जो आलोचनाओं, निर्देशिकाओं तथा टीकाओं की मार्फ़त पढा जाता हो, यद्यपि यह निश्चित नहीं रहता कि आलोचक, निर्देशिकालेखक तथा टीकाकार ने उसे किस सीमा तक पढ़ा है। ग्रंथ पढ़ने से उसकी व्यापक आलोचना करने मे बाधा पड़ती है। क्षेत्र सीमित हो जाता है, आलोचक को अपनी अनुभूतियाँ व्यक्त करने में संयम से काम लेने की आवश्यकता का अनुभव होने लगता है। बिना पढी आलोचना सर्वश्रेष्ठ होती है, क्योंकि उसमें कोई बंधन नही रहता। जो इच्छा हो, कहा जा सकता है। उच्चस्तर की अधिकांश आलोचना ऐसी ही होती है। पत्र-पत्रिकाओं की आलोचना इसी वर्ग में निम्न स्तर की वस्तु कही जा सकती है, क्योंकि उच्च स्तर के आलोचकों के पास इतना समय नहीं होता

कि वे इधर ध्यान दे सकें। महान् काव्य वह है, जो कुछ पढ़ा और बहुत समझा जाता है। आलोचना और टीका की बैसाखी के सहारे छात्र अथवा पाठक काव्य तक डगरता है। इस बीच सुनी-सुनाई बातें भी पचाता चलता है। पृथ्वीराजरासो हो या रामचन्द्रिका, सूरसागर हो या पदमावत, बिहारी-सतसई हो या 'राम की शक्तिपूजा' सब पर राय बन जाती है। आदर्श काव्य-प्राध्यापक वह है, जो विश्व काव्य के प्रत्येक बिंदु पर अपनी-निजी राय रखता हो। आदर्श काव्यछात्र वह है, जो विश्वकाव्य के प्रत्येक बिंदु पर उस राय को यथासंभव शुद्ध रूप में उद्धृत कर सकता हो। आदर्श काव्यप्राध्यापक वह है, जो पाठ्यक्रम के अतिरिक्त सब कुछ पढ़ा सकता हो। आदर्श काव्यछात्र वह है, जो उस सब कुछ को पाठ्यक्रम मे परिणत कर सकता हो।

इधर हिंदी में महाकाव्य युग बड़ी धूम से आगे बढ़ रहा है। तीन दशाब्दियो मे तीन दर्जन से ऊपर महाकाव्य रचे जा चुके है। कामायनी से गांधीचरितमानस तक, कमला से भगतसिंह तक, मीरा से प्रेमचन्द तक राशि-राशि महाकाव्य। जितने महाकाव्य हिंदी में तीन दशाब्दियों में रचे गए, उतने सारे विश्व में तीन शताब्दियो में भी नहीं रचे जा सके थे। दर्जनों 'महाकवि' उर्फ 'महाकाव्यकार' इस दिशा में जुटे पड़े हैं। आखिर, हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है; राजभाषा है, ऐसा सुना है।

महानतम काव्य के अनुशीलन के लिए महानतम धैर्य की अनिवार्य आवश्यकता होती है। महानतर काव्य के अनुशीलन के लिए महानतर धैर्य की अनिवार्य आवश्यकता होती है। महान् काव्य के अनुशीलन के लिए महान् धैर्य की अनिवार्य आवश्यकता होती है। अब प्रश्न उठते हैं, "यदि ऐसा धैर्य होता, तो क्या विज्ञान, दर्शन, वाणिज्य आदि का अध्ययन न करता ? तब, क्या काव्य पढने दौड़ता ?" ये प्रश्न गम्भीर नहीं हैं, किंतु युगनिष्ठ अवश्य हैं।

कविस्तुति कभी-कभी हास्यरस की निष्पत्ति करने लगती है। 'सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केशवदास', 'सब कवि जड़िया, नन्ददास गढिया', 'तुलसी गंग दुवो भर सुकविन के सरदार', 'उत्तम पद कवि गंग के उपमा बलवीर', 'सकल बराती कवि बने दूलह सजे बरात' आदि-आदि की 'पद्धति' पर, विजया के सहयोग से, 'सब कवि चेला रूप हैं, कुलपति परम प्रवीण', 'आगेपीछे कॉच सब चिंतामणि कविज्योति', 'नायक सेनापति बने, सब कवि सैनिक मात्र' आदि-आदि के तुक्के भिडाए जा सकते हैं। ऐसे तुक्को की चर्चा आज भी अनेक 'श्रद्धालु' अत्यंत 'गम्भीरतापूर्वक' करते पाए गए हैं। पता नहीं, मेरे गढ़े तुक्कों का क्या होगा।

जब कोई नेता-नेत्री, अभिनेता-अभिनेत्री, गायक-गायिका, उद्योगपति-उद्योगपत्नी, क्रीड़क-क्रीडिका महानतम से महान् स्तर तक के काव्य की गम्भीर

समीक्षा करते हैं, तब गम्भीर हास्यरस की निष्पत्ति अनायास ही हो जाती हे।

विख्यात कवियों को राष्ट्रों ने अपनी-अपनी लपेट में ले लिया है, इंग्लैंड मे शेक्स्पीअर के प्रति अतर्क्य श्रद्धा चारणपूजा (वार्डोलेटरी) की ऊँचाई तक पहुँच गई है। हिंदी में छायावादपूजा, विशेषत॰ प्रसादपूजा, नगेन्द्र तथा चेला-चाकर-मण्डल तक सीमित रह गई, यह देखकर आश्चर्य होता है। यहाँ तुलसी-पूजा का रूप अत्यत व्यापक है। किंतु इंग्लैंड में चारण-पूजा की कसावट ग़ज़ब की है। उसका मुक़ाबला तो तमिलनाडु की तिरुवल्लुवर-पूजा, उर्दू की ग़ालिब-पूजा तथा बाग्ला की रवीन्द्र-पूजा ही कर सकती है। शेक्स्पीअर की चतुर्थ जन्मशती पर उनके जन्मस्थान में जो उत्सव हुआ था, उसमें संसार भर के राजदूतो ने भी भाग लिया था। वह उत्सव विश्वस्तरीय था। पूजा में तर्क के लिए कोई स्थान नहीं होता। छायावादी आलोचना की शैली में 'वह शुद्ध हृदयपक्षप्रधान व्यापार है।' वहाँ बुद्धि का प्रवेश कहाँ। वहाँ बुद्धि की आवश्यकता क्या !

राजनीतिज्ञ भी कभी-कभी साहित्य-प्रेमी होते पाए गए हैं। यों, राजनीतिज्ञ ब्रह्माण्ड के किसी भी विषय पर बोल सकता है। वह सारे विषयों पर सचिवो का लिखा भाषण पढ़ भी सकता है। राजनीतिज्ञ का साहित्य-प्रेम भयावह होता हे, वह भाषायी-साहित्यिक-दंगे, पृथकतावाद का ताण्डव-नृत्य, कुछ भी करा सकता है। मैं जब किसी नेता को किसी कवि पर बोलते सुनता हूँ, तब थर्रा उठता हूँ। मैं जब किसी नेता को किसी साहित्य पर प्रकाश डालते देखता हूँ, तब विस्मय-सागर में डूब जाता हूँ। मैं जब किसी नेता को किसी भाषा पर राय देते देखता हूँ, तब सतर्कतापूर्वक अपने घर की ओर चल देता हूँ।

'नाटक' एक बहुरंगी विधा है— काव्य, कथा, अभिनय, नृत्य, संगीत, चित्र, शिल्प, सभी का समन्वित रूप। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्।' जब नाटक अनेक, प्राय सभी, कलाओ का समन्वित रूप है तब उसमें मौर्ख्य-समन्वय स्वयंसिद्ध हे। कही कालिदास के पात्र कामशास्त्र की मीमांसा करते दिखाई पड़ते हैं, कहीं शेक्स्पीअर के पात्र लम्बे-लम्बे भाषण करते दिखाई पड़ते हैं, कहीं प्रसाद के पात्र प्राचीन भावुकता को नवीन माध्यम से व्यक्त करते दिखाई पड़ते हैं। प्रसाद के नाटक पाँचवीं से अठारहवीं शताब्दियों के मध्य रचे गए प्रतीत होते हैं। किंतु उनकी भाषा खड़ी-बोली बताई जाती है। वस्तुतः वह छायावादी भाषा है। भविष्य मे छायावादी भाषा हिंदी की एक विशिष्ट साहित्यिक उप-भाषा मानी जाएगी। पत, महादेवी तथा नगेन्द्र की अधिकांश पुस्तकें छायावादी भाषा में लिखी गई हैं। नाटक के संवाद, कथानक, संगीत, शिल्प इत्यादि में भी मौर्ख्य सराबोर रहता है, किंतु 'अभिनय' का क्या कहना ! कभी-कभी तो उसके आगे कविसम्मेलन, यहाँ तक कि मुशायरा, भी पछाड़ें खाता नज़र आता है। नए-नए तोडे और नए-नए

झिटके देखकर नाटक पर कम, डार्विन और फ्रायड पर अधिक ध्यान देने की विवशता का सम्मान करना पड जाता है। क़व्वाली का माहौल याद आ जाता हे। हॉ, कव्वाली में 'हाल' का हाल अवश्य अतुलनीय होता है। क़व्वाली की इश्क रूह है। अगर चौराहे पर क़व्वाली हो रही हो, तो इश्क़मज़ाजी; अगर दरगाह में क़व्वाली हो रही हो तो इश्क़हकीक़ी। रचना एक ही हो सकती है। चलचित्र मे जो मौर्ख्यसागर का ज्वार दिखाई पडता है, उसका कारण उसका नाटकपुत्र होना ही है—आत्मा वै जायते पुत्रः।

महाकाव्य-नाटक(एपिक-ड्रामा, किंतु एप तथा ड्रम शब्दों से इन दोनों शब्दो का कोई निकट संबंध अभी तक विवेचित नहीं किया गया) एक बड़ी चीज है। भवभूति कृत 'उत्तररामचरितम्' तथा गेटे कृत 'फॉस्ट' इस दिशा मे अनायास ही याद आ जाते हैं—हिंदी में भी अनेक महाकाव्य-नाटक होंगे। उसमें क्या नही हे ? किंतु, मेरी दृष्टि में 'अभी तक' कोई नहीं आया। यदि बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रसाद इस दिशा में चूक गये होंगे, तो शताधिक ग्रंथों के प्रणेता, किंतु नाट्यकार के रूप में प्रख्यात स्वर्गीय सेठ गोविन्ददास तो अवश्य ही बढे होगे। जब रचयिता से 'महाकाव्य रचूँ या महानाटक ?' की समस्या नहीं सुलझाई जाती, तब वह महाकाव्य-नाटक रच डालता है। महाकाव्य नाटक न महाकाव्य होता है, न नाटक। वह 'कुछ-और' ही होता है।

आजकल उपन्यास का बड़ा ज़ोर है, क्योंकि सुनने में आया है, इस जमाने मे लोगों को फुर्सत नही रहती। बेड-टी से बेड-कॉफी तक अनेक घंटे बाथरूम, ड्रॉइगरूम, डाइनिगरूम, डांसरूम आदि में कट जाते हैं, क्लब का क्लब ऊपर से। हॉली (होली के अंग्रेज़ी तथा हिंदी शब्दों से भी इनका परोक्ष संबंध है) डे पर सिनेमा, 'पार्टी' आदि की अतिरिक्त व्यस्तताएं। पिकनिक, प्लेज़र-टूअर आदि अलग से। दम लेने की फुर्सत नहीं रहती। इतने पर भी, कुछ समय रोजी-रोजगार में लगना ही पड़ता है। भले ही उसमें मन न लगे, पर तन तो लगता ही है। सभ्य होना कोई बच्चों का खेल है ! और, सभ्यता दिन दूनी रात चौगुनी रॉकेट-रफ्तार से दनादन आगे बढ़ रही है। अब वह समय दूर नहीं, जब व्यक्ति कहेगा, 'मुझे प्यार करने की फुसर्त नहीं है।' किंतु इस बीच न्यूडिस्ट-क्लब, स्वीसाइड-सेण्टर आदि कम-से-कम प्रत्येक महानगर में खुल चुके होंगे। और, तब एक समय ऐसा आएगा, जब कहा जाएगा, 'मुझे जीने तक की फुर्सत नही है ?' बहरहाल, अभी सभ्यता इतने ऊँचे स्तर तक नहीं पहुँच सकी। सभ्यता और व्यस्तता में चोलीदामन का रिश्ता है। अभी उपन्यास पढ़ने के अवसर निकल आते या निकाल लिए जाते हैं; अध्यापक कक्षाओं में, अध्यापिकायें प्रयोगशालाओ मे, बाबू दफ्तरों में, साहब रेल या हवाई-जहाज मे, छात्र अध्यापन-काल में, छात्राएं

बस में, नेता ससद-भवन में, मंत्री मत्रालय में, अभिनेता-अभिनेत्री नखरों-नाज में उपन्यास पढ़ डालते हैं और उनकी राय सुनकर मुझ जैसे अल्पज्ञों को गश आ जाता है; जबकि 'अन्यों' की रायें स्मित के अट्टहास तक इससे सर्वथा विपरीत प्रतिक्रियाए उत्पन्न करती हैं।

'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' के अनुसार उपन्यासकारों की सख्या में आशातीत एवं प्रचण्ड वृद्धि हो रही है। कुछ 'पेशेवर उपन्यासकार' महीने में दस उपन्यास तक लिख डालते हैं, यद्यपि इसके लिए अथवा 'मूड' बनाने के लिए उन्हें ठर्रे से वोदका तक, फुटपाथ-टी-स्टाल से डीलक्स-कॉफी-हॉउस तक, स्लमगर्ल से कॉलेजगर्ल तक (आय-अनुसार) भारी चक्कर लगाने पड़ते हैं या कई-कई देशी-विदेशी मूल-अनूदित उपन्यास 'देखने' पड़ते हैं या अपने कुछ पुराने उपन्यासों की ओवरहॉलिंग करनी पड़ती है या फिर अपनी अथवा किसी की कृति में शीर्षक तथा नाम आदि का परिवर्तन करना पड़ता है। 'लोकप्रिय उपन्यासकार' का गौरव चरम उत्कर्ष पर तब पहुँचता है, जब उसकी कलाकृति पर कोई हिट या जुबली फिल्म बन जाती है।

अब कादम्बरी, डॉन क्विक्ज़ोट, द विकार ऑफ़ वेकफील्ड आदि के रचयिताओ अर्थात् एक या कुछ उपन्यास लिखकर अमर होने वाले कलाकारों का युग कोसों पीछे छूट चुका है। अब तो उपन्यासकार से पहला प्रश्न यह पूछा जाता है, 'कितने उपन्यास छप चुके हैं ?' यदि उसके उत्तर में संख्या दस से पीछे रह गई, तो प्रतिक्रिया होती है, 'बस !' कतिपय मेधावी उपन्यासकार परिचय-प्रसंग में गर्वित-गर्जन करते हैं, 'मैं सौवाँ उपन्यास लिख रहा हूँ।' एकाध 'स्वनामधन्य' उपन्यासकार सौ की संख्या को भी फाँद चुके हैं। नए पट्ठे इधर लपक रहे हैं ! इस 'लपक' में प्रकाशक उनकी करारी मदद करते है। किस तरह का प्लॉट (ज़मीन का नहीं) हो, किस तरह के चटपटे डायलॉग हो आदि में वे बड़े माकूल सुझाव दे डालते हैं।

कुछ उपन्यासकार (वैसे, कवि, नाट्यकार, कहानीकार आदि भी) ऐसे हैं, जो रचना को शिल्प पर वार देते हैं और वह शिल्प क्या है, इसे किसी के समझ न आने पर, समझा भी डालते हैं। कुछ ऐसे हैं, जो चिंतन-तरंग (वास्तविक अथवा कल्पित) को कलाकृति का जामा पहना देते है, तो, कुछ ऐसे भी हैं जो गप्प या गाथा को उपन्यास घोषित करके पाठ्यपुस्तकलाभ तथा पुरस्कार पर हाथ साफ करते है। पुरस्कार कृति को नहीं, कृतिकार को मिलते हैं। यह सनातन तथा सार्वभौम तथ्य है। उपन्यासकार सूर्य की ज्योति-तले के किसी जड़-चेतन बिंदु का व्यापक चित्रण करने का जन्मसिद्ध अधिकार सुरक्षित रखता है। 'इलहाम' के सहारे, वह कोई भी जानकारी प्राप्त तथा व्यक्त कर सकता है।

यदि 'ऊपरवालो' तक पहुच अच्छी हुई, यदि 'आचार्यो' अथवा आलोचकों से व्यक्तिगत संबंध मधुर हुए, यदि व्यक्तित्व 'लचीला' हुआ, तो पाठ्य-पुस्तक-स्वर्ग भी प्राप्त हो जाता है और स्वर्ग में अमर ही रहते हैं।

'ऐतिहासिक उपन्यास' का नाम सुनकर इतिहास आत्महत्या करने दौडता हे। विश्व-साहित्य के महानतम उपन्यासकार टॉल्स्टॉय के सर्वोत्तम उपन्यास 'युद्ध ओर शांति' से लेकर हिंदी साहित्य के एक लोकप्रिय उपन्यसकार चतुरसेन शास्त्री के 'वयं रक्षामः' जैसी विशद कृतियों तक मे यह तथ्य देखा जा सकता है। इसके कई कारण हैं। कलाकार की भावुकता यदि आत्मानुभूति-विहीन हो गई, तो बेचारी मोलिकता का क्या हाल होगा ? कलाकार को चिंतन-मनन से ही अवकाश नही मिलता, फिर वह विषय के विविध अथवा सभी पक्षों का अध्ययन कैसे कर सकता है ? 'इस उपन्यास की मौलिकता के लिए मैंने अब तक एक भी उपन्यास नहीं पढ़ा।' कभी-कभी ऐसा दावा भी किया जाता है। तलस्पर्शी मौलिकता तभी सभव है, जब कलाकार कुछ भी न पढ़े। कलाकार का काम पढना नहीं है, रचना हे। पढते आम लोग हैं। 'प्रतिभाशाली व्यक्ति पढ़े !' यह वाक्य प्रतिभा के लिए अपमानजनक है। कम-से-कम नब्बे प्रतिशत 'ऐतिहासिक' उपन्यास मेरे उक्त 'विवेचन' के निदर्शन हैं। अन्य मौलिक उपन्यासों के लिए अध्ययन व्यर्थ है ही, उपन्यास की छोड़िए, कविता को लीजिए। मैथिलीशरण ने कहा था, "मैं किसी की कृतियाँ पढ़ूँ, यह विधि को स्वीकार नहीं है। लोग मेरी कृतियाँ पढें, यही उसे स्वीकार है।" अध्ययन सामान्य व्यक्ति करते हैं, प्रतिभाशाली व्यक्ति नही। वे अध्ययन के लिए सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

सुना है, समस्या-प्रधान उपन्यास भी होते है। यों, साहित्य स्वयं एक समस्या हे। इसे किसी भी साहित्यकार अथवा साहित्यप्रेमी के माता-पिता, पत्नी-पुत्र, मित्र-श्रोता, ऋणदाता-वस्तुदाता आदि से समझा जा सकता है। प्रायः प्रत्येक विधा में समस्याप्रधान कृतियां अवश्य होती हैं। अनेक उपन्यासकार संसार की दयनीय दशा में बेतरह परेशान हो उठते है। उनकी परेशानी कई बार पैगम्बरो और लीडरों की याद दिला डालती है। सोशल-सर्विस के अहम (संस्कृत वाला नहीं) मकसद से ऐसे फ़सानानवीस (अर्जीनवीस नहीं) इलाज के नुस्खे निकालते रहते हैं। प्रेमचन्द ने ऐसे इलाज के कई शफाखाने खोले थे। जब प्रेमचंद को, कुछ देर से ही सही, पता लगा कि समाज के रोग साहित्यिक चिकित्सालयो के खोलने से नहीं, क्रांति से मिटते है, तब उन्होंने उग्र पथ पर पैर बढ़ाए। सेवासदन आदि का दौर खत्म हुआ और जाति-प्रथा के सनातन दोष को मिटाने के लिए गोदान के एक ब्राह्मण पात्र के मुख में हड्डी ठुँसवा दी गई। इस महाक्रांति ने जातिप्रथा के दानव को सदा-सर्वदा के लिए समाप्त कर दिया ! बेचारे महावीर

ओर बुद्ध, कबीर आर नानक, दयानन्द ओर गाधी आदि-आदि जिस समाज-दोष को समाप्त न कर सके थे, उसे मृतपशु की एक हड्डी ने समाप्त कर डाला! यों, जातिप्रथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सभी मानते हैं, पर हड्डी ब्राह्मण पात्र के मुख में ही ठुँसवाई गई। यह जाति-विरोधी स्वस्थ-दर्शन था। इसका केन्द्रबिन्दु हड्डी थी। यह हड्डी 'जैक द जाइण्ट-किलर' को भी मात दे गई। 'हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार' ने साहित्य की शक्ति से सबंधित सारे उद्‌गारों को पीछे धकेल दिया।

कभी-कभी कोई 'आचार्य' भी, लगे-हाथ या बीमारी-आरामी मे, उपन्यास लिख बैठता है। पूर्व-ख्याति, वर्तमान-साधनसम्पन्नता तथा शिष्य-प्रशंसक-समुदाय के सबल आधारों के कारण, उसका उपन्यास तत्काल 'महान्' तथा 'अमर' घोषित कर दिया जाता है। यदि ऐसा उपन्यास 'ऐहिासिक' बता दिया गया, अर्थात् उसके पात्रो के नाम प्राचीन शैली के हुए, अथवा उसका वातावरण प्राचीनता के आभास से युक्त प्रतीत हुआ, तो उसे 'अतीत का उज्ज्वल दर्पण' मान लिया जाना अनिवार्य है। यदि किसी अनधिकारी तथा धृष्ट व्यक्ति ने अननुकूल अर्थात् स्तुतिविहीन, विचार प्रकट किए, तो उसकी खैर नहीं। हिंदी-आलोचना स्तुतिपरक तथा निन्दापरक, इन दो भागो में ही विभक्त की जा सकती है।

कहानी काव्य तथा उपन्यास के आगे कुछ हल्की पड़ जाती है। इसीलिए, वह पाठ्‌यक्रम के अमृत को पीकर ही अमर हो पाती है। पुराने जमाने में लोग-बाग समय बिताने के लिए शतरंज या गंजीफा आदि खेलते थे, बाद मे जमाना ताश पर उतरा, अब कहानी का दौर है। कहानी कोई भी लिख सकता है, पर समस्या छपाई की है। कोई भी घटना कहानी बन सकती है। और, अब तो कथानक भी आवश्यक नहीं रहा। तरंग चाहिए और चाहिए अनुकूल सम्पादक अथवा प्रकाशक। इसलिए, पत्र-पत्रिकाओं के स्वामियों अथवा सम्पादकों के 'जीवनदर्शनों' तथा 'जन-रुचि' का ध्यान रखना पड़ता है। बस, नैया पार है। हिंदी में कई ऐसे कहानीकार हैं, जो संख्या में हज़ार का फाटक तक पार कर चुके हैं। 'हिंदी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार' प्रेमचंद ने ही तीन-सौ के दरवाज़े पर दस्तक दे दी थी। विकास अच्छा हुआ है, सुनने मे आया है, 'नई कहानी', 'नई कविता' के सदृश ही, शिल्प मात्र पर ध्यान दे रही है। यदि ऐसा है, तो कुछ बुरा नहीं। शिल्पकला के अंग के रूप में वह भारी अर्से तक जी सकेगी। शिल्प का युग ही है।

निबध किसी भी विषय पर किसी के भी द्वारा रचा जा सकता है, किंतु पाठ्‌यक्रम में उसे तभी स्थान प्राप्त हो सकता है, जब वह किसी नेता अथवा नेत्री, 'आचार्य' अथवा 'आचार्या', वर्तमान अथवा भूतपूर्व कवि अथवा कवयित्री

की रचना हो, अथवा 'उस रूप में प्रस्तुत हो।' संस्कृत के एक 'आचार्य' ने गद्य को कवियों की कसौटी कहा था (गद्य कवीनां निकषं वदन्ति), क्योंकि वे गद्यकार थे। हिंदी के एक 'आचार्य' ने निबंधक को 'गद्य की कसौटी' कहा था, क्योंकि वे निबंधकार थे। महान् निबंधकार वह है, जिसके निबंध किसी-किसी को समझ में आएं; भले ही समझने वाला दूसरों को न समझा सके। अत्यंत महान् निबंधकार वह है जिसके निबंध नहीं के बराबर,लोग पढ़ें। यदि पाठ्यक्रम की विवशता के कारण कुछ मेधावी छात्र पढ़े भी, तो आलोचना और व्याख्या की घुट्टियाँ ले-लेकर। इन दृष्टियों से रामचन्द्र शुक्ल अत्यंत महान् निबंधकार थे। यद्यपि श्यामसुन्दर दास जैसे प्रतिष्ठित विद्वान् को ('साहित्यालोचन' में) उनके निबंधों की तुलना में प्रतापनारायण मिश्र के निबध अधिक सफल प्रतीत हुए थे, तथापि अत्यंत महान् निबंधकार की उक्त परिभाषा शुक्ल जी के पक्ष में ही जा पड़ती है। यद्यपि लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय जैसे डॉक्टर ने बालमुकुन्द गुप्त को सर्वोत्तम निबंधकार बताया है, तथापि उक्त परिभाषा शुक्ल जी के पक्ष मे ही जा पड़ती है। कतिपय महानुभाव, जिन्होंने बेकन का नाम सुना है तथा शुक्लजी के निबधों के बारे मे जानकारी पाई है, उन्हें 'हिंदी का बेकन' कहते हैं। वस्तुत वे ऐसा कहने की सुविधाजनक स्थिति में हैं। बेकन के निबंध आकार में छोटे हैं, शुक्ल जी के मोटे। बेकन के निबंधों में वाक्य लघु हैं, शुक्ल जी के गुरु (वे गुरु थे भी !)। बेकन के विषय व्यापक जीवन से अधिक संबंध रखते हैं, शुक्लजी का 'आचार्यत्व' बंधन में रहने वाला नहीं। स्वयं 'आचार्य' होकर भी उन्होने शास्त्रीय संगीत के 'आचार्य' के आठ अंगुल का मुँह फैलाकर 'विकल होने' का उल्लेख किया है; और आश्चर्य यह है कि मनमोहक चलचित्र-संगीत की स्तुति नहीं की !

एक 'आचार्य' इक्के पर बैठे-बैठे प्राचीन भारत की सैर कर रहे थे। यह 'गतिशील चिंतन' था। निबंध! एक 'आचार्य' ने रेडिओ की नौकरी छोड़कर प्राध्यापक का बलिदानपूर्ण कार्य आरम्भ किया या हिंदी को कृतार्थ किया और यह 'मेरा व्यवसाय और साहित्य-सृजन' शीर्षक निबंध बन गया। महादेवी ने गर्मियों में पहाड़ों की ठंडी यात्राएं बहुत की थीं। वे अकेली थीं अर्थात् पति से अकेली रहती थीं अर्थात् स्वयं ही परिवार थीं। पैसे थे ही। ग़रीब भारत पहाड़ो में सबसे ज़्यादा गरीब है। ग़रीबों के ऐसे कुछ 'प्रतीक' नज़र आ गए। उनमें कुछ मैदानी 'प्रतीक' जोड़े। कुछ ऐसे 'प्रतीक' जोड़े, जो उनकी समाज-सेवा (जिसे केवल वे ही जानती थीं) का प्रचार कर सकें। 'अतीत के चलचित्र' तैयार हो गए। ये 'चलचित्र' संस्मरण हैं या रेखाचित्र या कथा या निबंध या तीनों या कुछ नहीं ? 'आचार्य' जानें। इनके विषय धरती के हैं। पर इनकी भाषा आसमान

की हे। गद्य उद्गार को अकृत्रिम रूप में व्यक्त करने का माध्यम है। किंतु, 'अतीत के चलचित्र' का सा कृत्रिम गद्य जयशंकर प्रसाद के नाटको मे भी नहीं मिल सकेगा। इन चलचित्रों को देखने पर लगता है, स्वर्ग की कोई महादेवी धरती के प्राणियो का उद्धार करने के लिए मर्त्यलोक में उतरने की कष्टपूर्ण कृपा कर रही है, अथवा, अम्पायर स्टेट बिल्डिग की पचासवी मंजिल से कोई 'शखपत्नी' अकस्मात् भारत के निर्धनतम नर-नारियों के बीच आ पड़ी है ! किंतु छात्र ओर छात्राओं, प्राध्यापक और प्राध्यापिकाओं को इस सब की स्तुति करनी पडती है। क्या आश्चर्य, अनेक अहिदी-भापी विद्यार्थी हिंदी लादे जाने का विरोध करते हैं !

सफल विचारात्मक निबंध वह है, जिसमें दूरबीन लगाकर विचार ढूंढ़ने की अनवरत, किंतु असफल, चेष्टा करती रहनी पड़े। सफल भावनात्मक निबंध वह है, जिसमे किसी-न-किसी प्रकार के 'चिरंतन प्रेम' अथवा 'विश्व की क्षणभंगुरता' आदि का पुराना राग, नए बाजे की मदद से, कसकर अलापा जाए। और, जो कुछ भी नहीं है, वह वर्णनात्मक निबंध तो है ही !

चम्पू (शब्द हास्यरस का नहीं, गम्भीर है) में गद्य भी होता है, पद्य भी; अथवा, न वह गद्य-ग्रथ होता है, न पद्य-ग्रंथ। जिस भाँति प्रकृति तथा व्याकरण में कतिपय प्राणी तथा बिदु एक न होकर कुछ इधर के और कुछ उधर के होते हैं, उसी भॉति साहित्य में चम्पू होता है। फिर भी, लोग-बाग उसे काव्य की ओर घसीटते देखे गए हैं। जब गद्य-पद्य में से कुछ भी लिखने का मूड़ न हो, साथ ही लिखने का 'धर्म' न टालना हो, अथवा लिखने के व्यवसाय का सम्मान करना हो, तब चम्पू लिखना आवश्यक हो जाता है।

आत्मकथा लिखने-लिखाने का एकाधिकार नेताओं ने ले लिया है। किंतु, अब एकाधिकार-प्रणाली में युगानुरूप यत्किञ्चित् परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे है और 'दूसरे लोग' भी मैदान में उतरने लगे हैं। आत्मकथाकार का उद्देश्य युग एव चिर पर छोड़ी जाने वाली अपनी छाप का वर्णन-विवेचन होता है। कई बार इस छाप को उसके अतिरिक्त कोई और नहीं जान-मान पाता। जीवनी प्राचीन चरित-लेखन का नवीन गद्य-रूप है, जिसमें प्रत्यक्ष-परोक्ष लाभ तथा स्तुति-प्राधान्य शतशः अनिवार्य नहीं है। भारत में कोई बॉस्वेल या एबट् नहीं हुआ, यद्यपि तेंदुलकर हो चुका है। हिंदी में जीवनी पाठशाला-स्तर से ऊपर नहीं उठ सकी। संस्मरण तथा यात्रा-वर्णन भारत मे व्यक्ति की दृष्टि से पढे जाते हैं, कृति की दृष्टि से नहीं। लम्बी दासता ने भारत को महान् स्तर के साहित्य के सृजन तथा अध्ययन से बहुत दूर तक वंचित कर दिया। किंतु, चूँकि अतीत में वह महानतम स्तर के साहित्य का सृजन तथा अध्ययन कर चुका है, अत:, भविष्य

मे भी कर सकता है।

प्रतिभा की विवशता का नाम कविता है। सृजन के वैवश्य का नाम गद्य है। कम-से-कम भारत में, कम-से-कम आजकल ऐसा ही लगता है, क्योंकि प्रायः प्रत्येक कवि, लेखक, 'आचार्य' किसी-न-किसी नेता या दल या अधिकारी या पूँजीपति की पूँछ बनने में गौरव का अनुभव करता है। जो ऐसा नहीं करता, वह ठोकरें खाता फिरता है। साहित्य पढने और पढ़ाने वाले व्यग्य एवं उपहास के आलम्बन बने हुए हैं। वे स्वयं हीनता-ग्रंथि के क्रोड बने पडे हैं। उनकी आय, जो भारत में महिमा का एकमात्र लोकप्रिय मानदण्ड है, सबसे कम होती है। उनके परिवारों की स्थिति प्रायः दयनीय ही देखी गई है। आज के प्रायः समस्त लेखक अर्थ और व्यर्थ के बीच दबे पड़े हैं। फिर भी लिखने से बाज नहीं आते। अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति भी विवशता है।

मौर्ख्य और साहित्य-संबंध की यह चर्चा पर्याप्त नहीं है। आशा है, अधिकारी 'विद्वान्' इस ओर दृष्टिपात करेंगे। विषय-भूमि अत्यंत उर्वर है। बस, सकोच-त्याग तथा साहस की आवश्यकता है।

16. संसार के मूर्खो, एक हो !

साम्यवादियों, समाजवादियों इत्यादि का नारा है : 'संसार के मजदूरो, एक हो।' किन्तु यह नारा सार्वभौम नहीं है, क्योंकि मज़दूर सारी मानव-जाति के एक-चौथाई भी नहीं है—किसान, कारीगर, मिस्त्री, मैकेनिक, एंजिनीअर, ओवरसीअर, डॉक्टर, कपॉउंडर, नर्स, वकील, मुंशी, पेशकार, चपरासी, प्रशासनिक अधिकारी, अन्य अधिकारी, क्लर्क, पुलिसिए, सैनिक, अर्द्धसैनिक, नेता, अर्द्धनेता, अनेता, अभिनेता, अर्द्ध-अभिनेता, अनभिनेता, तस्कर, व्यापारी, उद्योगपति, खोंचेवाले, ठेलीवाले, रेहडीवाले, इक्केवाले, ताँगेवाले, स्कूटरवाले, टैक्सीवाले, ड्राइवर, क्लीनर, कडक्टर इत्यादि मिलकर बहुत-अधिक हो जाते हैं (भले ही इनमें अनेक मजदूर वर्ग में रखे जा सकते हों)। दूसरे साम्यवाद एवं समाजवाद की विश्वव्यापी असफलता के कारण भी यह नारा प्रतिगामी भारत के पश्चिम बंगाल (पूर्णत:) एव केरल (अंशत:) को छोड़कर सर्वत्र महत्त्वहीन हो गया है। सार्वभौम नारा केवल एक हो सकता है : 'संसार के मूर्खो, एक हो !' मूर्खो के एकीकरण का अर्थ है, सभी वर्गो एवं उपवर्गो का एकीकरण। अतएव यदि संसार के मूर्ख एक हो जाएं तो अंतरराष्ट्रीयतावाद से लेकर ब्रह्माण्डवाद तक की विजय हो जाए। मार्क्स से लेनिन तक, रवीन्द्र से राधाकृष्णन् तक, सर्वत्र राष्ट्रवाद की भर्त्सना प्राप्त होती है। मुसलमान केवलमात्र 'मिल्लत' का जयकारा करते हैं : भारत, साइप्रस इत्यादि को इसका 'अच्छा' अनुभव है। किन्तु संसार के मूर्ख एकत्र हो जाएं तो सारे विवाद समाप्त हो सकते हैं, क्योंकि मौर्ख्य साँझा धन है।

यह अत्यन्त खेद का विषय है कि संसार में अपने प्रचंड बहुमत के बावजूद, मूर्ख कोई व्यवस्थित एवं व्यापक संस्था नहीं बना सके। भारत की राजधानी दिल्ली में प्रति वर्ष होली के आसपास एक मूर्ख-सम्मेलन होता था, जिसमें पूर्ण-धर्मनिरपेक्षता के दर्शन होते थे। दु:ख है कि यह अब कमज़ोर पड़ रहा है। कभी होता है, कभी नहीं। भारत सरकार और राज्य सरकारें, क्रमश: मौर्ख्यरत्न, मौर्ख्यविभूषण, मौर्ख्यभूषण, मौर्ख्यश्री, राष्ट्रमूर्ख, राज्यमूर्ख इत्यादि 'अलंकारों' पर विचार करें तथा मनोनयन में आरक्षण की सुविधाएं प्रदान करे, तो मौर्ख्य को प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता है, जिससे लोकतंत्र, समाजवाद एवं धर्मनिरपेक्षता को

अपूर्व वल मिलेगा। मूर्खों को 101% आरक्षण प्रदान करने की घोषणा करने वाला दल सबको दल कर सत्ता हथिया सकता है।

भारत में कॉंग्रेस ने अपनी तथा देश की प्रकृति को समझते हुए बैलों की जोडी को चुनाव-चिह्न बनाया था। बैल मौर्ख्य का एक प्रतीक है। प्रेमचन्द कृत 'दो बैलो की कथा' (जिसे मेरे अंग्रेजी-फ्रेंच इत्यादि के जानकार मित्र प्रो० रामलाल धूरिया एक फ्रेंच कहानी का छायानुवाद बताते हैं किन्तु जो भारतीय परवेश मे इतनी अधिक खप गई है कि मानना मुश्किल हो जाता है[1]—छायानुवाद की यही चरम सफलता है[2]) में इस विषय पर यत्किंचित् प्रकाश डाला गया है। वैल, बछिया के ताऊ, 'हलधर के वीर' (बिहारी) इत्यादि के प्रयोग प्रमाण-रूपों में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। कॉंग्रेस को इस उपयुक्त चिह्न से प्रर्याप्त लाभ हुआ था। खेद है कि किसी दल ने चिह्न रासभ नहीं रखा, जो विशेष समीचीन रहता। यदि रखता तो संसार के मूर्खों के एक होने के आरंभिक चरण मे, भारत के मूर्ख एक होने लगते और वह दल अतुलनीय हो जाता। खेद है कि बैकवर्डियो ने भी दीन-दलित-प्रतीक सर्वहारा-रूप रासभ की उपेक्षा की।

मेरे मत से जगद्गुरु भारत को रासभ-प्रतिष्ठा हेतु प्रयत्न करना चाहिए। सर्वोदय, पंचशील, साम्यवाद, समाजवाद, बुखारीवाद, मण्डलवाद इत्यादि की विफलताओं के बाद रासभवाद को आज़माने में हर्ज ही क्या है ? रासभ एक सर्वथा धर्मनिरपेक्ष पशु है। गाय या वैल और हाथी प्यारे भारतीय मुसलमान भाइयो को केवल इस आधार पर वध्य लगता है कि हिन्दू इसे पूजते हैं। सुवर मुसलमानों मे हराम है, ऊँट विश्वव्याप्त नहीं है अन्यथा अरब देशों को विशेष तथा अन्य मुसलमानों को सामान्य रूप से बहुत भा सकता था। गधा हिन्दुओ को शीतला-वाहन एवं यहूदियों-ईसाइयों-मुसलमानों को इब्राहीम-मूसा-ईसा-वाहन के रूप में पूज्यत स्वीकार होगा। साम्यवाद एवं समाजवाद को प्रतीक-रूप मे रासभ स्वीकारने मे आपत्ति न होगी। द्रविड दलों को रजक-कुंभकार इत्यादि मे प्रिय होने के कारण रासभ नितांत प्रिय लगेगा। बैल, हाथी, सुवर, ऊँट वगैरह के मुकाबले रासभ विशेष सार्वभौम-स्वीकृत प्रतीक है।

रासभ एक अत्यन्त सम्मानित पशु है। प्राणिशास्त्रवेत्ताओं का कहना है कि रासभ की धारणाशक्ति अश्व से भी श्रेष्ठतर है। उच्चतर अश्विनी तक अनेक

---

1. प्रसिद्ध कहानीकार गंगाप्रसाद मिश्र प्रेमचन्द के लखनऊ-प्रवासकाल मे जब सवेरे मिलते या देखते तो महान् कलाकार एक हाथ मे दातून द्वारा मुखशुद्धि तथा दूसरे में ताजे-टटके अंगेजी-कहानीग्रंथ से मानस-शुद्धि करते मिलता था। प्रेमचन्द का 'ग्रास्प' गजब का था। सारा गृहीत पचा हुआ !

2. चित्रलेखा (भगवतीचरण वर्मा : अनातोले फ्रांस की 'थाया' की छाया) मे भी ऐसी सफलता दृग्गत होती है।

अवसरों पर उसको स्नेहदान करती है धैर्य तथा गाम्भीर्य में कोई पशु उसकी समता नहीं कर सकता। अज्ञेय जैसे धैर्यशाली कवि ने क्षमतापूर्वक उसे 'धैर्य-धन' माना है। रासभ-कवियों में अज्ञेय का उच्च स्थान है। मानवों में योगी तथा पशुओं में रासभ का अविचलित गांभीर्य अतुलनीय है। दार्शनिकों, विद्वानों, आचार्यों तथा साम्यवादियों का गांभीर्य भी रासभ के गांभीर्य की समता सरलतापूर्वक नहीं कर सकता। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1968 ई० के राष्ट्रपति-निर्वाचन में हिप्पियों ने अपने प्रतीक प्रत्याशी 'पिगेसस' ('पिग' का यूनानी-उदात्तीकरण, जो 'पेगेसस' की स्मृति भी कराता है) का सार्वजनिक प्रदर्शन किया था, उसकी शोभायात्रा निकाली थी। भारत में ऐसी शोभायात्रा नहीं निकल सकती क्योंकि मुसलमान शूकर को 'हराम' मानते हैं और धर्मनिरपेक्षता हमारी प्राणशक्ति है जिसके कारण ही हम अखण्ड एवं महान् हैं। पता नहीं कैसे, 1969 ई० के राष्ट्रपति-निर्वाचन में प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक मुस्लिम लोग ने वराह गिरि व्यंकट गिरि का समर्थन कर दिया था ? लगता है, संस्कृत-विरोध के कारण 'वराह' शब्द पर ध्यान नहीं गया तथा बाहर से भी स्पष्ट निर्देश नहीं प्राप्त हुए ?

धन्यवाद है संयुक्त राज्य अमेरिका की डिमॉक्रेटिक[1] पार्टी को जिसने रासभ को चिह्न बनाकर सच्चे लोकतंत्र की आत्मा को उजागर किया है ! काश, भारत में कोई पार्टी अनुकरण कर पाती। सत्य का सम्मान पावन होता है। खेद है कि जगद्गुरु भारत ने विश्व को वराह-पुराण तो दिया किन्तु रासभ-पुराण नहीं—अच्छा हो पाकिस्तान उर्फ पापिस्तान या कोई अरब-देश इस ओर ध्यान दे क्योंकि वहाँ रासभ तगड़े और खूबसूरत होते हैं !

ऐ संसार के मूर्खों, तुम रासभवर्ण एवं रासभ-चिह्नित ध्वज के नीचे एकत्र होकर इस असार संसार में मूर्खतंत्र की स्थापना का प्रयास करो ! माना कि प्रजातंत्र एक बहुत बड़ी सीमा तक मूर्खतंत्र[2] ही है और साम्यवादी शासन-व्यवस्था की स्पार्टन-सादगी, उसके कर्णधारों की स्टोइक मुद्राएं, उसके अधिकारियों के एकरस-एकशब्दावलीबद्ध स्कॉलैस्टिक विवरण इत्यादि में भी मूर्खतंत्र के महान् दर्शन अनायास ही हो जाते हैं, फिर भी नाम तो अलग हैं। दूसरे, इनके झंडे रासभ का सम्मान नहीं करते। चीन की महान् क्रांति से बड़ी-बड़ी आशाएं थीं, पर उन पर भी पानी फिर गया। भारत में स्व. कृष्ण चंदर (चंद्र न होने से, 'चं'

1. लोकतांत्रिक।

2. 'डिमॉक्रेसी इज द गॉवमेन्ट ऑफ फूल्स' कहावत का अर्थ है, 'प्रजातंत्र मूर्खों की सरकार होती है।' यह कहावत प्रजातंत्रवादी पश्चिम ने ही गढ़ी है। पुराने सुकरात भी कह गए हैं : 'प्रजातंत्र में कुत्ते भी ज़ोर से भौंकते हैं।' अब 'भी' की जगह 'ही' लगाया जा सकता है या नहीं ? विशेष-अज्ञ विचार करें।

की जगह ब छप जाने पर अर्थ का अनर्थ सभव है) ने गधे को गवर्नर ता बनाया, पर किसी माई के लाल ने गधे को इससे ऊपर उठाने का हौंसला नहीं दिखाया, हिम्मत नही की। गवर्नर की कीमत ही क्या है ? कुर्ते की तरह बदला जाता है। मूर्खतंत्र की स्थापना के लिए ठोस प्रयत्न होने चाहिए। संसार के मूर्खों का विश्वव्यापी 'दल' बनना चाहिए जिसका नाम विश्व मूर्ख दल हो सकता है।

विश्व मूर्ख दल की स्थापना, ध्वज, घोषणापत्र इत्यादि की प्रक्रिया के अनंतर इसके अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, महामत्री, मंत्री, कार्यकारिणी-सदस्य का निर्वाचन लोकतांत्रिक आधार पर स्वतः हो जाएगा। शंका उठ सकती है कि भारत में दलगत निर्वाचन नेताओं के पद-जोंक होने ('प्राविधिक दृष्टि से' पदजोंकवादी होने) के कारण नहीं हो पाते तो कहीं विश्व मूर्ख दल में भी ऐसा न हो ? किन्तु विश्व बहुत बड़ा है, अतः ऐसा सरल न होगा। जब विश्वमौर्ख्यनेता एक साथ बैठेंगे तब पदजोंकवाद में लचीलापन अवश्य आ जाएगा। पदमृत्युवाद (पद पर मरने के प्रण से सशक्त सिद्धांत) पर कठोर अंकुश स्वाभाविक हो जाएगा।

मुझे विश्वास है, जब विश्व मूर्ख दल स्थापित होगा या जब विश्व में मूर्खतंत्र स्थापित होगा तब मेरी स्मृति वैसे ही की जाएगी जैसे विभिन्न संदर्भो में रूसो, वॉल्टेअर, लिंकन, मार्क्स, एंजेल्स इत्यादि की।

हास्य-निबंध

17. कसम धर्मनिरपेक्षता की : देश का नाम बदलो !

[illegible] आलोचकों, भूतपूर्व उपन्यासकारों, भूतपूर्व कहानीकारों, भूतपूर्व [illegible], भूतपूर्व अभिनेत्रियों, भूतपूर्व इतिहासकारों अर्थात् बुद्धिजीवियों ([illegible] जो जीवन नहीं जीता—बुद्धि जीता है) का भूतनगरी (मकबरों, [illegible] कब्रों, समाधियों, घाटों, 'स्थलों' की 'महा' नगरी) दिल्ली में [illegible] धर्मनिरपेक्षता-सम्मेलन का समाचार सुनकर सारे प्रगतिशील तत्त्वों पर [illegible] गया। [illegible]-थॉट्सों और इंटेलेक्चुअल-थैलों का नजारा था ! एक [illegible] ने प्रश्न किया : "पैसा कहाँ से आया ? रूस तो 'अब' गरीब देश है, [illegible] 'सब' भी गरीब देश ही था, पाकिस्तान उर्फ पापिस्तान दूसरों के बल पर [illegible] रहा है, बांग्ला देश उर्फ कांग्ला देश के मरभुखे भारत का [illegible] रहा है--पर अरब देश ! और, 'भूतों' के पास खुद क्या कमी ? दवाओं का व्यय बढ़ जाता है तो खुराक की कमी व्यय-पूर्ति कर देती है। नींद की गोलियों और टॉनिक्स का व्यय बढ़ जाता है तो मनोरंजन की असमर्थता व्यय-पूर्ति कर देती है : पढ़ने-लिखने का व्यय बन्द हो जाता है क्योंकि पढ़ने के लिए आँखें [illegible], लिखने में हाथ काँपते हैं—बस, टेप-रेकॉर्डर और स्टेनो-टाइपिस्ट का सहारा [illegible] है। [illegible] की किताबें डाक का डाका बचाती आती ही रहती हैं।"

[illegible] ने फटकारा : "तुम घोर साम्प्रदायिक हो। कॉम्युनल, हिन्दू-फंडामेन्टलिस्ट, [illegible], शॉवनिस्ट !"

[illegible] हँसा : "थैंक्यू ! जो हूँ, पर गद्दार नहीं !"

[illegible] काज़मी ने चालू किया, "रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद का मामला [illegible] में कौमी इत्तेहाद, सेक्युलरिज़म..."

"सेक्सुअलिज़म [illegible] किसी मनचले की आवाज़ थी।

"हा-हा-हा-हा ! ही-ही-ही-ही ! खी-खी-खी-खी !"

"कौन कॉम्युनल था ? ईडिअट !..."

"थूँकयू !"

"हाँ, तो मुल्क के टुकड़े-टुकड़े होने का ख़तरा है..."

"मुल्क क्या कोई पापड है जो जब चाहो तब तोड़ डालो !"

"यू शट्-अप ! माइनॉरिटीज़ पर दहशत छाई है। जेनोसाइड का आलम है जिसे उर्दू-प्रेस..."

"शुक्रिया ! दहशत की वजह से आबादी बेहद ज़्यादा हो गई है।"

माहौल बिगड़ता देख पुलकराज आमंद दोनों हाथों मे ज़ोर लगाकर कुर्सी से उठने की कोशिश करते दीखे, तो तुरकान अदीब ने सहारा दिया और जब वे उठकर खडे हो गए तब मंच तक पहुँचा भी दिया। उन्होंने गला साफ़ कर भारी पर फटी-फटी आवाज़ में कहा, "एक मंदिर के लिए इतना बावेला ? मुल्क बडा है या मंदिर ?..."

"एक पुरानी मस्जिद के लिए इतना बावेला जिसमें न अजान के लिए मीनारे हे न वजू के लिए हौज, जिसमें 1949 ई० से नमाज नहीं पढ़ी गई, जिसमे मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं और जिस पर हिन्दुओं का पूरा कब्ज़ा है ? मुल्क बड़ा है या मस्जिद ? ओर वह मस्जिद भी कहाँ है ? घुसते ही त्रिकोण-में-त्रिकोण देखिए, कसौटी-पत्थर के खंभों पर नष्ट की गई देवाकृतियाँ देखिए ! शिया भाई इसे हिन्दुओं को देना चाहते है। सिकंदर बख़्त हों या आरिफ बेग, मंसूर अली खाँ (पटौदी) हों या मुख़्तार अब्बास नक़वी, सब इसे हटाकर मंदिर को पुनः बनाना चाहते हैं।"

तुरकान अदीब मंच पर लपके, "वह जगह जन्मभूमि है ही नही। कोई एतिहासिक प्रमाण नहीं कि मंदिर तोड़कर मस्जिद बनाई गई..."

"तो वहाँ मस्जिद की ज़रूरत ही क्या थी ? वहाँ आज भी मुसलमान बहुत कम हैं। और सारा इतिहास, सारे युद्ध अनैतिहासिक हैं ? क्या आप स्पष्ट प्रमाणयुक्त मंदिर-तोड़कर-मस्जिद काशी विश्वनाथ मंदिर के लिए दे सकते हैं? वहाँ की मस्जिद के पिछले हिस्से में ध्वस्त मंदिर का भाग सयुक्त रखा गया है।

पुलकराज आमंद तैश में बेहोश-से बोले, "तुलसीदास ने कहीं लिखा कि मदिर तोडा गया—वे तो मौजूद थे !"

"बुद्धिजीवी पढ़ते नहीं, केवल लिखते या लिखवाते या बोलते हैं। तुलसी-दास..."

दिपनचंद्र अपनी कुर्सी से ही चिल्लाए, "तुलसीदास प्रमाण हैं कि मंदिर नही टूटा..."

"मस्जिद 1528 ई० में मदिर तोडकर ही बनाई गई—देवीदीन पॉड़े इत्यादि के विकट युद्धों के प्रमाण इतिहास में भी मिलते है, साहित्य में भी। तुलसीदास 1532 ई० में पैदा हुए और वह भी अयोध्या में नहीं, उन्होंने रामचरितमानस 1574 ई० मे लिखा। फिर, रामचरितमानस मस्जिद-कथा नहीं। यह विचार बरगलानेवाला है।"

पोमिला हापर ने याद दिलाया, "लेडीज़ एड जेन्टलमेन' थेक्स टु सेन्युलरिजम देश को बचा लिया गया। अब इस मामले को तूल देना यूजलेस है. ."

"कामरेडनी कुभासिनी कल्ली ने कहा था, बाबरी महजिद और रामजन्मभूमि मे बपुलिस बना दी जाय—यह ठीक था।" कॉमरेड गूदड़ खान गरजे।

पोमिला हापर, "बपुलिस यानी पुलिस-स्टेशन ? वहाँ पूरी छावनी बना दी गई थी।"

"बंपुलिस माने सुल्लभ-सउचाले या पबलिक-लटरीन होता है, पुलिसघर नहीं।"

हव्वा काज़मी अपनी जगह से ही दहाड़ीं, "उस एम. पी. ने इसका खडन किया था."

"वह एम पी. पागल होकर मर गई !"

"शट्-अप यू कॉम्युनल !"

पुलकराज आमंद अभी माइक का डंडा पकडे खड़े ही थे। बोले, "सारे झगडो की जड़ भारत का नाम है—यह हिन्दू नाम है; जब तक इसे न बदला गया सापरदायिकता नही मिट सकती !"

तालियों की गड़गडाहट हुई। तुरकान अदीब बोले, "पाकिस्तान और बाग्ला देश बनने के बाद हिन्दुस्तान नाम बेमानी है—सिधु या हिन्दु पाकिस्तान का दरिया हे। इडिआ एक तो हिन्दुस्तान का ही यूनानी तर्जुमा है, दूसरे कैपिटलइजम एड इपीरिअलइज़्म की याद दिलाता है। 'इंडिआ, दैट इज़, भारत' का नाम बदलना ही होगा..."

"इसके लिए सविधान में संशोधन करना पड़ेगा।"

"क्या फर्क़ पड़ता है। संविधान मे हर हफ़्ते एक या दो संशोधन होते ही रहते हैं—एक और सही। हर-एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी दल और सासद इसका स्वागत करेगा। आप हमारे नेताओ की पोशाकों, टोपियो और दाढ़ियों पर ध्यान दें तो स्पष्ट हो जाएगा कि राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष है।"

"धर्मनिरपेक्षता की जय। धर्मनिरपेक्षता के लिए मुग़लिया अचकन-शेरवानी अपनाई, जिसको प्रस्ताव पारित कर राष्ट्रीय परिधान घोषित किया जाना चाहिए!"

तुरकान अदीब ने कहा, "बेहद अच्छा सुझाव है लेकिन पहले अहम मुद्दे पर फैसला हो जाए। भारत नाम हिंदू है, कॉम्युनल—इसे बदलना ही होगा।"

हव्वा काज़मी फ़नकारी मुस्कान मे मुस्काई और बोलीं, "दर अस्ल, यह कॉन्फ्रेंस इसीलिए बुलाई गई थी।"

प्रो० कामवर ने उनकी न लौटने वाली जवानी को वापस आते देखकर ऑखो मे ऑखें उडेल दीं। वे फिर मुसकाई, तो कामवर आसन से ही चिल्ला पड़े, "मैंने एक पूर्ण धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, समाजवादी और प्रगतिशील नाम सोचा है हिमुईसि ! हिं से हिंदू, मु से मुसलमान, ई से ईसाई, सि से सिख और चारो मिलकर हिमुईसि नाम सचमुच महान् होगा क्योंकि ससार में ऐसा नाम कही नही है ! कश्मीर का मुसलमान-राज्य और मुल्लापुरम् का मुसलमान-उपराज्य, पजाब का सिख-राज्य और पीलीभीत का सिख-उपराज्य, नागालैण्ड-मिजोरम-मेघालय के ईसाई-राज्य, सब संतुष्ट होंगे। कट्टरतावादी, साम्प्रदायिकतावादी, प्रतिक्रियावादी इस नाम को सुनकर बगलें झाँकने लगेगे।"

"लेकिन इसमें हिंदू पहले आया—इट इज कॉम्युनल।" हव्वा काजमी ने आपत्ति की।

"इसमे अरुणाचल प्रदेश के बौद्ध-राज्य और लद्दाख के बौद्ध-उपराज्य को कोई स्थान नही प्राप्त हुआ—नव-बौद्धो की पूरी उपेक्षा की गई है। यह-सब बोद्धिसत्त्वावतार, आधुनिक भारत के निर्माता, प्रातः स्मरणीय बाबा साहब डॉ भीमराव अबेडकर के जन्म-शताब्दि वर्ष के आसपास मे। यह सब परम पावन नावेल पीस-प्राइज़ विजेता दलाई लामा के भारत में रहते। असह्य।" अब तक चुपचाप बैठे बुद्धसेन मौरिया दहाडे।

कामवर बोले, "'मुहिबौईसि' कैसा रहेगा ? मुसलमान पहले। पेट्रो-डॉलर से अति संपन्न अरब देश खुश हो जाएंगे—आखिर भारत मोहम्मदी राज्य तो था ही। बौ से बौद्ध भी आ जाएगे, जिससे एसिआ का परम धनी देश जापान प्रसन्न होगा। करोडों डॉलर और करोड़ों येन की मदद बढ़ जाएगी—बुद्धिजीवियो की यात्रा-सुविधाएं व्यापक होंगी और उनका जीवन-स्तर सुधरेगा !"

हव्वा काज़मी प्रौढ़ावस्था भूलकर तालियॉ बजाती उचक पड़ीं, नाच पडी।

पुलकराज आमंद ने शंका प्रकट की, "इसमें जैन और पारसी नहीं आए, यहूदी भी।"

हव्वा काज़मी चिल्लाई, "डॉउन विद ज़िओनिज़म ! इस्राइल मुर्दाबाद ! बी सेक्युलर !"

तुरकान अदीब, "यहूदी छोड़ना पडेगा, नहीं तो अरब देश नाराज़ हो जाएगे और मुल्क की सेल्युलर कॉम्युनिटी का दिल टूट जाएगा !"

कामवर बोले, "'मुहिंजैपाईसि' नाम शत-प्रतिशत धर्मनिरपेक्ष..."

"यह नाम सिख की इंसल्ट करता है जो बहादुर कोम के, शेरां दी औलाद है—लासानी कौम की इंसल्ट सहन नहीं की जा सकती ! सिख सबमें पीछे। कभी नही—

बोले सो निहाल
सत्त श्री अकाल।"

नामी भूतपूर्व कहानीकार और वर्तमान अकाली नेता बादशाह सिंह ने सिंहनाद किया। जोरदार माइक के बेहद पास से की कई सिंहगर्जना पाँच सैकंड गूँजती रही। हडकप-सा मच गया। लगा, दिल्ली पर अमृतसर चढ़ बैठा हे।

खीसभ काहनी ने कहा, "यार, क्यो इतने अच्छे नाम में मीन-मेख निकालत हो—हि की जगह मु का विरोध नही किया गया.."

"तुम सांपरदायिक हो—'सिमुहिंजैबौपाई' नाम होगा।"

"ईसाई दुनिया में सबसे ज्यादा है, सबसे धनी हैं, सबसे ताकतवर हैं। ईसाई देशों से करोडों डॉलर, लाखों स्टलिंग, लाखों मार्क, लाखों फ्रांक, लाखो लीरा की मदद मिलती है—लगभग दो सौ करोड़ डॉलर तो पवित्र ईसाई मिशनरियो को ही मिलते हैं और भारतरत्न मदर टेरेसा को नोबेल पीस-प्राइज़ प्रदान किया जा चुका है जो न किसी हिंदू को नसीब हो पाया था, न किसी मुसलमान को। ईसाइयो ने सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, राजकुमारी अमृत कौर, राजीव गांधी, सोनिया गाधी, जॉर्ज़ फ़र्नान्डीज, अरुण सिंह, ललडेंगा ऐसे महान् पुरुष उत्पन्न किए हे अगर ईसाई अंत में रहे तो मैं अपने कैथोलिक अज़ीज़ो को कौन-सा मुंह दिखाऊँगा? ईसाई पहले।" फ़ादर फेरर ने ओजस्वी भाषण दे डाला।

पुलकराज आमंद ने कहा, "तो, अंत में किसे रखा जाए ? हिदू ठीक रहेगा? मुसलमाम, ईसाई और बौद्ध उस पर शासन कर चुके हैं, जैन और पारसी धनी हे, सिख बलवान हैं। हिदू को अंत में रखना ठीक होगा। मै तो हिंदू हूँ नहीं—धरम मानता नही, अंग्रेज़ी और कॉम्युनिज़म ने भारतीयता में रुचि मिटा दी हे। लेकिन हिदू हकीकतपसंद लोग हैं : अंत में रखा जाना पसंद करेगे। 'ईसिमुबौजैपाहिं' नाम प्रोग्रेसिव भी है, सेक्युलर भी—इससे दुनिया में मुल्क का नाम रोशन होगा।

कई स्वर, "यह नाम न बोलने में सरल है, न सुनने में सुखद।"

ठीक इसी क्षण आयोजक ने सूचना दी, "चलिए, मुर्ग़-मुसल्लम, तंदूरी मुर्गे, चिकन, पुलाव, हॉट-डॉग, सैलड वगैरह तैयार हैं—इम्पोर्टेड शैम्पेन का इन्तजाम भी है।"

सबने स्वीकार किया : इस विषय पर अंतिम निर्णय स्थगित किया जाता

है—आप लोग टा० ए०-डी० ए० बिल तयार कर. .

"पहले ईटिंग-ड्रिंकिंग तो हो जाए..."

पुलकराज आमंद ने औपचारिक घोषणा की, "मुल्क के नए सेक्युलर नाम की ग्रेट कॉन्फेरेन्स ज़ल्द ही होगी जिसमें डिसीज़न लिया जाएगा—आज हम सबने आधा रास्ता तय कर ही लिया है. ."

"याद रहे, अब कोई कागज़ या पोस्टर या दावतनामा ऐसा न हो जिसमें 'भारत' या 'भारतीयता' जैसे दकियानूसी और फिरकापरस्त अल्फ़ाज लिखे हों।" हब्बा काज़मी ने बताया।

कामवर उन्हें एकटक निहारते हुए मंत्रमुग्ध स्वरों में बोले, "ऐसी ग़लती कभी न होगी।"

एक आवाज़ आई : "तो, यह सड़मेलन समाप्त हुआ ?"

मुलकराज आमंद, "एस ! एस !"

पुनः वही आवाज़ आई : "ऐस ! ऐस !"

18. मच्छर-सभा : अध्यक्षीय भाषण

साथी प्रतिनिधिगण,

अनेक अधिवेशनों की महानगरी दिल्ली में आप सबका स्वागत करते हुए मुझे बहुत हर्ष हो रहा है। पाँच हज़ार साल पहले इंद्रप्रस्थ-सम्राट् युधिष्ठिर, दो हजार साल पहले राजा दिल्लू, सोलह सौ साल पहले विष्णु पद पर्वत पर विष्णु-ध्वज या अष्टधातु-स्तभ या लौह-स्तंभ स्थापना-संदर्भ में चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, आठ सौ साल पहले राजा अनंगपाल और पृथ्वीराज ने इसी महानगरी मे प्रभावी आयोजन किए थे, महान् भाषण दिए थे। इसके बाद मोहम्मद गोरी, गुलामों, खिल्जियों, तुगलकों, सैयदों, पठानो, मुगलों और अंग्रेजों ने यहाँ अनेक सम्मेलन किए। स्वतत्र होने के बाद तो यहाँ सम्मेलनो का ताँता ही लग गया, क्योंकि इनसे नेताओं, विशेषत प्रधानमंत्रियों की छवि सुधरती थी और वे विश्वनेता बनकर विश्व में शांति स्थापित करके भारत को महान् राष्ट्र बनाने मे कितने कृतकार्य हुए, यह तो सबको ज्ञात ही है—क्या हुआ यदि भारत में प्राय: सर्वत्र अशांति है, हमने विश्व में तो शांति स्थापित कर ही दी है।

सबसे पहले मैं भारत सरकार, विशेषतः उसके स्वास्थ्य विभाग, को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिसकी कृपा से ही हमारा अस्तित्व विद्यमान रह सका अन्यथा विश्व स्वास्थ्य संगठन ने तो हमें विकसित देशों के ही समान यहाँ भी समाप्त ही कर डाला था—प्रणाम है निष्ठावान मलेरिआ विभाग, विशेषत. मलेरिआ-इंस्पेक्टरों को, जिनके अपार अनुग्रह के बिना हम बच ही नहीं सकते थे। उन्होंने भारत की महान् अहिंसा-परपरा की रक्षा की है जिसके लिए उनकी जितनी प्रशसा की जाए, कम है—आखिर, अशोक एवं हर्ष के समय हममें से किसी एक वीर को ही नहीं अपितु वीर मक्खी से कायर खटमल तक को मारने पर मृत्युदंड तक दिया जा सकता था या नहीं ?

हर्षध्वनि : "दिया जा सकता था ! दिया जा सकता था !"

हर्ष है कि राष्ट्र ने प्रात: स्मरणीय पूज्य गांधी एव सायं स्मरणीय हिज एक्सेल्लेन्सी नेहरू की अहिंसात्मक परपरा को छाती से लगाए रखा है और इसके लिए पुष्यमित्र शुंग, विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, भोज

इत्यादि की उपेक्षा आवश्यक प्रतीत की—संभवतः इसीलिए हम भी बच पाए। जब संसार के आधे अंधे और कोढ़ी भारत में हैं, तब कुछ अधिक तपेदिकग्रस्तो और मलेरिआ-ग्रस्तों से संकोच कैसा ? आखिर, अहिंसा दानमान से ही फलती-फूलती है।

हर्षध्वनि : "गांधी ज़िन्दाबाद। नेहरू जिन्दाबाद।"

हमारे बचने का एक कारण राजनैतिक भी है—पडोसी चीन ने हमें और हमारी बहादुर सहयोगी मक्खियो को नेस्तनाबूद कर दिया था अतः भारतीय नेताओं ने विरोधी चीन से उलटा रास्ता पकड़ा : वे 1962 ई० का युद्ध नहीं भूले। मै उन प्रतिनिधियो का विशेष स्वागत करता हूँ जो विषम परिस्थितियों में चीन या चीन के क्रांतिकारी एवं प्रगतिशील उपनिवेश तिब्बत से आए वीरों के वंशज हे। उनका यहाँ आना ही क्रातिकारी है !

हर्षध्वनि : दलाई लामा ज़िन्दाबाद !

"भारत सदैव विपत्तिग्रस्त तथा अन्य विदेशियों को छाती से लगाता रहा हे। मै प्राचीन और मध्यकालीन उदाहरणों के विस्तार में न जाकर नए उदाहरण दे रहा हूँ—तिब्बती शरणार्थी हों या पाकिस्तानी घुसपैठिए या बांग्लादेशी मरभुखे, भारत में सबको शरण प्राप्त होती है। कच्छ से मुंबई तक लाखों पाकिस्तानी घुसपैठियों को मताधिकार प्राप्त है, वे भारत के भद्र नागरिक हैं। अत्यंत गर्व का विषय है कि अब सिंध से सिंधियों एवं पठानों द्वारा मार-मार कर खदेड़े गए बिहारी मुसलमान (जो पाकिस्तान में 'मोहाजिर' या विदेशी ही माने जाते रहे) मुंबई आ रहे हैं। वे शीघ्र ही भारतीय नागरिक हो जाएंगे। पाकिस्तान के सर से बला टलेगी ! मालदा से दिल्ली तक बांग्लादेशी मरभुखों को मताधिकार प्राप्त है, वे भारत के मान्य नागरिक हैं—1990 ई० के निज़ामुद्दीन क्षेत्र के दगे मे जब ये मान्य नागरिक दो पुलिसवालों को अपनी सार्वजनिक भूमि पर बलात् बनाई झुग्गियों में खींचकर मारे डाल रहे थे तब हिंस्र पुलिस के क्रूरतापूर्वक गोली चलाने से दो मर गए, जिनके संबंधियों को पचास-पचास हज़ार रुपये के चेक देने स्वयं भूतपूर्व गृहमंत्री मुफ़्ती मोहम्मद सईद वहाँ पहुँचे थे; और दो में एक लडका था जिसका कोई नाम न था तो उसकी पालक माता को ढूँढकर उसे भी सादर चेक थमाया था।

"धन्य है ! धन्य है।"

जो लोग इतने प्रगतिशील एव धर्मनिरपेक्ष महापुरुष को मुफ्त में गृहमत्री बनने वाला और मुसलमानों को मुफ़्त के रुपये बाँटनेवाला कहते हैं, उन्हे धिक्कार है।

"धिक्कार है ! धिक्कार है !"

विदेशियों को भारत में भारतीयों से अधिक सम्मान दिया जाता है—भारतरत्न मदर टेरेसा एवं भारतरत्न अब्दुल गफ्फार ख़ान के सरकारी तथा पाकिस्तान से वापस लौटते ही साहित्य अकादमी का पुरस्कार का सरकारी और कालांतर मे ज्ञानपीठ पुरस्कार का ग़ैर-सरकारी सम्मान प्राप्त करने वाली सुश्री कुर्रतुल-ऐन-हैदर के उदाहरण सामने हैं। इससे धर्म-निरपेक्ष एवं समाजवादी उन प्रधान मंत्री के गुरु परम धर्मनिरपेक्ष एवं समाजवादी जामा मस्जिद के इमाम सैयद अब्दुल्ला बुखारी को संतोष प्राप्त हुआ होगा। हमें भी बहुत संतोष है।

"धन्य है। धन्य है!"

भारत को गर्व है कि उसमे रहने वाले दो विदेशी मदर टेरेसा और दलाई लामा को नोबेल पीस प्राइज़ मिला है, यह गर्व तब दसगुना हो जाता है जब इस तथ्य पर ध्यान जाता है कि किसी मूल भारतीय को, गांधी या नेहरू तक को, यह महान् पुरस्कार नसीब नहीं हुआ; और, यह गर्व तब सौगुना हो जाता है जब इस तथ्य की ओर ध्यान जाता है कि दोनों पुरस्कार-प्राप्तकर्ता क्रमश ईसाई और बौद्ध हैं और क्रमश: अपने मजहब और धर्म के कट्टर सेवक भी, जाने-माने नेता भी—अल्पसंख्यक समुदायों के हैं। बहुसंख्यक सदैव दोषी होते है। अल्पसंख्यक सदैव निर्दोष होते हैं। किंतु यह बात कश्मीर घाटी, पंजाब, नागालैण्ड, मिज़ोरम इत्यादि राज्यों तथा पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका इत्यादि देशों के अल्पसंख्यकों पर लागू नहीं होती, जैसाकि भारत सरकार का व्यवहार सिद्ध करता है—भारत सरकार महान् है। उसकी महानता में तब चार चाँद लग जाते हैं जब वह दक्षिण अफ़्रीका में बहुमत सरकार के लिए जूझती है, विश्वमानव विश्वनाथ प्रताप सिंह ने नेल्सन मंडेला जैसे साधन-संपन्न व्यक्ति को प्रधानमंत्री पद से चलते-चलते भी पचास लाख डॉलर (ग्रीन गोल्ड) देकर भारत को विश्वपूज्य बनाया था। हमारा राष्ट्र नंगा-भूखा होकर भी दान देता है, क़र्ज़ लेकर खैरात करता है, किंतु फिजी में बहुमत पर अत्याचार होने पर हमारी महान् सरकार ऊपरी चीं-चपड करके खलास हो जाती है : अपनों के प्रति मोह दुर्बलता है।

देर तक हर्षध्वनि : "धन्य है। धन्य है!"

साथियो, मच्छर जाति का इतिहास सदैव गौरवशाली रहा है। प्राचीन काल के गोधूम शब्द पर ध्यान दीजिए। यह अन्नों का राजा गेहूँ है। हमारे कारण तब अपने आप खड़े गेहूँ के दूर तक फैले खेतों से काट-काट कर लॉक के गट्ठर-के-गट्ठर जलाकर धुआँ किया जाता था जिससे गोधन की रक्षा की जा सके। हाथी तक हमारी मार से घबराता है। शेर तक हमारे सामने पूँछ हिलाता है। संस्कृत मे "प्राक् पादयो पदति, खादति पृष्ठमांसम्" जैसे कितने ही श्लोक हमें कविता का आलंबन बनाते हैं। हिंदी में तुलसीदास ने "मसक समान रूप

कपि धरी'' लिखकर हमारा सम्मान बढ़ाया है तथा ''मसक दंस बीते हिम त्रासा'' लिखकर हमारी जाति के आतंक का गौरवशाली संकेत किया है। मंड क्षेत्र में रहने वाले उन आतंकवादियों, जिनसे मरहूम न्यायमूर्ति आनंदनारायण मुल्ला के शब्दों में सर्वोपरि अपराधी-जाति, अपराधियों में अपराधी मानी जाने वाली खूँखार भारतीय पुलिस तक थर-थर काँपती है, को भी आतंकित करने वाले वीर कोन हे ? हम और केवल हम ! प्रमाण ? उनके पास भी 'ओडोमॉस' के ट्यूब रहते हे। प्राचीनतम काल से हमारा अतीत शानदार रहा है। केवल भारत में हम प्रति वर्ष दस लाख इंसानों की जाने लेते थे। हमारा अतीत गौरवशाली था, वर्तमान प्रभावी है (जो मच्छरदानियों, कछुवा-छाप' अगरबत्तियो और 'ओडोमॉस' ट्यूबो की लगातार बढ़ती बिक्री से लेकर मच्छर-मार धुएँ के बादलों और विद्युत-उपकरणों के प्रयोगों तक से निर्विवाद हैं), भविष्य भी आशाजनक, जैसाकि रामप्रसाद मिश्र की इस कविता से स्पष्ट है :

एक बहुत बड़े नेता एक बहुत बड़ी सभा में
एक बहुत बड़े जोश के साथ भाषण दे रहे थे :
''हमें आगे बढ़ना है, साइंस में, टेक्नोलॉजी में
और 'इंडिआ, दैट इज़, भारत' महान् को
इक्कीसवीं सदी में बड़ी शान से ले जाना...''
सहसा एक मच्छर आकर उन पर मँडराने लगा !

अगर छुपकर खून चुरानेवाले कायर खटमल पर संस्कृत में कुछ छद मिलते हे, हिंदी मे अली मुहिब खाँ 'प्रीतम' की उनसे प्रभावित 'खटमल-बाईसी' मिलती हे, बांग्ला के रवीन्द्र का आतिथेय से 'चारपाई सजीव है निर्जीव ?' का व्यंग्य मिलता है, तो हम पर हिंदी में रामप्रसाद मिश्र की कविता मिलती है, डंडा लखनवी के मुक्तक मिलते है, नदकिशोर पाडेय 'अशांत' का 'मशकस्तोत्र' शीर्षक प्रशंस गीत मिलता है जिसकी बानगी देखिए :

हे मशकदेव, तुमको प्रणाम !
हे अनियंत्रित, हे बेलगाम !
आकाश-सदृश सर्वत्र व्याप्त।
तुम कहाँ नहीं हो कहो प्राप्त ?
हर जगह बजाते आप बीन...

किंतु इस दिशा मे सर्वोपरि महत्त्व है आ० विद्यासागर के महाकाव्य 'मूक माटी' में मच्छर का सेठ को उपदेश !

हिंदी के आचार्यो (जिनकी संख्या हमारी संख्या से टक्कर लेने की कसम खाए 'बैठी' हैं) से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे 'हिंदी साहित्य मे मशक' विषय

पर लघुशोध तो करा ही डालें—बाकी आगे अथात् इक्कीसवा सदी में देखा जाएगा।

तुमुल हर्षध्वनि।

यदि मैं आपको बताऊँ कि बाग्ला मे श्रीमच्छरचंद्र नामक एक महान् जपन्यासकार हुए हैं तो आप आश्चर्य करेंगे। 'श्री' शब्द ऋग्वेद मे प्राप्त है, ब्रह्मशक्ति का प्रतीक है, बौद्ध-देश श्रीलंका की शोभा बढाता है, सिख-नमन 'सतश्रीअकाल' में गौरव पाता है, सार्वभौम सम्मान का सूचक है—हमारे लिए उसका प्रयोग किया जाना निस्सन्देह गौरवास्पद है। किन्तु यह सत्य है। एक बार एक डाकिया बार-बार सर खुजलाते हुए लोगों से पूछ रहा था कि 'मच्छर बाबू कहाँ रहते हैं ?' और लोग उसे घूर-घूर कर हँस रहे थे कि ठर्रा तो नही चढा आया—बंगालियों में ऐसा नाम होता ही कहाँ है ! बात तब की है जब भारत परतन्त्र था। स्वतन्त्र भारत में सर्वहारा वर्ग का एक रत्न डाकिया होता तो वह पत्र फाडकर नाली मे फेंकता और छुट्टी पाता, क्योंकि यह युग डाक का डाका भी डालता है, पत्र-पत्रिकाओं का व्यापार करता है, नारी हस्तलेख के पत्र पहचानकर उनका पढरस (बतरस के आगे का रसविकास) प्राप्त करता है ओर वह भी फोकट-फंड मे, और ऐसे में एक पत्र फाड फेंकना तो कुछ भी नहीं है। खैर, इसी उधेडबुन के बीच महान् उपन्यासकार ने पूछा, "मेरा भी कोई पत्र है ?" उत्तर मिला, 'नही, पर यह मच्छर बाबू कौन है ?' महान् उपन्यासकार चौंके, 'क्या ? यह नाम और वह भी बंगालियों मे जिनके नामों की धाक सार प्रांतों मे है—लंका और नेपाल तक है। फिर वही उत्तर मिला, 'हॉ, मच्छर बाबू !' महान् उपन्यासकार ने पत्र देखा और लेकर चलते बने। डाकिए ने आँखे फाडकर पूछा, 'तो आप ही मच्छर बाबू है ?' महान् उपन्यासकार ने चलते-चलते कहा, 'हाँ।' यह महान् उपन्यासकार शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय थे। बात यह थी कि उनके संस्कृतज्ञ मामाजी ने 'श्रीमत्' विशेषण लगाते हुए शुद्ध श्रीमच्छरचन्द्र चट्टोपाध्याय लिख दिया था जिसे मूढ डाकिया क्या समझता ! वह दिवस हमारी जाति का एक गौरव-दिवस था।

तुमुल हर्षध्वनि।

मित्रो, अब मैं आपको विश्वभाषा, प्रातःस्मरणीय रवीन्द्रनाथ टैगोर की सायस्मरणीय 'सर' की पदवी का आज भी महत्त्व है जैसाकि अंतर्राष्ट्रीय नौवहन सगठन या इंटरनेशनल मेरिटाइम ऑर्गनाइजेशन के भूतपूर्व महामंत्री सी० पी० श्रीवास्तव को 1990 ई० में इसके प्रदान किए जाने से स्पष्ट है, ओर मध्याह्न-स्मरणीय मिस्टर जवाहरलाल नेहरू तथा रात्रिस्मरणीय (शांति से शब्दकोष-देख-देखकर पढने योग्य) सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् इत्यादि की

ख्यातिदायिनी महाभाषा (क्षमा करें, यहाँ 'महा' का प्रयोग महापात्र या महापंडित या महारात्रि जैसा न होकर महाकवि, महामति, महामना जैसा है), जिसके समक्ष भारतीय सदैव नत रहे है, अंग्रेजी में अपनी महान् मच्छर जाति के स्थान का एक अमर उदाहरण देता हूँ : महान् आधुनिक निबंधकार ए० जी० गार्डिनर (उपनाम 'अल्फा ऑफ़ प्लाऊ') जिनकी शैली का अनुकरण डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी एवं उनके अनुकरणकर्ता ललितनिबंधकारो ने किया है, के 'फेलो ट्रैवेलर' (अर्द्धसाम्यवादी या छद्मसाम्यवादी बंधु या कॉमरेड क्षमा करें) का नायक कौन है ? एक मच्छर ! सारा निबंध पढ़ जाइए, पता नही चलेगा कि ट्रेन मे लेखक का सहयोगी कौन है—अंत में पता चलेगा कि यह एक मच्छर है !!

हर्षध्वनि : "धन्य है। धन्य है।"

मूर्ख है जो दुर्बल व्यक्ति का परिहास मच्छर कह कर करते है, क्योंकि हम ललकार कर आक्रमण करते है, कोई कितना ही ओढ़े-ढँके हमें छोटे से छोटा खुला शरीर भाग भी लाल दीखता है क्योंकि प्रकृति ने हमें ऐसी असाधारण आँखें दी हैं, कई बार रक्तपान करते-करते बलिदान तक कर देते हैं।"

हर्षध्वनि !

हमारा जीवन-दर्शन समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता एवं लोकतंत्र पर आधृत है। हम अपने आक्रमण एवं रक्तपान में कॉंग्रेसी और समाजवादी इतिहासकारों के पूज्य तथा जनता दल और जनता (एस) के परम पूज्य मोहम्मद ग़ोरी, बुख़्तियार खिल्ज़ी, इल्तुत्मिश, फ़ीरोज़ तुग़लक़, तैमूर लंग, सिकंदर लोदी, बाबर, औरंगजेब, हैदरअली और टीपू सुल्तान जैसे समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतंत्रवादी इतिहास-पुरुषों से भी बीस ठहर जाते हैं, क्योंकि न औरत देखते हैं न मर्द, न गरीब न अमीर, न सुन्दर न असुन्दर, न उच्च न निम्न, न हिन्दू, न मुसलमान न सिख, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध, न पारसी, न यहूदी। हमारी धर्मनिरपेक्षता नेताओं की धर्मनिरपेक्षता से बढ़-चढ़ कर है क्योंकि उसमें किसी को एक विवाहबद्ध रहने तो किसी को दो-तीन-चार तक की सुविधा देने, किसी को तलाक़ मे दाँतो लोहे के चने चबवाने तो किसी को 'तलाक़-तलाक़-तलाक़' कहते ही बीवी बदलने, किसी से परिवार-नियोजन मनवाने, तो किसी को पूरी छूट देने का चुनावी ढुलमुल पन नहीं है। हमारा राज्य सच्ची धर्मनिरपेक्षता पर आरूढ है। अमेरिका इत्यादि तक कालों से समभाव नहीं रखते, रूस इत्यादि तक यहूदियों को भगाते हैं। हमारे राज्य में कोई भेदभाव नहीं। हमारा लोकतंत्र आजीविका का अधिकार सबको प्रदान करता है—किसी पर कोई प्रतिबंध नहीं। हम वीसा या पासपोर्ट या निष्कासन इत्यादि के कालातीत एवं अलोकतांत्रिक बंधनो मे विश्वास नहीं रखते। देश की बसों, रेलों से लेकर संसार भर में उड़नेवाले विमानों

तथा सारे सागर थहानेवाले पोतों तक में हमारे समाज के किसी भी सदस्य को इच्छानुकूल यात्रा का अधिकार प्राप्त है। ह्यूमन राइटस् एसोसिएशन तथा अमनेस्टी इंटरनेशनल को हमारी प्रशंसा करनी चाहिए—काश, ऐसी संस्थाएं तो राजनैतिक खेल न खेलतीं—पर हाय रे चाँदी के जूते और सोने की चप्पल ! काश, मनुष्य हमारी ऊँचाई तक पहुँचने योग्य बन पाता !

"धन्य है ! धन्य है !!"

अब मैं समाजवादी, लोकतन्त्रवादी एवं धर्मनिरपेक्ष उन महानेताओ के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि उन्होंने पूरी राजपूती आन-बान-शान से झुग्गीवासियो को कहीं भी—बस, नेताओं की नंदन-नगरियों को छोड़कर—बस जाने और डट जाने का जन्मसिद्ध अधिकार वैध ठहरा दिया है, जिसका भरपूर लाभ बांग्लादेशी मुसलमान भाई एव पाकिस्तानी जासूस भाई तक बखूबी उठा रहे है। दिल्ली मे ही 1990 ई० के छह महीनो मात्र में लगभग एक लाख नई झुग्गियाँ पड गई होंगी। अन्यत्र भी ऐसा ही हो रहा है। वस्तुत. यह हमारे 'वसुधैव कुटुम्बकम्'-एवं 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के मंत्रों के सर्वथा अनुकूल है। पाकिस्तान के अधगोरे सिंधी और पठान, 'मिल्लत' के इत्तेहाद को बालाए-ताक करते, काले बिहारी मोमिनों को भारत भेजने का जो नारा लगा रहे हैं, वह हमारे महानेताओ के कानों में नहीं पड़ा—आश्चर्य है ! बहरमाल, झुग्गीवाद के कारण हमें केवल झुग्गीवालों की नहीं बल्कि उनके पड़ोस के आलीशान इमारतों में रहने वालो के अर्थात् हर प्रकार के रक्त का भरपूर आस्वाद प्राप्त हो रहा है—बस, नेताओ के रक्त का आस्वाद नहीं प्राप्त हो पाता क्योंकि वे सर्वतः सुरक्षित दुर्गों में रहते है : युग आतंकवाद का है न ! झुग्गीवालो के खून में विटामिन डी (डस्ट = धूल) ज़्यादा पाया गया है ! कोठीवालों के खून में विटामिन सी (कंफर्ट = आराम) ज्यादा पाया गया है। सुना है, नेताओं के खून में विटामिन ए (एअर = हवा) ज्यादा पाया जाता है (क्योंकि वे हवा में उड़ते हैं, हवा मे सोचते हैं, हवा मे किले बनाते हैं)—काश, हमें उनके खून का कुछ स्वाद मिल पाता ! वह खून जो सब खूनों को पीकर बना है ! वैसे, कभी-कभी यात्रा-संदर्भो में स्वाद मिल ही जाता हे किन्तु वह दैनिक भोजन का अंग नही है। कई मच्छर भाइयों का कहना है कि नेताओं के खून से शोषण, प्रपीड़न, साम्प्रदायिकता एवं देशद्रोह की बदबू आती है और वह घिनौना होता है। बात सच हो सकती है। किन्तु हमें अपने समता-सिद्धांत का ध्यान भी रखना है।

धन्य हैं वे महानेता जिनके चुनावों में करोड़ों रुपए के व्यय (अपव्यय नहीं क्योंकि देश का धन देश में ही रहा अर्थात् स्विस बैंकों में नहीं गया) के बावजूद मूल्यों पर आधृत राजनीति (वैल्यू-बेस्ड पॉलिटिक्स) अप्रतिहत रही ! लगभग

अस्सी माफिआ सरदार मुख्य मत्री, मंत्री, सांसद, विधायक, पार्षद इत्यादि बनकर हृदयपरिवर्तनवादी बुद्ध, महावीर, सुकरात, ईसा और गांधी की अमर आत्माओ को अपार शांति प्रदान कर चुके हैं--ध्यान रहे, वाल्मीकि, अंगुलिमाल, फ्रांसिस ड्रेक, नादिरशाह इत्यादि महापुरुष डाकू थे। धन्य है भारत जिसकी मूल्यों से सराबोर और निष्ठा से ऊभचूभ राजनीति मानव को उदात्त बना रही है !

"धन्य है ! धन्य है !"

हम मच्छर समुदाय के लोग भी बहादुरी की कमाई खाते हैं, जान पर खेल कर ही पेट भर पाते हैं, युद्ध-प्रक्रिया मे मरते भी रहते हैं; अतः आतंकवादियों पर कृपालु नेतागण हम पर विशेष कृपा करेंगे, यह निश्चित है। साहसी मानवों का सम्मान राष्ट्र का परम धर्म है। डाकू मानसिह के गॉव में उनकी तथा उनकी धर्मपत्नी की मूर्ति-प्रतिष्ठा पर सबको गर्व होना चाहिए। हमें विश्वास है कि स्लम लगातार बढ़ेंगे, पूज्य नेतागण नगरो को ग्राम बनाकर ही दम लेंगे, जिससे हमारे सर्वहारा वर्ग को भरपूर भोजन मिल सके, आवास मिल सके—वस्त्र हम चाहते नहीं (इसीलिए, दिगम्बर जैन भाई हमें मारने मे हिचकिचाते हैं और चूँकि जैन-धर्म में आत्मा का आकार प्राणी के आकार के अनुसार बडा या छोटा होता है, हमारी बहुत छोटी आत्मा पर रहम करते हैं)।

तुमुल हर्षध्वनि !

अत में मैं कीटनाशक-निर्माताओं को धन्यवाद देता हूँ क्योंकि उन्होने भारी मिलावट करके हमारी रक्षा भी की है, संख्यावृद्धि भी की है तथा हमें भरपूर भोजन प्राप्त करने में सहायता दी है। मुझे विश्वास है कि वे इस पुनीत कार्य को अधिकाधिक विकसित करेंगे क्योंकि वस्तुत भिन्न होने पर भी तत्त्वतः वे और हम एक हैं।

भारी करतल-ध्वनि के साथ सभा का समापन।

19. अंग्रेज़ी-भक्तों का कवि-सम्मेलन

वेसे भारत में दिल्ली सम्मेलन-नगरी के रूप मे अभिहित और ख्यात है क्योंकि नेता-नगरी में नेता-अहं के उद्गार-सम्मेलन होने नितांत मनोवैज्ञानिक हैं, किंतु यह विशेष कविसम्मेलन परम-अंग्रेज़ी-भक्तिमयी नगरी मद्रास (अब चेन्नई) मे हो रहा था। इंग्लिश-डिवोशन हॉल खचाखच भरा था। तमिलनाडु, पश्चिम बगाल, कश्मीर-घाटी और पजाब से अनेक कवि पधारे थे। एंग्लो-इंडिअन एसोसिएशन, नागालैंड इंग्लिश-वर्शिपिंग लीग, मिज़ोरम, इंग्लिश डिफेंस ब्यूरो, मेघालय वर्ल्ड-लैंग्वेज़ फैंस सेंटर ने एक-एक प्रतिनिधि भेजा था। एक फस्सड़ हिंदी-कवि भी पकड़ लाए गए थे। ब्रिटिश हाई कमिश्नर उद्घाटन करने वाले थे। आर्य-द्रविड सग्राम-परिषद् एवं हिंदी-हत्या अभियान के सस्थापक थिरू मुत्तूस्वामी अध्यक्ष पद पर सुशोभित थे। डॉ० मेघनाद चाटुर्ज्या मंच-संचालक थे। दोस्तो से बता रह थे "मुझे गर्व है कि मेरा नाम पूज्य स्वर्गीय डॉ० मेघनाद साहा से मिलता-जुलता है—दरअसल, नाम तो शत-प्रतिशत वही है—जिन्होने शक-सवत् की आधुनिक प्रशासन-प्रतिष्ठा की थी ! मुझे यह भी गर्व है कि मैं चाटुर्ज्या हूँ ओर स्व० डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या रामकथा को मिस्र से उधार ली गई मानते थे। दोनों परम हिंदी-विरोधी थे।" लोग उन्हें श्रद्धा से देख रहे थे क्योंकि स्वय नाम दो-दो महानताओं से संपन्न था ! सारी कार्यवाही विश्वभाषा अंग्रेजी में थी। मैं भाषाओं एवं कविताओं का यथावत् अनुवाद प्रस्तुत कर रहा हूँ।

उद्घाटनकर्ता सर हेनरी वुल्फ़ के आते ही कार्यक्रम आरम्भ हो गया। उनके सास्कृतिक सचिव मिस्टर जॉन हंटर सहायतार्थ साथ थे। सर्वप्रथम "गॉड सेव द क्वीन" का संगीत हुआ। सभी लोग श्रद्धापूर्वक खड़े हो गए। समापन पर सर झुकाया और बैठ गए। तब डॉ० चाटुर्ज्या माइक पर आए :

"महामहिम सर हेनरी वुल्फ़,
आदरणीय थिरू मुत्तूस्वामी,
महिलाओ एवं सज्जनो !

अजेय अर्माडा की विजय से बीसवीं सदी के प्रायः पूर्वार्द्ध तक विश्व की प्रमुख महाशक्ति ग्रेट ब्रिटेन और उसके बाद की महाशक्ति तथा कॉम्युनिज़्म

की स्वाभाविक मृत्यु के बाद आज विश्व की एकमात्र महाशक्ति सयुक्त राज्य अमेरिका, एक परम विकसित देश कैनेडा के सत्तर प्रतिशत लोगों, अन्य विकसित देशद्वय ऑस्ट्रेलिआ और न्यूजीलैंड की भाषा तथा ग्रेट ब्रिटेन के सूर्यास्तरहित पूर्व-साम्राज्य के दर्जनो देशों के सभ्य-शिक्षित लोगों की प्रियतर भाषा, विश्व इतिहास की व्यापकतम और महानतम भाषा अंग्रेज़ी के भक्तों के इस सम्मेलन का उद्देश्य 'इडिआ, दैट इज, भारत' को प्रतिक्रियावादी, अशिक्षित, पिछड़े हिंडीफैनेटिक्स से बचाते हुए उन्नति, शिक्षा एवं गौरव के पथ पर लगाना है ."

भारी हर्षध्वनि।

"हिंडी भइयों, कुलियों, पल्लेदारों, मवालियो और छोटे-मोटे बनियों, नेताओं वगैरह की एक बेहद पिछड़ी भाषा है। अंग्रेज़ी के सरल और सुन्दर शब्दों के स्थान पर हिंडी के कठिन और भोंड़े शब्दों का ठूंसा जाना हमें बर्दाश्त नहीं--इससे देश टुकडे-टुकड़े हो जाएगा ! ऑल इडिआ रेडिओ की जगह आकाशवाणी, टेलीविजन की जगह दूरदर्शन, ट्रान्सपोर्ट की जगह परिवहन, कॉम्युनिकेशन की जगह संचार, पार्लमेंट की जगह संसद, कॉन्स्टिट्यूशन की जगह संविधान, प्राइम मिनिस्टर की जगह प्रधानमत्री, कॉन्स्ट्रक्शन की जगह निर्माण, डिमांस्ट्रेशन की जगह प्रदर्शन जैसे कठिन और भोंडे प्रयोग हिंदी-इम्पीरिआलिज़्म के प्रतीक हे। अंग्रेजी महानतम भाषा है। खुद गॉड अंग्रेजी बोलता है, जैसाकि जॉर्ज बर्नार्ड शॉ के 'सेंट जॉन' नाटक से प्रमाणित है—जोन ऑफ आर्क को मृत्युदंड ठीक ही दिया गया कि उसने गॉड को फ्रेंच बोलते बताया था, जो गलत था।"

आकाशवेधी करतलध्वनि !

मुझे अपार हर्ष है कि ग्रेट ब्रिटेन के कारण भारत का उद्धार हुआ, मध्यकालीन अज्ञान एव धर्मान्धता से निकलकर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं उन्नति का प्रकाश प्राप्त हुआ, सैकडो देशों के गड्डमगड्ड को राष्ट्र का रूप प्राप्त हुआ, जिसकी भाषा के कारण सर रवीन्द्र नाथ टैगोर एवं चन्द्रशेखर वेंकट रमन को नोबेल प्राइज़ मिले, श्री ऑरोबिंदो एवं सर ऐस० रेडहाकृश्नन् को विश्व-ख्याति मिली, गेंड्ही एव नेरू विश्वनेता बन सके, उसी के महामहिम उच्चायुक्त इस ऐतिहासिक सम्मेलन का उद्‌घाटन करने जा रहे है .."

हर्षध्वनि।

"मैं आप और उनके बीच व्यवधान नहीं बनना चाहता तथा कार्यक्रम के अनुसार उनसे उद्‌घाटन की प्रार्थना करता हूँ !" उन्होंने सर वुल्फ़ के सामने बेहद झुककर प्रणाम किया। सर वुल्फ़ ने सर को एक हल्का-सा झटका देकर प्रणाम का उत्तर दिया, थोड़ा-सा मुस्कराए, टाई सम्हाली और माइक के सामने

आकर खडे हो गए। सभी ने खड़े होकर सम्मान व्यक्त किया और तालियाँ बजाई। सर वुल्फ ने औपचारिकता के अनतर कहा :

"हमको बहुत सतोष है कि 'इडिआ, दैट इज, भारत' में 1947 ई० के मुक़ाबले अंग्रेज़ी जाननेवालो की संख्या सात गुनी अधिक है। इंडिआ तो हमेशा से बाहर से आए लोगों का स्वर्ग रहा है। आर्य, ईरानी, यूनानी, शक, सिथिअन, पह्लव, हूण, अरब, मगोल, तुर्क, पठान, मुगल, शान, पुर्तगाली, डच, फ्रेंच, अग्रेज ओर अब तिब्बती, बांग्लादेशी, पाकिस्तानी इत्यादि विदेशी सदैव सुखी रहे। यहाँ के लोग आपस में इतने विदेशी हैं, अलग-थलग हैं, कि किसी अन्य विदेशी के आने को कोई खास घटना नहीं समझते। मुझे खुशी है कि इधर तिब्बती, बाग्लादेशी और पाकिस्तानी इत्यादि जो इंडिअस बने हैं वे भी बढ़-चढ कर अंग्रेजी सीख रहे हैं। विदेशियों से ही इंडिआ की शान का यह आलम है कि मदर टेरेसा ओर दलाई लामा दोनो को वह महान् नोबेल प्राइज़ मिले जो गैड्ही और नेरू तक को नसीब नहीं हुआ !"

तुमुल कोलाहल। भारी हर्षध्वनि। सर वुल्फ़ हर्षविभोर हो गए।

"जब हर मेजेस्टी क्वीन एलिजाबेथ सैकेड इडिआ आया तब इसी न्यू डेल्ही मे नेरू ने विनम्रतापूर्वक कहा था कि तेरह साल मे अंग्रेज़ी जाननेवालों की संख्या दूनी हो गई है—हम ब्रिटिश लोग तेरह की संख्या अशुभ मानते है पर इस सदर्भ में वह शुभ हो गई।"

हर्षध्वनि।

"हर मेजेस्टी नेरू की इस बात से बहुत खुश हुई थीं। नेरू ने 'ऑटोबायोग्राफी' और 'डिस्कवरी ऑफ इंडिआ' मे लिखा है कि वह ब्रिटेन से पढ़ लिख कर एक विदेशी जैसे इंडिआ लौटे—तभी तो वे विदेशिओं को बेहद प्यार करते थे ! इंडिआ खो गया था, नेरू ने उसको खोजा और अंग्रेज़ी मे खोजा, अगर कोई इंडिआ को समझना, देखना, हृदयगम करना चाहता है तो अंग्रेजी अपरिहार्य है। इडिआ में अंग्रेज़ी ब्रिटेन से भी ज़्यादा ज़रूरी चीज़ है। नेरू एक पैगम्बर था जिसको भविष्य का पता था। तभी तो एच. वी. कैमेठ[1] के 'भारत, देट इज, इंडिआ' को अस्वीकार कर उसने 'इंडिआ, दैट इज, भारत' को ही सविधान में स्थान दिलाया ! हम प्रसन्न हैं कि आज भारत का पढ़ा-लिखा व्यक्ति भारत नहीं बोलता—इंडिआ ही बोलता है। संविधान की दृष्टि से भी पश्चिम पहले, देश बाद में ! अतः पश्चिम की भाषा-रानी अंग्रेज़ी पहले, हिंदी और दूसरी भाषाएं बाद में। साहिट्या एकेडेमी का सेक्रेटरी डॉक्टर इंड्रा नैठ शौड्हरी बहुत सच्ची बात कहता है : अंग्रेज़ी भारत की वैसी ही भाषा है जैसी हिंदी या टैमिल

1 हिंदी में हरि विष्णु कामठ। महान् सासद थे।

या बाग्ला या उर्दू शाडहर्री नेरू लाइन का आदमी है। नेरू-लाइन का एक ओर लेकिन बहुत ताकतवर आदमी मंत्री एर्जून सींघ है जो मानता है कि इंडिआ हमेशा वाहर के लोगों से प्रभावित हुआ। इंडिआ में नेरू-लाइन ही चलेगा, दूसरा लाइन नही !" उन्होंने समाप्त किया।

सब लोगो ने खडे होकर तब तक हर्षध्वनि-करतलध्वनि की जब तक सर वुल्फ पूर्ण संतोष एवं दीप्ति के साथ सर लॉयन बनकर अपने आसन पर न बैठ गए।

डॉ. मेघनाद चाटुर्ज्या ने माइक पर आकर सूचना दी कि अब बांग्ला को नामी कॉन्वेन्ट-एजुकेटेड युवा कवि ओजीट भोट्टाचोर्जी अपनी कविता सुनाएगे। धोती-कुर्ते के भव्य परिधान में भव्य लगते भोट्टाचोर्जी उठे और मंचस्थ लोगो को नम करके माइक पर पहुँचे। कविता थी :

जयति अंग्रेज़ी सुपावन, विश्व-व्याप्त, अनन्य,
कर्मभाषा, मर्मभाषा, नर्मभाषा धन्य !
बांग्ला-साहित्य प्रेरक, आधुनिकता-स्रोत,
हैं तुझी से सभी वाङ्मय, शास्त्र ओतप्रोत।
आज 'जन-गण-मन' विदित है राष्ट्रगीत महान्,
जॉर्ज पंचम का किया टैगोर ने यशगान।
सभी धर्मों, प्रांतों को, देश-राष्ट्र समस्त,
किया 'सिंहासन' निकट नत और सेवा-न्यस्त।
क्या हुआ अंग्रेज़ यदि तज गए भारतवर्ष,
व्याप्त अंग्रेज़ी यहाँ उनका किए उत्कर्ष।
जब तलक सोनार बांग्ला और सागर-व्योम,
ज्योति अंग्रेज़ी बिखेरेगी बनी रवि-सोम।

लोगो ने भारी करतलध्वनि की। कवि ने कवितापाठ में यथासंदर्भ 'नर्म' शब्द के 'स्वर्ग' या 'मोक्ष' या 'आनंद' अर्थ स्पष्ट किए तथा नदी नर्मदा एव गुजराती-कवि नर्मद के नामों से इसे विवेचित भी किया। यहाँ तक कि सर वुल्फ भी सर हिलाकर मुस्कराए। कवि को विश्वास हो गया कि अब ब्रिटेन-यात्रा तय है। उनके जीवन का स्वप्न चरितार्थ होने वाला है।

चाटुर्ज्या ने सूचना दी कि अब टैमिल के अग्निवर्षी कवि डोरेस्वामी पेरियारदासन् अपनी कविता सुनाएंगे। पेरियारदासन् लुगी-कमीज़ और अंगवस्त्रम् से लेस थे। दनदनाने लगे :

हिंडी बेहद पिछड़ी भाषा, शून्य-सदृश साहित्य,
देहाती हैं इसे बोलते, गौरव का राहित्य।

चले थोपने टमिलनाडु पर वे जो मूर्ख प्रसिद्ध
भैड-रैश होकर हम टूटे उन पर बनकर गिद्ध।
क्या पाएंगे पढ़कर हिंदी—सेवा ? यात्रा ? नाम ?
अंग्रेज़ी पढ़ सभी बनेंगे अपने बिगड़े काम।
अंग्रेज़ी में गाली देना भी है भारी शान,
डरकर क्लर्क दूर कर देते हैं सारे व्यवधान !
लोकसभा या राज्यसभा या न्यायालय या रेस,
क्रिकेट वगैरह सभी पुष्ट करते अंग्रेज़ी-केस।
प्यार-मोहब्बत अंग्रेज़ी पाकर होते आसान,
"आई लव यू" कहने से ही बढ़ जाती है शान !

डबल हंगामा। ताली पीटते-पीटते एक वृद्ध और एक किशोरी दो लो बेहोश ही हो गए। सर वुल्फ तक ने हँसकर ताली बजाई। मिस्टर जॉन की ऑखों में हँसते-हँसते पानी भर आया। पेरियारदासन् निहाल हो ग

चाटुर्ज्या ने पंजाबी के राजकवि सरदार सिंघाडासिंघ भटिंडवी के कवित की सूचना दी। वे सलवार-कमीज और केसरिया पगड़ी से सज्जित थे। फुट की तलवार, लट्ठ की तरह, हाथ में, क्योंकि बाँधना या लटकाना न था। दाढी एकदम आज़ाद। लंबे-चौड़े बंदे थे। आकर दहाड़े -

मर्दां दी ज़ुबान पंजाबी, हिंडी अबला-बोल,
शेख़ फरीद और गुरु नानक अमरित देते घोल।
वारिसशाह 'हीर-राँझा' का गाते प्यारा गान,
गूँजे भाई बीरसिंघ की शेक्सपीअरी तान।
भेंड़-जाति हिंडू की हिंडी हमने की बर्बाद
और किया पंजाब देश में अंग्रेज़ी आबाद।
एक बोर्ड भी हिंडी का लगवा सकता है कौन ?
हिंडी चिल्लानेवाले मौने बस हैं अब मौन !
घोर कॉम्युनल हिंडी से ही निकला पाकिस्तान,
भेंड़-भेंड़िया-युद्ध चल रहा, बनता ख़ालिस्तान।
मानवीय अधिकार रौंदते हिंडीवाले लोग
और सभी सेक्युलर रहे हैं भारी दुखड़े भोग !

इस प्रोग्रेसिव और सेल्युलर मर्दाना कविता से सभी कवि इतने प्रभावि कि उठकर सम्मान प्रदर्शित किया। हर्षित होकर 'कवी और लिखाडी' स सिंघाड़ासिंघ भटिंडवी ने भाला-छाप मूँछे ऐंठनी चालू कर दीं।

अब चाजुर्ज्या ने बताया कि उर्दू के नामी शायर शेरेइस्लाम बट्ट नज़्म सुन

ा और जिन्ना-कैप में शायर बेतरह फब रहे थे। आए :

माना कश्मीरी मीठी है, पर हिंदूपनग्रस्त,
हिंदी या डोगरी और लद्दाखी करना पस्त।
उर्दू है सेक्युलर लैंग्वेज, उसकी अपनी शान,
है शाही इतिहास और है उम्मत की भी आन !
हिंदी में क्या धरा ? गँवारों की बोली ! बकवास।
चिंदी-चिंदी इसकी करनी, साक्षी है इतिहास।
सर सैयद से मौलाना आज़ाद तलक की चोट,
झेल नहीं सकती बेचारी जब तक सॉलिड वोट !
मोती और जवाहर, सप्रू, मुल्ला उर्दू-भक्त,
कश्मीरी तो रहा सदा ही उम्मत पर अनुरक्त।
अंग्रेज़ी की सेवा करता, उर्दू का व्यवहार,
ऐसा नेता ही कर सकता भारत का उद्धार।

तालियाँ तो बजी पर 'वह बात' न आ पाई !

सूचना दी गई कि अब हिंदी के लोकप्रिय कवि 'हँस्सड़' बरेलवी आपका ...जन करेंगे। कवि जी पेंट और कुर्ते की 'समन्वित' वेशभूषा में थे, सुनाया

ठसकदार हस्ताक्षर अंग्रेज़ी के मार।
हिंदी में हस्ताक्षर तक लगते बेकार।।
कल्लू, मुल्लू, गैंडऊ, रूपचंद, राकेश।
हस्ताक्षर में एक हैं, वैसे नाना वेश।।
हिंदी लिख, हस्ताक्षर अंग्रेज़ी में ठोंक।
हिंदी में हस्ताक्षर लख पड़ते सब चौंक।।
अपढ़ सेठ, कांट्रेक्टर, संत्री, चौकीदार।
अंग्रेज़ी-हस्ताक्षर देता हर्ष अपार।।
निर्धन हो या हो धनी, हिंदू हो या अन्य।
सबमें लाती एकता, अंग्रेज़ी है धन्य।।

अब घोषणा की गई कि अध्यक्ष महोदय का भाषण होगा। अध्यक्ष मुत्तूस्वामी ...ा से उठे, सर वुल्फ़ की ओर निष्ठा से देखा और उनके मुस्कराने पर संतोष ...ाइक पर आए। इस बीच लगातार तालियाँ बजती रहीं। मुत्तू ने निर्मुक्त ...र कहा :

"महामहिम सर वुल्फ़, डॉ० मेघनाद चाटुर्ज्या और कविगण इतना अच्छा इतना पर्याप्त कह चुके हैं कि मेरे लिए कुछ बचना ही नहीं है। फिर भी, ...ड बता देना चाहता हूँ कि यदि हिंदी हम पर थोपी गई तो इंडिआ वैसे टूट-टूट

कर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा जैसे पापड़ ! 1947 ई० तो कुछ न था ! बीसों अंग्रेज़ी-भक्त आत्मदाह करके पूज्यभाषा अंग्रेज़ी की रक्षा कर चुके हैं . साक्षी 1965 ई० का विजयी आंदोलन है जिसने हिंडी-इंपीरिअलिज़्म की जड़ें ही काट दी । हम आज भी अंग्रेज़ी के लिए मरने-मारने के लिए तैयार हैं !"

सब लोगों ने खडे होकर तालियाँ बजाई। तीन मिनिट तक कुहराम चला।

"नेरू ने सच्चे डिमॉक्रैट की तरह हर स्टेट को वीटो-पॉवर दे दिया है कि वह हिंडी के थोपे जाने को रोककर इंडिआ को टुकड़े-टुकडे होने से बचाए। पेरियार, अन्ना, रैमचैंड्रन इत्यादि महान् नेताओ का टैमिलनैडू आर्य-साम्राज्यवाद की प्रतीक हिंडी को कभी न स्वीकार करेगा। हमने तो रैमेश्वरैम् के मंदिर मे सैंसक्रीट के श्लोको पर भी कोलटार पोत दिया था। और—अब तो सॉउथ इंडिआ का पूरे देश पर राज्य है ! अंग्रेज़ी का भविष्य उज्ज्वलतर है। कश्मीर घाटी, ज्यादातर पंजाब, नागालैंड, मिजोराम, ज़्यादातर मेघालय, ज़्यादातर पश्चिम बगाल हमारे साथ है ! हिंडी को कभी आगे नही आने दिया जाएगा ।"

तालियाँ बजी। मुत्तू प्रसन्न हुए।

"हिंडी पढकर तो कोई क्लर्क तक नहीं बन सकता। आई० एफ० एस०, आई० ए० एस०, आई० पी० एस०, एंजिनीअर, डॉक्टर, चार्टर्ड एकॉउन्टेंट इत्यादि बनने के लिए अंग्रेज़ी पहली शर्त है। जो लड़का फर्राटेदार अंग्रेज़ी नही बोलता उसको बेहतरीन बीवी तक नहीं मिल सकती ! जो लड़की तेज़-तर्रार अंग्रेजी नहीं बोल सकती उसको अच्छा हस्बैण्ड नहीं मिल सकता ।"

तालियाँ।

"पब्लिक स्कूल में भारी खर्च करने पर भी ठीक-ठीक अंग्रेज़ी न जाननेवाले परिवारों के बच्चों को प्रवेश न मिलना इस बात का सूचक है कि इंडिआ अंग्रेजी के लिए सब-कुछ लुटा सकता है ।"

तालियाँ।

"अगर किसी को आगे बढ़ना है, इक्कीसवीं सदी में जाना है, वंशजों को पच्चीसवी सदी के लिए तैयार करना है, इंडिआ को एक रखना है और महान् देश बनाना है तो अंग्रेज़ी को पूजना ही पड़ेगा। सर टैगोर, थिरू ऑरोबिंदो, सर रेड्हाकृश्नन् इत्यादि अंग्रेज़ी के कारण पुजे—और-तो-और, स्वर्गीय सोट्येजीट रे पश्चिम के प्रभाव (जिसे उन्होंने नम्रतापूर्वक स्वीकार किया था) के बल पर 'ऑस्कर' पाकर अमर हुए ! 'ऑस्कर' के बाद ही 'भारतरत्न' मिल सका और वह तो मिलना ही था। लेकिन जब 'ऑस्कर' जैसा 'विश्वरत्न' मिल जाए तो 'भारतरत्न' का महत्त्व क्या ? दर्ज़नो देशी-विदेशी 'भारतरत्न' मिल जाएंगे—देश का इतिहास साक्षी है। पर 'ऑस्कर' देश में केवल एक व्यक्ति ही पा सका है।"

तालियां।

"अंग्रेजी-पूजा हमारा सर्वोपरि राष्ट्रीय दायित्व है। भगवान् की पूजा से भी नौकरी और उन्नति, उच्चस्तरीय पति और पत्नी नहीं मिल सकती। अंग्रेज़ी भगवान् से भी बढ़कर है। "

मुत्तू ने भाषण समाप्त किया। तालियों की गडगड़ाहट में सर वुल्फ़ तक को लगा कि वे बहरे हो गए हैं ! अंत में प्रार्थना हुई :

जय जय जय अंग्रेज़ी रानी।
'इंडिआ, दैट इज़्, भारत' की भाषाएं भरतीं पानी।।
सेवारत है पिल्ले, मेनन, अयंगार, मिगलानी।
तमिलनाडु से नागालैंड तक ने सेवा की ठानी।।
तेरे दासों को हिंदी में मिलती नहीं रवानी।
शब्दों को उधार ले-ले उर्दू ने कीर्ति बखानी।।
एंग्लो-इंडिअन भाई कहते, तू भारत की वाणी।
अड़गम-बड़गम-कड़गम कहते तू महान् कल्याणी।।
अंकल, आँटी, मम्मी, डैडी तक है व्याप्त कहानी।
पब्लिक स्कूलों से संसद तक तूने महिमा तानी।।
अंग्रेज़ी में गाली देने तक में ठसक बढ़ानी।
फिर भाषण में क्यों न लगे सब भक्तों को सिम्फॉनी।।
मैनर से बैनर, पिओन से लीडर तक लासानी।
सभी दंडवत् करते तुझको, तू समृद्धि-सुख-दानी।।
जय जय जय अंग्रेज़ी रानी।
जय जय जय अंग्रेज़ी रानी।।

20. नेता प्रशिक्षण संस्थान[1]

(लीडर ट्रेनिंग इंस्टिट्यूट)

नेता प्रशिक्षण सस्थान (लीडर ट्रेनिग इंस्टिट्यूट) या एल० टी० आई० का भवन एव परिवेश आई० टी० आई०, आई० आई० टी०, टी० टी० आई०, इत्यादि से एकदम भिन्न था : वातानुकूलित भव्य कक्ष, उससे लगा कालीन-सज्जित प्रशाल, तीन दूरभाष, अमेरिकन मॉडेल के तीन लक्जरी सोफा सेट्स, खूबसूरत मेजों पर महँगी विदेशी शराबों की बोतलें, कीमती चित्रित बेल्जिअन प्याले, सोडा-शीतलपेय, दुर्लभ विदेशी सिगरेटों के पैकेट्स, आकर्षक शंखाकार ऐश-ट्रे, टेप-रिकॉर्डर्स (जिससे भावी-नेता पुनर्श्रवण-लाभ प्राप्त कर सकें) का आलम। वस्त्रपट्ट पर उद्देश्य अंकित था : "जो अपनी सेवा नहीं कर सकता वह राष्ट्रसेवा क्या कर सकेगा ? जो परिवार-सेवा नही कर सकता वह मानवसेवा क्या कर सकेगा ? आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत् ।" शुल्क पचास हजार रुपए प्रति मास/प्रतिभूमि राशि दस लाख रुपए (जो लौटाई न जाती थी)। कक्षाएं गुप्तचर्चा-वर्जित। चर्चा करने पर तत्काल प्रतिभूमि-क्षति तथा बहिष्करण। छात्रसंख्या कम-से-कम एक, अधिक-से-अधिक चार।

प्राचार्य थे श्री जगदीश्वरगौरव सिंह। प्राध्यापक केवल दो थे—शिशिर गोपालक एव मौर्यउल्लास घासवाल। कार्यालय न था क्योंकि न कोई पजीकरण था, न प्राप्तिपत्र का झमेला, न कुछ लौटाने का चक्कर, न उपस्थिति का झमेला, न प्रमाणपत्र की समस्या। कक्षा केवल एक प्रतिदिन। समय एक घंटा। कभी-कभी तीन तक। प्राचार्य एवं प्राध्यापकद्वय के देश या विदेश की सरकारों या दलों के व्यय पर हुई यात्राओं के समय सबद्ध कक्षा स्वभावतः न हो पाती थी। कई बार तीनों के यात्राव्यस्त होने पर कक्षाएं बिल्कुल न हो पाती थीं। उपालंभ के मशक तक का प्रवेश कठिन था—वातानुकूलित वातावरण में संभव भी न था। प्राचार्य बड़े दिग्गज नेताओं में थे। कई घाटों का पानी पिए, कई रंग बदले हुए, कई उच्चतम पदों पर राष्ट्रसेवा (निजसेवा भी तो राष्ट्रसेवा का अंग ही है) किए हुए। एक बार पहले दान दिया, फिर पत्नी से विक्षिप्तता-प्रमाणपत्र दिलाकर वापस

---

1 अब झारखण्ड में खुल भी गया है। इस निबंध का प्रभाव ?

पा लिया—ऐसी थूक-चाट चाल केवल वे ही कर पाए थे ! पर दान का यश प्राप्त हो ही गया था ! इन दिनों वे 'मूल्यों' बढ़ते मूल्यों नहीं, मानवीय या नैतिक मूल्यों पर बेहद ज़ोर देते थे। 'मूल्यों' एक विराट् शब्द है जो राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, साहित्य इत्यादि सब से जुड़ा है, जबकि 'नैतिकता', 'निष्ठा' इत्यादि संकुचित शब्द केवल प्राचीन धर्मशास्त्र में पाए जाते हैं; और, वस्तुतः कालातीत हो चुके हैं—इन शब्दों का स्त्रीलिंग होना ही इनके अत्याचारग्रस्त होने की सूचना दे देता है, जबकि 'मूल्यों' शब्द पुल्लिंग-दृढ़ता के साथ अनवरत 'वृद्धि' की प्रतीक भी है।

संयोग से आज प्राचार्य भी एक दलित संवेदन के आंदोलन में गिरफ़्तारी के कारण तीन दिनों का कारागार-विश्राम करके लौटने के कारण एकदम ताजा-तर थे और एअरकंडीशंड कॉन्टेसा से तशरीफ़ लाए थे, आंदोलनवाली साधारण मारुति से नहीं। दोनों प्राध्यापक संसद-सत्र न होने तथा अन्य कोई कार्य भी न होने के कारण सुचित थे। तीनों 'अंतर' लगने थे। ऐसा सुयोग कभी-कभार ही आ पाता था। खान-पान-व्याख्यान एवं खान-पान-श्रवण तथा यथासमय द्विपक्षीय चर्चा की घनघोर व्यवस्था सोफा सेट्स के सामने पड़ी मेजें अनायास ही बता रही थीं। अच्छी गहमागहमी थी।

जगदीश्वरगौरव सिंह आज बूट, पाजामा, शेरवानी और जिन्ना कैप में थे। आते ही, दुवा-सलाम के बाद, एक प्रसिद्ध युवा-नेता 'छात्र' ने पूछा, "गुरुजी, कैप से जिन्ना और पोशाक से नेहरू लग रहे हैं..."

जगदीश्वर ने कहा, "वे महान् नेता थे !"

"सचमुच ! दोनों के कारण लाखों लोग मारे गए..."

"मैं बेचारा क्या खाकर उनका मुकाबला करूँगा—केवल डेढ़ सौ मरे। मारे तक न गए ! हाँ, चंगेज़ ख़ान, तैमूर लंग, नैपोलिअॅन, हिटलर, स्टालिन इत्यादि के सामने जिन्ना और नेहरू भी कुछ न थे।"

'अहा, क्या धर्मनिरपेक्ष, निस्संग और व्यापक दृष्टि है ! लेकिन, चिंता न करिए, अभी बड़ी संभावनाएं हैं—पेट्रो-डॉलर में बड़ी ताकत है और मौलाना हैजी, शेख़ ताऊनी, सैयद कयामतुद्दीन वगैरह भी मौका मिलते ही क़ब्रों से उठ खड़े होंगे। मौलाना हैज़ी के घर को आपने नौलाख लगवाकर वातानुकूलित बनाया था, सैयद कयामतुद्दीन अखबारों में चिट्ठियाँ भेजने के मक्खीमार काम में मजबूरन लगे थे कि सांसद बनाया था; और, ये सारी नियामतें पाकिस्तान, सऊदी अरब, लीबिआ, ईरान वग़ैरह के दूतावासों को मालूम हैं ..."

"वैसे भी, राजनैतिक नेता को कभी निराश न होना चाहिए। उसे जनता की बेवक़ूफ़ी और भुलक्कड़पन पर अटूट विश्वास रखना चाहिए। जनता-रूपी

गधे पर धोबी या कुम्हार रूपी नेता लगातार 'लादी' लादता रहे और यह 'लादी' है दगा या प्रदर्शन या बंध या विज्ञप्ति या खंडन; और, इसमें तोडफोड, अग्निकाड, लूट और जानलेवापन इत्यादि न आए तो सब गुड़ गोबर—तब खबर तक न बनेगी ! हॉं, पत्रकार रूपी कुत्ते को उसके टुकडे लगातार देते रहना चाहिए अन्यथा वह ऐन मौके पर भौंककर सबको जगा सकता है...''

''दंगा तो नेता का रामबाण है...''

काफ़िरकुश अली खान नामक विदेशी नस्ल के देशी 'छात्र' ने विरोध किया, ''रामबाण साप्रदायिक शब्द है। हमें धर्मनिरपेक्षता का ध्यान रखना चाहिए .''

जगदीश्वर ने तापाक से उठकर काफ़िरकुश को गले लगा लिया, ''क्या गजब का नया मुद्दा निकाला है—नेहरू होते तो सांसद बना देते ! तुम फ़ख़रुद्दीन अली अहमद की टक्कर के सेक्युलर लीडर बनोगे ! अब क्या कहते हो, दलगजन सिह ? 'रामबाण' तो सीधे धर्मनिरपेक्षता की छाती में जा धँसा है !''

दलगंजन ने हँसकर कहा, ''लीजिए, सेक्युलर शब्द : दंगा तो मूसा की छडी हे, महमूद गज़नवी की तलवार है, बाबर की तोप है, जिन्ना की जिद है।''

काफ़िरकुश ने दलगजन को चूम लिया और जगदीश्वर ने गले लगाकर आशीर्वाद दिया, ''तुम राजीव की टक्कर लोगे, जिन्होंने मोहम्मद बिन-क़ासिम के प्रति श्रद्धा व्यक्त की थी। तुम्हारा नाम ही 'दल' है। राजनैतिक दल 'देश को दल' की सूचना अपने नामो से ही देते हैं—जो जनता को दल डाले वही महान् दल, वही महान् नेता।''

दलगंजन ने पैर छूकर और काफिरकुश ने सलाम फटकार कर जगदीश्वर के प्रति श्रद्धा व्यक्त की।

एक 'छात्र' ग़ज़नवी खान तैमूरी (जिसकी मूँछें महमूद ग़जनवी छाप थीं ओर दाढी तैमूर लग छाप) ने कहा, ''आजकल कवि यह सांप्रदायिक एवं मानव-विरोधी राग अलाप रहा है, कुफ्र की हद तक जा रहा है :

जो भारत को मातृभूमि ना माने, वह ग़द्दार है
जो भारत को पुण्यभूमि ना माने, वह ग़द्दार है
जो विदेश-महिमा के गाता गाने, वह ग़द्दार है
जो विदेशियों को भी लगा बसाने, वह ग़द्दार है।

''आप इस समय भारत में मिल्लत के सबसे बडे रहनुमा हैं—फतवा दे तो काम तमाम...''

''नहीं। आप इन पंक्तियों के द्वारा मिल्लत को भडकाएं जिससे वह जरा-सी बात पर भी मरने-मारने के लिए तैयार रहे। मिल्लत को 'इस्लाम ख़तरे मे हे' पल भर न भूलने दें।''

दलगंजन ने विनोद किया, "1947 के विभाजित भारत में ढाई करोड मुसलमान थे जो 1991 ई० की जनगणना में बारह करोड हैं—ढाई करोड़ तो बाग्लादेशी, पाकिस्तानी, अफगानिस्तानी और ईरानी मुसलमान ही होंगे। 'इस्लाम खतरे में है' इसी से ज़ाहिर है।" इस विनोद से सभी हँस पड़े !

एक 'छात्र' अशोक मौर्य ने पूछा, "अगर किसी मस्जिद में या रामलीला या दुर्गापूजा या गणेशचतुर्थी या अन्य अवसर पर प्रयोग के लिए बम अपने-आप फट जाए, तो क्या करना उचित होगा ?"

"बहुत अच्छा सवाल है। फौरन हिंदू सांप्रदायिकतावादी दलों पर दोषारोपण, पुलिस में नामज़द-रिपोर्ट यानी एफ़० आई० आर०, सी० बी० आई० जॉच की मॉग, न्यायिक जाँच की मॉग का भैरव-नाद करना चाहिए तथा शीर्पस्थ नेता-नेत्रियो को वहां की यात्रा में विलंब न लगाना चाहिए। याद है, रायबरेली-बमविस्फोट पर मैंने यह सब किया था ! एक वृद्ध एवं जर्जर केन्द्रीय मत्री तो उसमें मरे दो बच्चों की मॉ से गले लिपटकर इतना रोई कि अंगरक्षको को लगा, बेहोश हो जाएगी ! मस्जिदवालों ने भी बडी होशियारी से काम लिया—अपने बम-कारख़ाने में आकस्मिक् विस्फोट पर तत्काल नामजद-रिपार्ट, एक हिंदू दुकान की लूट और आगज़नी, एक बस के हिंदू-यात्रियों की पिटाई जेसे सामयिक कर्तव्यों द्वारा माहौल को बदल दिया ! बच्चो के मॉ-बाप अपने शेप सात पुत्रों और तीन पुत्रियों के साथ सरकारी-ग़ैरसरकारी मुआवज़े से लखपति हो गए और मस्जिद की सरकारी मरम्मत से ठेकेदार-एंजिनीअर वगैरह को लाभ पहुँचा—चंदे से इमाम के छक्के-पंजे अलग से। भाजपाई गधों पर अच्छी लादी। ये नए गधे हैं जिन्हें शासन करना नही आता।"

काफिरकुश ने कहा, "उस्ताद, दुर्गापूजा और रामलीला, रथयात्रा और गणेशोत्सव इत्यादि मे बम फेकने या गोली चलाने या लूटपाट करने या आगजनी करने पर पहले सेक्यूलरइजम का पालन ठीक होता था : पहला दौर शुरू करने से फ़ायदा उठानेवाले फ़ायदा उठाते थे और जब तक दूसरा पक्ष सम्हले-सम्हले तब तक पुलिस आकर उस पर गोलियाँ चला देती थी, कर्फ़्यू लग जाता था और मिल्लत महफ़ूज़ हो जाती थी। यह एकदम ठीक था : कोई क़ौम मारने के लिए बनाई जाती है जैसे मुसलमान, कोई कौम मार खाने के लिए बनाई जाती है जैसे हिंदू—हिंदू को सिख, ईसाई, बौद्ध, सभी मार रहे हैं जैसा कि पंजाब, उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्रों, नागालैण्ड, मिज़ोराम, मेघालय, लंका इत्यादि में देखा जा सकता है। यह सौ फ़ीसदी ठीक है। गाय या बकरी को ही मारा-खाया जाता है, शेर या भेड़िए को नहीं। लेकिन, इधर पुलिस उतनी सेक्यूलर नहीं रह गई—कई बार सेक्यूलर लोगों की धरपकड तक की जाती है, हथियारों की तलाशी ली

जाती है ! यह सब कुदरत के ख़िलाफ भी है क्योंकि हिंदुओ को तो मरना ह ही—उस पर चिल्लपों कैसी ? वे सब तरफ से घिरे हैं, सबकी मार खा रहे हैं—नागनाथ कॉग्रेसी हों या सॉपनाथ भाजपाई, उन्हें कैसे बचा सकते हैं ?"

जगदीश्वर हॅसे, "पुलिस के अल्पसंख्यको की धरपकड़ और तलाशी अभियान के विरोध में आदोलन करके, अनशन पर बैठके (ध्यान रहे कि भूख हडताल के दरम्यान वज़न न बढ़े) नाम कमाओ। गिरफ्तार नेता छोड़े जाए ! निर्दोष जनता पर अत्याचार बंद हो ! मानव अधिकारों का हनन रोका जाए! इधर, आप लोगों ने कृपालु एवं मानवाधिकारवादी संस्थाओ को डॉलर-पेट्रोडॉलर देने में ढिलाई बरती, जो गलत थी। प्रेस को 'डॉग' कहिए, या 'बुल डॉग' या 'वाच डॉग'—डॉगत्व एक ही है ! उसे लगातार हड्डियाँ चाहिए। हड्डियाँ सूखी हुई तो खबरें सूखी आएगी, हड्डियाँ तर हुई तो ख़बरें तर आएगी। पत्रकार हड्डी चबाए-चूसे, आप कलेजी उड़ाएं ! हॉ, एकाध टुकडा सेक्यूलर लेखकों और कवियो की ओर भी फेंकते रहे—जनता पर न सही, मैकॉले-ब्रांड शिक्षितों पर इनका भी कुछ प्रभाव है; सेक्यूलर छवि बनाने के लिए भाजपाई गधे तक इन्हें ढेंचूं-ढेंचूं की पुकार से आकृष्ट कर रहे हैं। बस छक्के-पंजे ! आदर्श नेता वह है जो भूकम्प मे, ज्वालामुखी में, युद्ध में, सांप्रदायिक दगे में, बाढ़ में, सूखे में, हारी में, मारी में, महामारी मे, प्रत्येक परिस्थिति में लाभ उठा सके। सहायता राशि मे, हवाई निरीक्षण में, चदे में, इसमें, उसमें, सबमें, धबाधब !"

अशोक मौर्य "उस्ताद जी .."

गजनवी ख़ान तैमूरी ने टोका "अमा यार ! जो जुबान न आती हो वह न बोलो—'उस्ताद' और 'उस्ताद जी' मे जमीं-आसमान का फर्क है। उर्दू ज़ुबान को ठीक-ठीक बोलना तो अपने बूते तक का नहीं।"

काफ़िरकुश ने मौर्य के कानों में कुछ कहा। वह मुस्कराते हुए झेपा और बोला, "सॉरी।"

जगदीश्वर पर कोई प्रभाव न पड़ा "एक आदर्श नेता जनता के शब्दों पर ध्यान नहीं देता और केवल अपने फायदे की सोचता है। मानवसेवा के लिए स्थितप्रज्ञ बनना पड़ता है।"

"धन्य है ! धन्य है !"

दलगंजन ने विषय बदला, "अगर किसी पड़ोसी देश में विरोधीदल-नेताओ का सीमित-अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो और आयोजक शुद्ध सांप्रदायिक आधार पर भारत के विरोधीदल-नेता को न बुलाकर किसी-और को बुलाएं, तो ?"

"फ़ौरन जाना चाहिए, क्योंकि वहाँ पेट्रो-डॉलर खूब मिलता है जिसे वहॉ के विदेशी बैंको में बेखटके जमा भी किया जा सकता है—पाकिस्तान सऊदी-अरब

इत्यादि का पालित श्वान है और पालितश्वानत्व के सारे लाभ बखूबी उठा रहा है।"

"भारत में थू-थू मचे, तो ?"

"हर थू-थू से नेता की उमर बढ़ती है !"

"वहीं के राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री इत्यादि पहले कहकर ऐन मौके पर मिलने से इंकार करके अपमानित करें, तो ?"

"मान-अपमान पर ध्यान देना मूर्खता है, फ़ायदा उठाना बुद्धिमानी है—रबात के मोहम्मदी सम्मेलन में फ़खरुद्दीन अली अहमद का भारी अपमान हुआ था, पर वे राष्ट्रपति बने, 'भारतरत्न' हुए, संसद के ठीक सामने कब्र में गनगना रहे हैं।"

दलगंजन ने कुछ याद-सा करते हुए, जेब से एक कागज निकाला और बोला, "गुरुजी, 'हे नेता तुझको नमस्कार' कविता एक पत्रिका से उतार लाया हूँ—सुनने-योग्य है :

हे नेता तुझको नमस्कार
तू अखिल सृष्टि का समाहार !
धरती पर तू सर्वत्र व्याप्त
आकाश तुझे है सदा प्राप्त
रॉकेट-सी है तेरी उड़ान
जय-जय का होता घोर गान
मुस्कान कँटीली जगत-मार
हे नेता तुझको नमस्कार !
तन से मानव, मन से अबोध
बकरे-सा स्वर पर सिंह-क्रोध
बकरे-सा तन, कंगारू गति
गिरगिट-से रँग, तेंदुवा सुमति
जीवन से राजा, बोल रंक
भोले भाषण पर कार्य बंक
जनता देती सर्वस्व वार
हे नेता तुझको नमस्कार।
आश्वासन की रहती बहार
भाषण की वासंती बयार
उद्घाटन तेरा प्राण-सार
चाटन भी चलता है अपार

दोनों दलितों का प्रेम-भार
बहती है सूखी व्यथा-धार
पहनाए जाते सदा हार
हे नेता तुझको नमस्कार !

अशोक मौर्य, "अरे, यह तो गुरूजी पर ही रची हुई है—वैसे, सब नेताओ पर लागू होती है : नेता जाति एक है।"

दलगंजन, "तो गुरूजी किससे कम हैं ? नेहरू तक से उन्नीस नहीं : अटल को शटल कर, आडवाणी को भाडवाणी कर, देवीलाल को बेवीलाल कर, राजीव तक को नाजीव कर चुके हैं..."

काफ़िरकुश, "कवियों और शायरों की जान..."

ग़ज़नवी खान तैमूरी, "स्वयं कवि !"

जगदीश्वर पर कोई प्रभाव न पड़ सका। उनका 'अंतर' बीत गया। खान-पान चला। वे चलनेवाले ही थे कि काफ़िरकुश ने अयोध्या का मामला उठा दिया, 'वहाँ कभी मंदिर था ही नहीं—कॉमरेड रोमीला थापर इसी मुद्दे पर जोर देकर पद्मभूषण हो चुकी हैं, कॉमरेड विपिन चंद्र उर्फ बिपनचदर और कॉमरेड रामशरण उर्फ रामसरन शर्मा लिस्ट की लिफ्ट में लटके हैं और एक ही झटके में ऊपर पहुँचनेवाले है, कॉमरेड झा जैसे लाइटवेट क्यू में लगने के लिए फड़फडा रहे हैं ."

दलगजन, "पर कभी मस्जिद होती तो क्या वह हिंदुओं को दे दी जाती? फिर तो, काशी विश्वनाथ मंदिर वाली मस्जिद हिंदुओं को देनी पड़ेगी क्योंकि उसके पिछले हिस्से में मंदिर के अवशेष अकाट्य रूप से जुडे छोड दिए गए हे—उद्देश्य था परास्त पददलित हिंदुओं को लगातार अपमान-विष के घूँट पिलाते रहना,—तभी तो नेहरू 'हिंदू' शब्द से भागते थे।"

ग़ज़नवी ख़ान तैमूरी ने उचककर दलगंजन की पेशानी चूम ली, "बहुत महान् धर्मनिरपेक्षतावादी हैं आप । यथास्थितिवाद ही एकमात्र पथ है अन्यथा भारत के मुसलमान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, साऊदी अरब, ईरान, लीबिआ इत्यादि टूटे-फूटे भारत को और अधिक तोड़कर रख देंगे। मुसलमान गोरो और पीलों के बाद दुनिया में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं; हिंदू को इसे न भूलना चाहिए।"

काफ़िरकुश, "राम के नाम पर हराम की रोटी खानेवाले भी इसे जानते हे। उन्हे पेट्रो-डॉलर से ख़रीदा भी जा सकता है।"

अशोक मौर्य, "वास्तव में अयोध्या-मस्जिद है ही नहीं : उसके कसौटी-पत्थरो के रगड़ी गई मूर्तियों के खंभे, पास खुदाई में मिली नवीं-तेरहवीं शताब्दियों के बीच की मूर्तियाँ, आसपास का हिंदू परिवेश—दारुलउलूम देवबंद तक उसे मस्जिद

नही मानता । अकबर से लेकर अवध के कई नवाबो तक के जमानो में इसे हिंदुओं के हवाले किया जा चुका है. .''

काफ़िरकुश, ''तो उन्होंने मस्जिद तोड़कर मंदिर क्यों नहीं बनाया ?''

गजनवी खान तेमूरी, ''मोहम्मदी निज़ाम में मस्जिद तोड़ने के ख्वाब पर भी खाल खींच ली जाती—दिमाग़ तो ठीक है ? यही है अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटी की पढाई ? जहाँ से जिन्ना, लियाक़त, शेख अबदुल्ला जैसी ऊँची हस्तियाँ निकलीं—जहाँ आज भी जिन्ना और लियाकत के चित्र दनदना रहे हैं—वहाँ से निकलकर भी आप यह सोचते हैं ? तब की छोड़ो, आज की मस्जिद कौन गिरा रहा है ? नागनाथ गए, साँपनाथ आए। एक पिद्दी धोतीपरशाद गया, दूसरा पिद्दी धोतीपरशाद आया। फ़र्क़ क्या पड़ता है ?''

काफ़िरकुश चुप रहा क्योंकि ग़ज़नवी ख़ान तैमूरी का चेहरा तमतमा आया था। उसकी नस्ल में हब्श का दख़्ल था।

अशोक मौर्य, ''यह मस्जिद कभी पूरी हो ही नहीं सकी—न अजान के लिए मीनारें, न वज़ू के लिए हौज़, न प्रवेशद्वार, न बड़ा सहन...''

काफ़िरकुश, ''मौर्य, यथास्थितिवाद ही ठीक...''

अशोक मौर्य, ''तो 1949 ई० से वहाँ नमाज नही पढ़ी गई, रामलला विद्यमान है, अखंड कीर्तन चल रहा है, एक भी मुसलमान वहाँ फटकता तक नहीं—यह रही 'यथास्थिति'। वास्तव में केवल 'संविधान' एवं 'धर्मनिरपेक्षता' शब्दों की रट पर्याप्त है...''

जगदीश्वर ने उठकर अशोक मौर्य को गले लगा लिया, ''क्या हल निकाला है ! वाह ! न कोई 'संविधान' जानता है, न 'धर्मनिरपेक्षता'। हाँ, अब सोविएट यूनिअॅन के टूटने मे सभी छापों के साम्यवादी नेता और लेखक अनाथ हो गए हे—उन्हें टुकडों की ज़रूरत है और पेट्रो-डॉलर का हरितस्वर्ण-सागर लहरा ही रहा है ! कॉंग्रेस की प्रोग्रेसिव और सेल्यूलर लॉबी अपने साथ है ही ! डरने का कोई कारण नहीं ! हॉं, हिंदू-एकता के अजगर का मुँह बंद रखना है ! इसके लिए मैं हूँ ही, अन्य अनेक हैं ही !''

काफ़िरकुश, ''मोरक्को से इंडोनेसिआ तक मोहम्मदी निज़ाम क़ायम है—इस्राइल कितने दिनों का मेहमान है ? भारत तो बेचारा भूखा, नंगा और कमज़ोर है--कब तक बच जाएगा ? जद्दा से लंदन तक आलमी मोहम्मदी कॉन्फ़्रेन्सेज़ 2050 ई० तक भारत की आबादी का फ़ीसद बदलने का मंसूबा बना चुकी है। खानदानी मंसूबाबंदी की खिलाफत, काफ़िरों को मोहम्मदी बनाना ओर पेट्रोडॉलर के ज़ोर से बांग्लादेशी, पाकिस्तानी, अफ़ग़ानिस्तानी, ईरानी मोमिनो को जमाने का काम ज़ोरों पर है। जो समझदार लीडर, फनकार, अदीब वग़ैरह

है वे दीवार में लिखावट पढ रहे हैं मगर जो अंधे होने की वजह से नही पढ पा रहे वे कर ही क्या सकेंगे ? आपस में बँटे और लड़ते हिंदू को टूटना ही बदा है।"

जगदीश्वर, "हमारा खानदान तो मोहम्मद गोरी के ज़माने से ही इस हकीकत को समझता आया है। अब तो समझदारों की तादाद भी बहुत ज़्यादा है और प्रोपेगेंडा से प्रभावित तो करोड़ों में हैं—2050 ई० को 2020 करना होगा।"

काफ़िरकुश ने अपने बैग से हरित-स्वर्ण[1] का एक बड़ा बंडल निकालकर जगदीश्वर के कदमों पर रख दिया, "आप जैसे समझदार और सच्चे सेक्यूलर इसान फ़रिश्तों पर यकीन करना सिखाते हैं—आप हिंदोस्तान के अबू बक्र कहे जाएँगे।"

समय हो ही चुका था। जगदीश्वर चले गए। उनकी आँखों में प्रेम और आदर पाने का भाव भरा था—ऐसी पदवी !

गपशप चली। तभी शिशिर गोपालक आ गए। तगड़ा और जकडा शरीर, चेहरा जवानी में चाकूबाज़ी की अनेकानेक में से तीन के रोमांचकारी स्मृति-चिह्नो से संपन्न—प्रचंड और खिचावदार, आँखे बाघ की आँखों जैसी भयंकर, आवाज लट्ठमार : ठेठ चंबल के बेहड़ों से आए लगते थे। पहले (नेतागीरी के धधे के लिए उठाईगीरी और बाद में डकैती के जनश्रद्धामूलक धधों का परित्याग करने पर) खानपान आतिथेयों एव वस्त्रव्ययभार ग़रीब किसानों के करोड़पति नेता चाचा चण्डिकाप्रसाद पर छोड़ रखा था। पर बाद में बिल्ली के भागो सींका टूटने पर सांसद और मंत्री बनने पर वारे-न्यारे हो गए—देश-विदेश में कई करोड़ का 'पेटा'। 'पिछड़े वर्गों' के जाने-माने हक्कानी सेवक ! आते ही बोले, "दलितों के पक्ष में ब्राह्मणवाद का सर्वनाश अवश्यंभावी है..."

दलगजन ने शंका प्रकट की "लेकिन 'दलित' की परिभाषा क्या होगी ? यह प्रश्न शोषक ब्राह्मणवादी प्राय: उठाते रहते हैं और इसका उपयुक्त उत्तर नही बन सका..."

शिशिर गोपालक की मुद्रा क्रोधतप्त हो गई, "दलित की परिभाषा तो संविधान ही कर गया है : अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ...और अब इनमें दलितों और अल्पसंख्यकों के मसीहा जगदीश्वर जी ने पिछड़ी जातियों को जोड़कर बुद्ध के बाद सबसे बड़े नेता का गौरव प्राप्त कर लिया है—हमारे एक अन्य नेता झल्लूलाल यादव ने इन्हीं की प्रेरणा से 'बैकवर्डिया' और 'फार्वर्डिया' में गृहयुद्ध की सी पवित्र स्थिति ला दी है..."

अशोक मौर्य, "बुद्ध के बाद सबसे बड़े नेता बाबा साहब भीमराव राम

1 'ग्रीन गोल्ड' (डॉलर)।

अम्बेदकर हैं या...?''

शिशिर गोपालक, ''बाबा साहब तो साक्षात् बुद्ध ही थे--बोधिसत्त्व अवतार.. ?''

दलगंजन, ''तो क्या बुद्ध का निर्वाण असत्य था ? उन्हें पुन· अवतार लेना पड़ा। पहले की बात और...''

काफ़िरकुश ने शंका प्रकट की, ''गुरुजी, 'बुद्धू' शब्द जिस तरह बना है?''

''यह ब्राह्मणवादियों की देन है, जिन्होने हजरत, खलीफा, उस्ताद, पोपलीला, गुरु वगैरह भी बनाए हैं।''

ग़ज़नवी ख़ान तैमूरी, ''अंबेदकर को अंग्रेजों ने एम० एल० सी० मनोनीत किया था, वे चुनाव हारे थे, बुढ़ापे में ब्राह्मण बीवी धर लाए थे—'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' ग्रन्थ में वे सेक्युलर नहीं है...''

''इसका उत्तर है, ब्राह्मणवाद मुर्दाबाद ! वैसे, यह विषय मौर्यउल्लास घासवाल का है.. ''

'सॉरी सर। हाँ, तो 'पिछड़ा वर्ग' विवादास्पद है--चंद्रगुप्त मौर्य, बिंदुसार, अशोक इत्यादि से पटेल, सीताराम केसरी, लालूप्रसाद यादव इत्यादि तक पिछड़ापन दूरबीन लगाने पर भी कहीं दीखता ही नहीं। अहीर, कुर्मी, काछी, लोध, गूजर इत्यादि खेती, पशुपालन, सेना, पुलिस, डकैती इत्यादि धंधो में शान से लगे हैं और विभिन्न प्रशासनिक सेवाओं मे भी धकाधक जा रहे हैं।''

''यह सब ब्राह्मणवादी राग हैं...''

''पर, ब्राह्मण तो सारे सुधारों में अग्रणी रहा है ? बलिदानों में अग्रणी रहा हे ? बुद्ध के कौण्डिन्य इत्यादि पंचवर्गीय शिष्य, उनके परमप्रचारक सारिपुत्र ओर मोद्गल्यायन, उनकी चरित की भव्य कल्पना करने वाले महाकवि अश्वघोष, महायान के प्रवर्तक नागार्जुन इत्यादि ब्राह्मण थे। बौद्धधर्म के प्रेरक विश्व के प्रथम महान् नास्तिक कपिल ब्राह्मण थे--बुद्ध का सम्बन्ध उन्हीं की कपिलवस्तु से था । बौद्धधर्म मे बुद्ध के अतिरिक्त सब-कुछ ब्राह्मणमय है। चद्रगुप्त मोर्य के प्रेरक एवं गुरु चाणक्य ब्राह्मण थे। कबीर, रैदास, सेन, धना इत्यादि सुधारकों के गुरु रामानंद ब्राह्मण थे। आधुनिक भारत के निर्माता राममोहन राय, सर्वधर्मसमन्वयाचार्य विवेकानद-गुरु रामकृष्ण परमहंस ब्राह्मण थे, अस्पृश्यता विरोधी नारी-जागरणकर्ता दयानद ब्राह्मण थे, अस्पृश्यता-विरोधी स्वातंत्र्य-संग्राम नायक तिलक ब्राह्मण थे, मानवतावादी महाकवि रवीन्द्र ब्राह्मण थे, अस्पृश्यता-विरोधी शिक्षा-संस्कृति-प्रसारक मालवीय ब्राह्मण थे, गांधी गुरु गोखले ब्राह्मण थे, जातिविरोधी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सस्थापक हेडगेवार ब्राह्मण थे, यहाँ तक कि नेहरू, इंदिरा इत्यादि तक ब्राह्मण थे। स्वातंत्र्य-सेनानी नानाराव

पेशवा, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, मंगल पांडे, चाफेकर-बंधुत्रय, ठाकुर होकर भी 'पंडित' रामप्रसाद 'बिस्मिल', चंद्रशेखर आजाद इत्यादि ब्राह्मण थे। भारतीय धर्म, संस्कृति, कविता, कला, संगीत, विज्ञान इत्यादि जीवन की सभी दिशाओं में ब्राह्मण अग्रणी रहा है। अन्य जातियों एवं विभिन्न मज़हबों के पुरुषों से विवाह में ब्राह्मण-पुरुष एवं ब्राह्मण-नारियाँ अतुलनीय रूप से प्रगतिशील रही हैं : पुलस्त्य, पराशर, व्यास, देवयानी, रुक्मिणीदेवी अरुंडेल, अरुणा आसफ़ अली इत्यादि की कथाएं अनंत हैं। कोई भी जाति ब्राह्मणों के सदृश क्रांतिकारी नहीं हुई। किन्नर, गंधर्व, नाग, कोल, किरात, भिल्ल, संथाल, शबर, वानर, भल्ल, गृद्ध, द्रविड, काम्बोज, दरद, यवन, पारसीक, शक, हूण, पह्लव इत्यादि के हिंदुत्व में समाविष्ट करने वालों मे अगस्त्य, पुलस्त्य, परशुराम इत्यादि तथा परवर्ती ब्राह्मण अग्रणी रहे हैं। दयानंद ने 'शुद्धि' प्रचलित की थी। असपृश्यता, जातिप्रथा, सांप्रदायिकता, शोषण इत्यादि के उत्तरदायी सारे हिंदू हैं; ये दोष हिंदू-इतर लोगों में भी भरपूर हैं। अत ब्राह्मणवाद की कोरी निंदा के केवल मूढ़मति या न्यस्तस्वार्थग्रस्त तत्त्व ही प्रभावित हो सकते हैं..."

"अपनी राजनीति ब्राह्मणविरोध पर ही चल रही है। पेट्रो-डॉलर इसी से जुडा है। क़ाज़ी दास्तान का यही निर्देश है। झाँसाराम इसी पर चल रहा है। मौर्यउल्लास घासवाल के लिए तो ब्राह्मणवाद निंदा लॅगड़े की लाठी ही है। अत· व्यावहारिक बनना ही पड़ेगा। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, नानक, गांधी, सबने व्यावहारिकता के आगे सिद्धान्तों को गौण माना . बालिवध, द्रोणहत्या, बिबसार-अजातशत्रु-प्रसेनजित्-उदयन-लाभ, सीज़र आलोचनाभीरुता, पवित्रमास-युद्धविराम-अवहेलना, बाबर-स्तुति, कैसरेहिंद-तमगा, सब यही बताते हैं..."

दलगजन ने साग्रह पूछा, "गुरुजी, यह अंश ग़जब का है और आप शुद्ध भाषा में बोले—कहाँ से लिया है ?"

शिशिर गोपालक ने मुस्कराकर टाला-सो-टाला। बोले, "अपना अस्तित्व ब्राह्मणविरोध ही नहीं प्रत्युत सवर्ण-विरोध पर ही टिका है। यदि पिछड़ी जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ और अल्पसख्यक एकत्र हो गए तो सत्ता हमारे कदम चूमेगी—इसी के लिए पाकिस्तान, अरब देश, ईरान, लीबिआ इत्यादि प्रयत्नशील हैं..."

काफ़िरकुश ने लंबी साँस खींचकर कहा, "काश, ऐसा हो पाता। यह सच है कि हम लोग पिछडी जातियो, अनुसूचित जातियो, अनुसूचित जनजातियो एव अल्पसंख्यको की मिली-जुली संख्या कभी अस्सी, कभी पचासी, कभी नब्बे, तो कभी पचानबे प्रतिशत तक, जब जैसा मुँह से निकल जाए, कह मारते है; मौलाना हैज़ी, शेख़ ताऊनी वग़ैरह मुसलमानों की संख्या कभी-कभी पच्चीस करोड़ तक

उछाल देते हैं, और इस सबका गधा-छाप जनता पर भारी प्रभाव भी पडता हे—पिछड़ी जातियाँ, अनुसूचित जातियों और अल्पसंख्यक अपनी आबादी दन-दनादन बढ़ाने में और अधिक रुचि लेने लगते हैं जिससे भारत में सल्तनत फिर से कायम हो सके, लेकिन हकीकत यह है कि सवर्णो की संख्या भी बहुत हे। जनगणना में जाति का उल्लेख नही होता; अतः किसी जाति की ठीक संख्या का ज्ञान सभव नहीं है। चुनावों के परिणाम सिद्ध करते हैं कि पिछड़ी जातियों ओर अल्पसंख्यको की भारी संख्याओं के दावे झूठे हैं।"

शिशिर गोपालक, "हकीकत और सियासत में वैर है। गोएबेल्स का सूत्र ही राजनीति का मूल मंत्र है : सौ बार कहे जाने पर झूठ सच बन जाता हे। जर्मनी विकसित देश है। भारत के अनुसार, मैं कहता हूँ : दस बार कहे जान पर झूठ सच बन जाता है। भारत की राजनीति में वही नेता महान् हो सकता है जो तोडे—जोड़नेवाला टके सेर बिकता है ! गांधी, जिन्ना, नेहरू, लियाकत, तारासिंह, अंबेदकर, मंडल, अन्नादोरै, रामचंद्रन्, चरणसिंह, भिंडरानवाले, मान, ललडेंगा, घीसिंग, राजीव वगैरह के बड़े-मँझोले-छोटे उदाहरण सामने हैं—अपन दल ने भी देश की एकता को दल कर ही सफलता पाई है। एक से लाभ केवल एक उठा सकता है; जो सबसे ऊँचा हो वही एक को लपक सकता है। अनेक से अनेक लाभ उटा सकते हैं, क्योंकि टुकडे बौनों को ही ऊँचा मानते है। अत अपना मंत्र है - भारत अनेकताओं से भरा है। यहाँ एकता का नामनिशान नही। एकता की बात करो टंडन बने रहो, अनेकता की बात करो नेहरू-वश चला दो। एकता की बात करो जगजीवनराम बने रहो, अनेकता की बात करो अंबेदकर बन पूजे जाओ।"

काफ़िरकुश ओर गज़नवी खान तैमूरी ने उठकर शिशिर गोपालक का एक-एक गाल चूम लिया, "आप सच्चे नेता हैं : धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी, लोकतंत्रवादी !" और काफ़िरकुश ने अपने बैग से हरितस्वर्ण का एक मँझोला बडल निकालकर उनके दाहिने हाथ में धँसा दिया। गज़नबी ख़ान तैमूरी ने अपने हाथ से पेग तैयार कर उनके ओठों से लगा दिया। शिशिर गोपालक ने एक साथ दो काम दिए : दाहिना हाथ जेब में डाला, सुरा का घूँट गर्दन में। खान-पान चला। वह बोला, "कई प्रतिक्रियावादी एव सांप्रदायिक तत्त्व भारतीय वायुयानो में बीफ[1] परोसे जाने और पोर्क[2] न परोसे जाने का विरोध करते हैं—वे नादान भूल जाते है कि क़ुरान मे खुद अल्लाह में पोर्क को हराम करार दिया है।"

शिशिर गोपालक ने कलेजी का टुकड़ा सुरा के घूँट से गटकते हुए अटकती-सी

1 गोमास।

2. शूकरमांस।

दाद दी, "क्या...तर्कसगत एवं...धमनिरपेक्ष बात...कही ह ! आप बहुत ऊपर उठेगे—सैयद कयामतुद्दीन का दर्ज़ा तो पॉच साल में ही पा लेंगे !"

ग़ज़नवी खान तैमूरी ने तगड़ा सलाम फटकारा और नए जोश के साथ बोला, "महमूद गज़नवी एक प्रगतिशील एवं धर्मनिरपेक्ष महापुरुष था, जिसने भारत के प्रथम उद्धारक मोहम्मद बिन-क़ासिम से भी अधिक सफलता प्राप्त की—उसने लाहौर, मुल्तान वगैरह को सीधे सल्तनत में मिलाया . धन्य है उसकी दूरदृष्टि कि वहीं-वहीं कुफ्र कटा और पाकिस्तान बना ! उसने क़ुरान में अल्लाह के हुक्म कि 'बुत् तोडो और बुत्परस्तो को मारो' का पालनकर इंसानियत को प्रकाश प्रदान किया। कॉमरेड मोहम्मद हबीब एवं कॉमरेड इर्फान हबीब ने उसकी जी भरकर तारीफ़ ठीक ही की है ! बख़्तियार खिल्जी, इल्तुत्मिश, फ़ीरोज़ तुग़लक, तैमूर लंग, सिकन्दर लोदी, औरगजेब, सर सैयद अहमद ख़ॉ, कायदेआजम मिस्टर मोहम्मद अली जिन्ना, डॉ० सर मोहम्मद इकबाल इत्यादि ने उपमहाद्वीप में कुफ्र को काटने का पवित्र कार्य किया है; अतः इनकी इज़्ज़त की जानी चाहिए "

दलगंजन ने चुटकी ली, "लेकिन महमूद ग़ुजनवी ने सिक्कों पर लक्ष्मी और सस्कृत का प्रयोग किया, जिन्ना शूकरमांस खाता और शराब पीता था तथा इन तथ्यों पर प्रकार डालने के कारण कॉलिस और लापिअर कृत 'फ़्रीडम ऐट् मिड्नाइट' तथा मोहम्मद अली करीम चागला कृत 'रोजेज़ इन डिसेंबर' जैसे ग्रथो पर पाकिस्तान में प्रतिबन्ध लगा रखा है, इक़बाल अपने पुरखों के पंडित होने का राग अलाप गया है .."

शिशिर गोपालक ने पेग को चढाते हुए पेंग मारी, "वॉ सेक्युलर ! महमूद गज़नवी इत्यादि की इज़्ज़त की जानी चाहिए, क्यों ? वह की जा रही है। इनमे से ज़्यादातर के नामों पर 'पुर' या 'नगर' या 'मार्ग' विद्यमान है।"

काफिरकुश, "धर्मनिरपेक्षता ज़िन्दाबाद ! मोहम्मद अली करीम चागला, सफ़दर हाशमी, चुगताई, हिदायतुल्ला इत्यादि ने मरने पर दाह की वसीयत की या इनका दाहकर्म किया गया अतः ये काफ़िर थे—इन्हें जन्नत नसीब न होगी।"

दलगजन, "धर्मनिरपेक्षता ज़िन्दाबाद ! काफ़िर मुर्दाबाद !"

काफ़िरकुश ने हरितस्वर्ण की छोटी-छोटी गड्डियॉ दलगंजन एवं अशोक मोर्य को भी भेट की, क्योंकि वे धर्मनिरपेक्षता एवं प्रगतिशीलता की पवित्र चर्चा मे विशेष रुचि न ले रहे थे। जेब भरते ही जेब के ठीक नीचे धडकते दिल में जोश भर गया। दलगजन दहाडा, "बांग्लादेश एवं पाकिस्तान से आने वाले मुसलमानो की आलोचना करना धर्मनिरपेक्षता का गला घोंटना है—नेहरू के समय से ही ये आ रहे हैं और तिब्बती भी. ."

अशोक मौर्य ने गर्जना की, "अफग़ान मुजाहिदीन एवं ईरानी मुजाहिदीन

की छोटी-सी सख्या पर चिल्ल-पों मानवतावाद के विरुद्ध है—मदर टेरेसा ओर खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खान 'भारतरत्न' है..."

शिशिर गोपालक, "देखता हूँ कि यह इस्टिट्यूट बहुत अच्छे ढग से चल रहा है।" और वे डॉलर-बंडल सदरी की अंदर की जेब मे जमाते हुए दायॉ हाथ उठाकर, नमस्कार-सूचना देकर, बाहर निकल गए।

भावी नेताओं की आपसी बातचीत अब एकदम खुलकर चलने लगी। जेब मे डॉलर-गड्डी, गले में उतरती बिरयानी, ओठों पर आती जाती सिगरेट—ऐसे मे बातचीत का मजा सौ गुना हो जाता है। अशोक मौर्य ने कहा, "ब्राह्मणवाद भारत का सबसे बड़ा शत्रु है।" उन्होंने मेज पर मुक्का मारा—पी जाने के कारण जोश बढ गया था। चोट तो लगी पर झेल गए।

काफ़िरकुश, "उसकी चिन्ता न करो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ परिवार-नियोजन के कारण धीरे-धीरे अपने-आप मिट जायेंगे। मिट जायेंगे क्या, वास्तव में मिट रहे हैं। इनके पापों का घड़ा भर गया है : ब्राह्मणों ने पवित्र सॉड बनकर खूब चरा, क्षत्रियों ने सिंह बनकर खूब नोचा-खसोटा, वैश्यों ने लोमडी बनकर खूब चुराया, कायस्थों ने सियार बनकर खूब ठगा। अब इनके दिन पूरे हुए। पिछडी जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ परिवार-नियोजन पर कम या न के बराबर या बिल्कुल नहीं ध्यान देतीं। अत अपेक्षाकृत अधिक रहेंगी। इधर, मुसलमान न तो परिवार-नियोजन मानते है, न किसी सरकार—चाहे वह कॉंग्रेस की हो या जनता पार्टी की या जनता दल की या किन्हीं राज्यों में साम्यवादियों की या भारतीय जनता पार्टी की या अन्य की—की हिम्मत है कि उनसे ऐसा करने को कहे : भारत चीन नही है, भारत पाकिस्तान भी नही है, भारत मोहम्मदीयत का प्रतीक-देश है और यहॉ मोहम्मदी जनता इण्डोनेसिआ को पीछे छोड रही है या पीछे छोडने जा रही है—अत. यहॉ मोहम्मदी निज़ाम क़ायम होना तय है। धारा 370, बहुविवाह, तलाक़, परिवार-स्वतंत्रता, केरल में पब्लिक स्कूल मे टोपी पहनने, सबमे मोहम्मदीयत का ख़ास दर्जा बताता है कि इस देश का भविष्य क्या है। कहॉ गए थे अटल-फटल ओर आडवाणी-भाडवाणी 1977 ई० और 1989 ई० मे : ये भाजपाई पाखण्डी भी मामले लटकाते हैं, सुलझाते नहीं। इनके सत्तांशकाल और प्रभावकाल मे ही अल्पसख्यक-आयोग बना, मंडल-आयोग बना। इनसे तो कॉंग्रेसी बेहतर जो अल्पसख्यकों की खाते हैं तो बजाते भी।" उस पर भी नशा रंग ला रहा था।

अशोक मौर्य, "और इसमें बुरा ही क्या है ? पहले जैसा था वैसा ही हो जायेगा।"

गजनवी खान तैमूरी ने अशोक मौर्य को चूम लिया, "आप सच्चे सेक्युलर

हैं ! जब अल्लाह ने दुनिया भर मे मोहम्मदी निज़ाम तय कर दिया है और भारत म तो वह सदियों रहा भी—आज भी उपमहाद्वीप पर छाया है—तो उसका विरोध नास्तिकता है। भारत में धर्मनिरपेक्षता तभी सफल हो सकती है जब बुतपरस्ती पर रोक लगाई जाए, हिन्दू धार्मिक जुलूसों पर रोक लगाई जाए और हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिए प्रेरित किया जाए।''

दलगंजन खाने-पीने में लीन थे, किन्तु इस बिन्दु पर रुक गए। बोले, ''क्या ऊँची बात कही है ! जब घंटा-घड़ियाल, ढोल-नगाडा बजाना कुफ़्र है तब यह सब क्यों बजाया जाए ? अमेरिका में अजान को चीख मानते हैं; उस पर रोक है। वहाँ मंदिरों और चर्चो में घंटियाँ संगीतमय मानी जाती हैं। पर यह भारत है, अमेरिका नही । भारत मोहम्मदी गुलामी मे रहा है, अमेरिका नहीं।..''

ठीक इसी समय मौर्यउल्लास घासवाल एक सुन्दरी के साथ पधारे। अशोक मौर्य ने लपककर दोनों के पैर छुए, दलगंजन ने खडे होकर, दोनों हाथ जोडकर, नमस्कार किया, काफ़िरकुश और ग़जनवी ख़ान तैमूरी ने खड़े होकर मोहम्मदी सलाम फटकारे। दोनो ने सिर हिलाए और सोफे पर बैठ गए।

दलगजन ने कहा, ''सर, पहलेवाली ऑटी...?''

''ऊ गाँव म बा। मतलब ये कि सभा सोसाइटी का ख्याल रखना परता है। भारतरत्न एम० जी० रामचन्द्रन् जैसे नेता, भारतरत्न रविशंकर जैसे सगीत-शिरोमणि, प्रेमचन्द, अज्ञेय, राहुल, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती जैसे साहित्यकार, धर्मेन्द्र जैसे अभिनेता, किशोरकुमार जैसे अमर गायक, आशा भोंसले जैसी श्रेष्ठ गायिका गधे-गधी थोरे ही थे। वे भी हैं; हमने छोरा थोरे ही है।...'' उन्हे ध्यान आया कि वे सहज-भाषा बोल रहे हैं, परिनिष्ठित भाषा नही। अतः रुक गए।

अशोक मौर्य, ''गुरू जी से गलत काम हो ही नही सकता; 'सामाजिक न्याय' पर मरने वाला 'पारिवारिक अन्याय' कैसे कर सकता है ?''

काफ़िरकुश, ''मोहम्मदीयत मे औरत मर्द की लिबास है—एक से मन नही भरता तो दो, दो से नहीं तो तीन, तीन से नही तो चार और तब भी नही तो रखेल-बखैलें ! तभी तो दुनिया मे दबदबा है !''

घासवाल ने काफ़िरकुश को गले लगा लिया और उनकी दूसरी पत्नी ने उसे श्रद्धा से देखा पर आँखें झुका लीं। घासवाल ने कहा, ''मोहम्मदीयत का कही कोई मुक़ाबला नहीं ! वह दिन दूर नहीं जब भारत में मोहम्मदी व्यवस्था स्थापित हो जाएगी; और एक दिन वह भी आयेगा जब जन्नत की हूरों, गिलमान, भरे प्यालों वगैरह के लालच में सारी दुनिया इसे अपनाएगी।''

काफ़िरकुश ने अपने बैग से दो हरितस्वर्ण की मँझोली गड्डियाँ निकाली

ओर एक उनके कुर्त की जेब में डाल दिया तथा दूसरा उनकी पत्नी की हथेली पर दबा दिया। वे बोले, "मुसलमान इंसानी जजबात की इज़्ज़त करते है ! एक बीवी ही; वाह ! तलाक़ में पचास अडचनें, वाह ! केवल मोहम्मदी जन्नत मे गिलमान की व्यवस्था भी है—हिन्दुओं का स्वर्ग, बौद्धों का निर्वाण, जैनों की सिद्धशिला, ईसाइयों का हेवेन क्या खाकर जन्नत का मुकाबला करेंगे। बलात्कार का हौवा ! वाह !..."

गज़नवी खान तैमूरी, "मोहम्मदीयत मे बलात्कार के लिए चार साक्षी चाहिए और यदि ऐसा न हुआ तो आरोप लगानेवाली स्त्री को सख्त सज़ा दी जाती हे ।"

घासवाल, "वाह ! न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेंगी । अरे, जो हुआ सो हुआ—साँप निकल गया तो लकीर पर लाठियाँ पीटना कैसा ? फिर, बलात्कार आम तौर पर निरे एकपक्षीय नही होते। युद्ध इत्यादि मे वे बचाए नहीं जा सकते।"

गज़नवी खान तैमूरी, "मोहम्मदीयत मे एक मर्द की जगह दो औरतों की गवाही का विधान है..."

दलगंजन ने विषयांतर किया, "दोस्त, क़ुरान मे अल्लाह ने औरत के लिए जन्नत मे जगह रखी है या नहीं ? गिलमान.. ?"

"इस विषय पर निर्णय मौलाना हैज़ी ही कर..."

अशोक मौर्य, "हूरें मर्दों के लिए है, तो गिलमान औरतों के लिए हो सकते हें ?"

काफ़िरकुश, "हिन्दुओं, ईसाइयों, मुसलमानों, किसी के स्वर्ग में स्त्री के प्रवेश का कोई प्रावधान नहीं है। लगता है.."

दलगजन, "हिदुओ मे पुनर्जन्मवाद चलता है—स्त्री को पुरुष का जन्म प्राप्त होने पर ही स्वर्ग प्राप्त हो सकता है। मोहम्मदीयत में पुनर्जन्म का प्रावधान नही हे अतः गिलमान वाली बात में दम लगता है. .।"

घासवाल और पत्नी दोनो इस बीच बिरयानी और रम में रम कर गम ग़लत कर रहे थे। पत्नी एकदम तन्मय थीं। किन्तु उन्हें विषय की भनक मिली। बोले, "वाद-विवाद त्यागकर ब्राह्मणवाद का विरोध करने से ही सफलता हाथ लग सकती है। पिछड़ी जातियों को आरक्षण मिले, अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित पद भरे जाए, अल्पसख्यको पर अत्याचार समाप्त किया जाए.. ।"

दलगजन, "लेकिन ये सब तो कॉग्रेसी दाँव है ! हम कॉग्रेस को उसी के अखाड़े में चित्त नही कर सकते। इसलिए हम पिट रहे हैं। हमारा पिछडी-जातिवाद यादववाद में सिमटकर रहा गया है; कुर्मी, लोध, मल्लाह वगैरह छिटक रहे हे। हमारा दलितवाद चर्मकारवाद मे सिमट गया है; सफाई-कर्मचारी, पासी, कोरी

इत्यादि छिटक रहे हैं। भारतीय जनता पार्टी वाले आगे आ रहे हैं—विश्वेश्वर दलेश्वर भी नही रहे, गोपालक के पास गाएं नहीं, घासवाल को कोई घास नहीं डाल रहा... ।"

"कॉंग्रेस बूढ़ी हो गई है। भारतीय जनता पार्टी में राष्ट्रीय स्वय-सेवक संघ से बाहर के लोग अछूत समझे जाते हैं और इसके अलग-अलग धडों में जूतो में दाल बॅट रही है। जिन निर्दल बुद्धिजीवियों में कॉंग्रेसी या जनतादलीय या कॉम्युनिस्ट छाप धर्मनिरपेक्षता के मुस्लिम वोट-बैंक और पेट्रो-डॉलर के कारण मुस्लिम-परस्त बन जाने से इन पार्टियों के प्रति वितृष्णा उत्पन्न हो गई थी, वे अभी से भारतीय जनता पार्टी की सकीर्ण संघवद्धता से उत्पन्न उपेक्षा से क्षुब्ध हैं। ध्यान रहे, राम की शरण मे जाने से पूर्व लोकसभा मे भारतीय जनता पार्टी के दो सदस्य थे। इस संकीर्ण एवं क्षुद्रतावादी पार्टी का भविष्य 'पुनर्मूषको भव' मे देखें। जिस पार्टी के आयाम व्यापक न हुए, जो अपने बाहरी असली हमदर्दों को न पहचान सके, जो विशाल जनवर्णो से घुलमिल न सके, वह दिल्ली पर लंबा कब्ज़ा नहीं कर सकती। इधर, सरकारी प्रचार माध्यमों पर कॉंग्रेस का कब्जा है, अखबारों पर सरकारी विज्ञापनों का; और पेट्रो-डॉलर वाले इनमें भी अपने फ़र्ज को अंजाम दे रहे है..."

दलगंजन, "लेकिन, गुरू जी, अपना दल तो जनता को कई टुकड़ों में बॉंटकर खुद टुकडखोर बनने की कसम खाए बैठा है : ब्राह्मणवाद बुरा है और यादववाद या अहीरवाद या ग्वालावाद अच्छा, रामवाद बुरा है और मोहम्मदवाद या बाबरवाद या जिन्नावाद अच्छा, समतावाद बुरा है और आरक्षणवाद अच्छा—इसे कितने दिनों तक जनता के गले उतारा जा सकता है ? यह न मानिए कि मैं दल की नीतियों की धज्जियॉं उड़ा रहा हूॅं। बाहर मैं वही कहता हूॅं जो दल के नेता कहते है। पर इन समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता। दल जनता को दलकर दलदल मे फॅसता जा रहा है। उसके टुकडे-टुकड़े हो चुके हैं... ।"

घासवाल, "इन समस्याओं पर विचार हो रहा है। पर हम लोग अपने जाल मे खुद फॅंस गए हैं। लेकिन जब तक नई पॉलिसी नहीं बनती तब तक .."

काफ़िरकुश ने नया पेग घासवाल की ओर बढ़ाया, "उस जाल से हम आपको बाहर निकालेंगे—पैसे मे बड़ा ज़ोर है ! पॉलिसी तो बस पॉलिसी है, पर मस्ती खालिसी है।"

ग़ज़नवी खान तैमूरी ने घासवाल की बीवी की ओर पेग बढ़ाया। दोनों ने अन्य पेग तैयार किए। सबने पी और मस्त हो गए। काफ़िरकुश, ग़ज़नवी खान तैमूरी, दलगंजन और अशोक मौर्य उठकर नाचने लगे। अशोक मौर्य ने घासवाल को उठाकर उन्हें भी नाचने का विवश किया। उधर, काफ़िरकुश ने घासवाल

की बीवी की बॉह पकड़ी तो वे ऐसे उठी जैसे देर से प्रतीक्षा में थी। नृत्य एवं गान का दौर चला :

अल्लाह ने भारत को मोहम्मद को दे दिया,
ऐ काफिरो। रहमत-करम का जश्न मनाओ।
मिल्लत को बढ़ाने के लिए बस जुटे रहो,
मोमिन विदेशियों को यहाँ खूब बसाओ।
'फार्वर्डिआ' को मारो, 'बैकवर्डिआ' बढ़ाओ।
खाली जगह को पाते ही झुग्गियाँ बनाओ।
मौका मिले जहाँ वहाँ दंगा-फसाद कर,
लूटो औ कत्ल करो और आग लगाओ।
ये मंत्र सेक्युलर हैं और सोशलिस्ट भी,
बस, लोकतंत्र का इन्हें आधार बनाओ...।

अचानक घासवाल ने नृत्यगान रोक दिया और चिल्लाए, "काफिर कुश कहाँ गया और मेरी...?" वे एकदम निराश लगे, दलगजन ने सांत्वना दी, "घंटे-आधघंटे मे दोनों आ जाएंगे।"

कई लोग ढूँढ़ने दौड़े। घासवाल वहीं प्रशाल की कालीन पर बैठ गए और धाड़ मारकर रोने लगे।

21. मिलावट-सम्मेलन[1]

वह सम्मेलन दिल्ली मे होते हुए भी अद्‌भुत था। 'दिल्ली में होते हुए भी' से अभिप्राय है कि यहाँ अधिकतर सम्मेलन मोहम्मद तुग़लक़ की रूह को शांति प्रदान करने के उद्देश्य से किए गए प्रतीत होते हैं। इस पर भी 'अद्‌भुत'। महत्त्व स्पष्ट है। यह सम्मेलन गुप्त (इन कैमेरा) था। भीड़-भाड़ नहीं, संवाददाता नहीं, फोटोग्राफर्स नहीं। गंभीर वातावरण !

सम्मेलन और आयोग ये दो शब्द मुझे इतने अधिक प्रिय हैं कि, चाहे इनका कुछ अर्थ हो या न हो, मैं इनके बिना जीवित नहीं रह सकता। सम्मेलन और आयोग लोकतंत्र के नेत्र हैं। कोई चाहे तो इन्हें महानेत्र कह सकता है। यदि कभी मंत्री बना तो एक आयोग यह निर्णय करने के लिए गठित करूँगा कि दूध अधिक पौष्टिक है या पानी ? ऐसे आयोग के गठन की प्रेरणा मुझे स्वतंत्र भारत की प्रथम स्वास्थ्य मंत्री राजकुमारी अमृत कौर के द्वारा प्राप्त होगी क्योंकि उन स्वनामधन्य नेत्री ने शुद्ध घी और वनस्पति तेल में कौन अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक है, यह तय करने के लिए विशेषज्ञ-दल नियुक्त किया था। वास्तव में आज भी इस प्रश्न के उत्तर की अपेक्षा है क्योंकि उस दल ने देशी घी के पक्ष में निर्णय दिया था जो मेरे मत से सांप्रदायिक था क्योकि परम-सांप्रदायिक हिंदुओं के आदि धर्मग्रंथ ऋग्वेद में घृत को 'यज्ञ का चक्षु' कहा गया है तथा हिंदू अपने नापाक बुतखानों में घी के दीए जलाते हैं--खेद है कि जन्म से ही धर्मनिरपेक्ष भाइयों ने विरोध नहीं किया और नेत्री स्वयं ईसाई थीं!

उस अद्‌भुत सम्मेलन में विचार-विमर्श का विषय था 'मिलावट'। विशेष आश्चर्य की बात यह थी कि उसमें नेता, अभिनेता, उद्योगपति, व्यापारी, अर्थशास्त्री, आचार्य (साहित्य), और धर्मध्वज-त्रय (एक शास्त्रार्थ-महारथी आर्यसमाजी, एक मौलाना, एक मिशनरी ईसाई) साँझा मंच पर उपस्थित थे।

---

1. मासिक 'अभिव्यक्ति के नए छितिज' (अलीगढ़) के जनवरी 1991 अंक में शंभुनाथ यादव का 'मिलावट तकनीकी की जय' हास्यलेख देखकर हर्ष हुआ क्योंकि 'जी हाँ यह दिल्ली है' ग्रंथ (1978 ई०) के 'मिलावट' (जिस पर यह 'मिलावट-सम्मेलन' आधृत है) का स्मरण हो आया। यादव का पल्लवन स्वतंत्र एवं पर्याप्त मौलिक है।

पहली बार मानव की पशुओ से विशिष्टता स्पष्ट हुई; सिह, शृगाल, गज, अज इत्यादि को एकत्र नहीं देखा जा सकता ! नेता, विशेषतः स्वतंत्र भारत के नेता, के अनिवार्य कर्तव्य चार हैं : उद्घाटन, भाशन, आश्वासन, चाटन ! यहाँ नेता के लिए चारों का प्रबंध था। उद्घाटन नेता का जन्मसिद्ध अधिकार है; चाहे कवियों का सम्मेलन हो या छवियों का, कलाकारों का या कुंभकारो का, वैज्ञानिको का या दार्शनिकों का, शांतिवादियों का या आतकवादियों का, उद्घाटन नेता ही करता है। इस सम्मेलन का उद्घाटन भी नेता कर रहा था। दुग्धफेन-स्वच्छ परिधान (कहते है, खादी का) को नवयुग-किरीटिका (गांधी-टोपी) भव्यता प्रदान कर रही थी। सम्मेलन में उसकी तूती बोल रही थी (और सम्मेलन को नक्कारखाना कोई नहीं कह रहा था) ! नेता का शरीर विशाल था। मेरा मत है, जिस व्यक्ति का शरीर विशाल न हो वह सच्चा नेता हो ही नहीं सकता। वह विशाल समस्याओं का विशाल भार कैसे वहन करेगा ? "मोटे से डरना मत, पतले से लड़ना मत" कहावत यहाँ बेकार साबित हो जाती है। अमेरीका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, कैनेडा, इटैली, जापान, चीन, इस्राइल इत्यादि जाने-माने देशों म नेता मोटा नहीं होता, क्योंकि वहाँ समस्या-भार कम है। किंतु भारत में ऐसा संभव नहीं, जहाँ बकौल नेहरू "प्रत्येक भारतीय एक समस्या है !" पूज्य नेहरू इसीलिए संसद के भीषण कार्यकलाप के बीच छोटे-मोटे चित्र बनाया करते थे और सास्कृतिक कार्यक्रमों में भारी रुचि लेते थे ! श्रीमती इदिरा गाधी (बकौल अटलबिहारी वाजपेयी) पंजाब-समस्या की भयावह जटिलता को देखते एक सर्वदलीय बैठक मे बिल्ली बना रही थीं।

एक्स्पीरिअंसदार मंत्री सदा सीरिअसतापूर्वक सोचता है। वह सदा मुस्कराता रहता है। सम्मेलन में नेता की मुसकान डरावनी लग रही थी (लगता था, यहाँ दगा या हत्याकांड या अग्निकाड होने जा रहा है)। आदर्श नेता वह है जिसके मुस्काने पर दर्शक भयभीत हो जाए। अमेरीका के एक प्रसिद्ध दंत-विशेषज्ञ द्वारा फिट किए गए 'दंतक' यानी डेंचर' अस्थि-स्वच्छ स्मित द्वारा सबको अभिभूत कर रही थी। सम्मेलन का मंच-संचालन सेठ किरोड़ीमल कर रहे थे। उन्होंने अज स्वर में प्रार्थना की कि नेता उद्घाटन करें और नेता ने एक प्रचंड स्मित के साथ इसे स्वीकार किया। भाषण चालू हुआ। पहले औपचारिकता (जिसे सम्मेलन या सभा की आत्मा कहा जा सकता है) का परिपालन हुआ, तब तत्त्व निरूपण, "यह सम्मेलन एक यथार्थवादी सम्मेलन है। आज देश को यथार्थवाद की महती आवश्यकता है। मिलावट एक स्पष्ट यथार्थ है, इसे कोई वायवीय आदर्श झुठला नहीं सकता। मै इस सम्मेलन का संस्तवन करता हूँ, जिसमें निरर्थक विचार-विनियम के स्थान पर सार्थक विश्लेषण भी होगा, संश्लेषण भी। जहाँ तक शासन

का संबंध है, वह मिलावट को आवश्यकता समझता है, यद्यपि देश के लक्ष-लक्ष पुरातनवादियो एवं रूढिवादियों को असतुष्ट न करने के उद्देश्य से इसे स्पष्ट रूप से घोषित नहीं कर पाता। यदि शासन वास्तव मे मिलावट का विरोधी हो तो मिलावट हो ही न पाए। डंडे से सब डरते हैं। मिलावट से असंख्य लाभ है, जिनका विवेचन यहाँ होना ही है। मै विस्तार में नहीं जाता। केवल इतना कह सकता हूँ कि यदि मिलावट न हो तो इससे संबधित शत-शत उद्योगपति, सहस्र-सहस्र व्यापारी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष चदा देने में आनाकानी करेगे और यदि देंगे भी तो एकदम कम। इससे देश में स्थायी एवं सुदृढ लोकतंत्र स्थापित होना असंभव हो जाएगा। यही नहीं, यदि मिलावट न हो तो शासन के सहस्र-सहस्र इस्पेक्टर निर्धन हो जाएंगे। आज जनता, विशेषकर कन्याओं के पिताओं में इंस्पेक्टर पद का जो गौरव है, वह खाक मे मिल जाएगा। सारे इंस्पेक्टर वेतन वृद्धि का नारा लगाएंगे, जिसमें कई नई समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी। मिलावट शासन की रक्षा करती है। शासन स्वयं मिलावट का प्रयोग करता है। हमारे समाजवाद का पोषण पूंजीवाद करता है, हमारे 'आरक्षण' का कारण सत्ता होती है। हमारे 'ग़रीबी हटाओ' का कार्यान्वियन अमीरी करती है, हमारे अनुदान दाता स्वयं ग्रहण करते हैं। मिलावट राष्ट्र की शक्ति है।"

नेता के भाषण का स्वागत तुमुल करतल-ध्वनि लगातार करती रही। सेठ किरोडीमल के एक स्थानीय सिथेटिक्स कारखाने के करीब डेढ़ सौ व्यक्ति उनके संकेत पर नारों के साथ तालियाँ पीटने थे। ट्रक का आना-जाना, छोले-भटूरे के साथ दो-दो केलों का पैकेट, चाय, पान-पराग की पत्ती या बीड़ी का बडल और बीस रुपए का लाभ ! सेठ किरोड़ीमल ने भूरि-भूरि प्रशंसा भी की, "...यही ठोस दृष्टिकोण है। राज-काज शाब्दिक इंद्रजाल द्वारा नही चलाया जाता।..." अब उन्होने अभिनेता से बोलने का अनुरोध किया।

अभिनेता की आयु पचास वर्ष थी पह वह लगता तीस का था। विदेशी सूट, टाई, बूट। विदेशी काला चश्मा। हीरे के बटन। अमेरिका में खरीदे सोने की सच्चे लाल से जटित भारी अँगूठी। तीन अलग-अलग रत्नों से जड़ी अलग-अलग धातुओं की तांत्रिक अँगूठियाँ। इत्यादि-इत्यादि। उसने 'लिखित' भाषण दिया (कुछ-कुछ रुक-रुककर)। औपचारिकता के अनंतर, सार था, "...मिलावट कहाँ नहीं है ? नृवंश स्वयं मिश्रित हैं।...जिस नस्ल में मिलावट नहीं होती वह कमज़ोर और कुरूप हो जाती है। आज के संसार के महानतम राष्ट्र अमेरिका को लीजिए ! यूरोप की सारी नस्लो, एसिआ[1] की लगभग सारी नस्लों, अफ्रीका की लगभग सारी नस्लों की मिलावट के बल पर वह संसार

1. 'एशिया' गलत है। 'एसिया' भी गलत है।

का सिरमौर है ! कल के संसार के महानतम राष्ट्र ब्रिटेन को लीजिए; केल्ट, रोमन, एंगेल्स, सैक्सन, जूट या यूट, फ्रेंच, जर्मन इत्यादि अनेकानेक नस्लों की मिलावट ने उसे विश्व-इतिहास में एक विलक्षण स्थान का अधिकारी बना दिया है। भारत के पंजाब का उदाहरण लीजिए। आर्य, ईरानी, किन्नर, यक्ष, नाग, गधर्व, यूनानी, शक, हूण, अरब, तुर्क, मंगोल इत्यादि का मिश्रण ! इन-सब तथा द्रविड़, कोल, भील, मुडा, संथाल इत्यादि के मेल से महान् भारतीय राष्ट्र का उदय हुआ है। विस्तार में न जाकर मैं सिने-जगत् में आता हूँ। भारतीय चलचित्र संसार में प्रथम स्थान प्राप्त कर चुका है। उसने अमेरीका और जापान तक को पछाड दिया है। इसका कारण मिलावट है; हम भारतीय और पाश्चात्य कथा-साहित्य में मिलावट करते हैं, भारतीय और पाश्चात्य अभिनय-कला में मिलावट करते हैं। आज भारत खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर है। हम केवल अपनी जनता को ही नहीं खिला रहे; पाकिस्तान की काफी फालतू आबादी को कच्छ के रण से मुबई तक बसाकर उसका पेट भी पाल रहे है—आखिर, पाकिस्तान भारत का पुत्र ही तो है, भले ही कैसा भी हो; बांग्ला देश की फ़ालतू आबादी, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, पश्चिमी बंगाल, पूर्वी बिहार, दिल्ली इत्यादि में बसाकर उसका पेट भी पाल रहे हैं और लाखों चकमा बौद्ध शरणार्थियों को लगभग स्थायी रूप में बसा रखा है।—आखिर बांग्ला देश भारत का पौत्र ही तो है, भले ही कृतघ्न हो; तिब्बत भारत का सांस्कृतिक शिष्य है ! लंका के तमिल आतंकवादियों और शरणार्थियों को भी हमने मौत के मुँह से बचाया है।—हालाँकि, उन्होने भी भारत की क्षति की है' लंका तो भारत का पुत्र भी है, शिष्य थी। बूढ़े बाबा भारत को, बूढ़े बाप भारत को, बूढे गुरु भारत को पोते, बेटे, चेले आँखें दिखाए तो क्या वह अपना फ़र्ज़ भूल जाए ?"

"नही ! नहीं ! नहीं !" प्रशाल[1] गूँज उठा। भारी तालीबाज़ी हुई।

नेता ने आसन पर बैठते ही अभिनेता की पीठ पर हाथ फेरा और पूछा, "आपको दादा साहब फालके पुरस्कार..."

"ऐसे नसीब कहाँ ?"

"नेता ने सचिव[2] को संकेत किया। उसने नाम नोट कर लिया। नेता ने पंजाबी-शिष्टाचार के परम सम्मान दाएं हाथ को उनके घुटने पर लगाने के द्वारा विशेष संतुष्ट किया।

अब अर्थशास्त्री बुलाए गए। अर्थशास्त्री दुबले-पतले, चश्मेदार, गभीर विद्वान् थे, जिनके मित्र उन्हें सादर 'चलता-फिरता कंप्यूटर' कह देते थे। वे वस्तुपरक

---

1 हॉल।

2 पी. ए।

अध्ययन के आचार्य थे। उन्होंने अधिक औपचारिकता के बिना ही आरंभ कर दिया, "मिलावट मिटाना देश के अर्थतंत्र के लिए भयावह सिद्ध होगा। इस समय प्रत्यक्ष मिलावट के धंधे में 10710083 व्यक्ति लगे है, यदि उनके आश्रितों को जोड़ा जाए तो सख्या 50000000 से ऊपर जाती है; प्रत्यक्ष मिलावट से मतलब है, गेहूँ इत्यादि अनाजों और दालो में खेतो में ही पैदा होने वाले अनुपयोगी अथवा व्यर्थ अथवा यत्किंचित् हानिकर कण मिलाना, मिट्टी के कण या टुकड़े मिलाना, आटे में खड़िया या अन्य मिट्टी मिलाना, घी में वनस्पति तेल या इस अथवा उस पशु की चर्बी मिलाना, तेलों में मूल्यहीन अथवा अल्पमूल्य अनुपयोगी अथवा यत्किंचित् हानिकर कणों का सार मिलाना, काली मिर्च में पपीते के बीज मिलाना, पिसी धनिया में घोड़े-खच्चर या गधे की लीद मिलाना, पिसी हल्दी मे गेरू या ईट का बारीक चूरा या चिकनी लाल मिट्टी या इसी रंग का बुरादा मिलाना, इत्यादि-इत्यादि। परोक्ष मिलावट से मतलब है, धागों में मिलावट, धातुओं मे मिलावट इत्यादि-इत्यादि। यदि मिलावट न हुई तो देश में खाद्यान्नों में 121 47 लाख टन की कमी हो सकती है, जिससे सारा आर्थिक संव्यूहन ही लड़खड़ा जाएगा। इसीलिए मिलावट के मामले मे हमें और अधिक उदार नीति अपनानी चाहिए।" अर्थशास्त्री के गंभीर भाषण में सत्रह आँकड़े और आठ चार्ट मौजूद थे, जिसे भाषण से कुछ ही पहले बाँटा गया था। सब लोग गद्गद हो गए। नेता ने योजना आयोग की सदस्यता के लिए उनका नाम अपनी निजी डायरी में खुद टाँक लिया, अभिनेता ने 'उज्जुवल' धन के सदुपयोग हेतु उन्हे परामर्शदाता बनाने का फ़ैसला किया, सेठ किरोड़ीमल ने उन्हें आयकर-विषयक सलाहकार बनाने पर विचार किया। अन्यों ने उन्हे श्रद्धापूर्वक देखकर ही संतोष प्राप्त कर लिया।

अब आचार्य (साहित्य) की बारी थी। यों, वे धोती-कुर्ता पहनते थे पर आज अवसर की अनुकूलता को देखते हुए चूड़ीदार पाजामा और शेरवानी की नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद, जैलसिंह, वेंकटरामन, विश्वनाथप्रताप सिंह, शंकरदयाल शर्मा इत्यादि की शाही पोशाक की नफासत में दनदना रहे थे। यह धर्मनिपरेक्ष वेषभूषा समाजवादी भी है। उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिल चुका था और ज्ञानपीठ पुरस्कार की संभावना थी क्योंकि वे सृजनात्मक साहित्य भी लिखने लगे थे। चश्मे के नीचे उनकी चटकदार आँखें 'खोजी' होने की सूचना देती थीं। उन्होंने नेता, अभिनेता और अर्थशास्त्री प्रभृति के अनुकरण में रुक-रुककर ही सही, अंग्रेज़ी में बोलना आरंभ किया, यद्यपि विषय-बिंदु हिंदी में लिख लाए थे, "...मिलावट मानवीय मनोविज्ञान की उद्भूति है। अन्तर्द्वन्द्व क्या है ? परस्पर-विरोधी भावों की मिलावट !...प्रत्येक विचार में, प्रत्येक भाव में, प्रत्येक

कार्य मे मिलावट अनिवार्य है। कबीर ने अद्वैतवाद में सूफी-दर्शन के प्रेम-तत्त्व की मिलावट की थी, प्रसाद ने भारतीय आनंदवाद मे पाश्चात्य मनोविज्ञान की मिलावट की। 'भोगा हुआ यथार्थ' हो या 'क्षण का महत्त्व', कुंठा हो या विकृति या संत्रास या अजनबीयत—सब मे भारतीय जीवन में पाश्चात्य बिंदुओं की मिलावट रहती है। जितना पारंपरिक साहित्य रचा जा रहा है, सब घिसा-पिटा है। जितना आधुनिक साहित्य है, सब में मिलावट की शान है ! मिलावट साहित्य की आत्मा है। मैं आ० कुन्तक या कुन्तल कृत 'वक्रोक्तिजीवितम्' की परपरा को आगे बढ़ाते हुए 'मिश्रणजीवितम्' नामक गहन ग्रंथ में इस तथ्य को स्पष्ट करने का क्रांतिकारी प्रयास कर रहा हूँ।

...मिलावट से अनेक मनोवैज्ञानिक और यथार्थ लाभ भी हैं। सींकिया पहलवान भी शुद्ध दूध के नाम पर सपरेटा पीकर बलशाली होने की अनुभूति करता है। आज देश में देशी घी की कमी है। यह मिलावट का प्रताप है कि यह कमी कहीं महसूस नहीं होने पाती। वनस्पति तेल में देशी घी का पुट देकर उसके द्वारा उदार व्यापारी समाज ने जाने कितने खाने-पीने के शौक़ीनो को अपार मनोवैज्ञानिक संतोष प्रदान कर रहा है। स्टार्च या सोख़्ते की मलाई से असख्य उपभोक्ता अपार मानसिक संतोष प्राप्त करते हैं।...मैं एक महान् उदाहरण के द्वारा मिलावट की पवित्रता का वर्णन कर रहा हूँ। मेरे एक कवि मित्र हैं। बडे उद्भट क्रांतिकारी, दिग्गज प्रगतिवादी और वैसे ही तेज़ ड्रग्स लेने वाले। नाम नहीं ले सकता। एक बार जीवन से निराश होकर आत्महत्या का विचार कर बेठे। एक मित्र केमिस्ट से विषाक्त औषधि ले आए। पूरी शीशी गटक गए। मरने को तैयार बैठे थे। पर एक...दो...दस...मिनट बीत गए और वे यह निश्चय न कर पाए कि ज़िन्दा हैं या मर गए। परीक्षण के तौर पर उन्होने दीवार पर हाथ पटक दिया, पर खून और दर्द ने बताया कि वे ज़िन्दा हैं। कुछ देर बाद, परीक्षण की पुष्टि के लिए ही, उन्होने सिर को दरवाज़े पर पटकना शुरू किया, लेकिन ननीजा मूलतः पहले-जैसा ही गया। इतना अवश्य हुआ कि पड़ोसी ओर मकान-मालिक श्री मलावाराम छावडा ने आकर डॉट पिलाई, "क्या रात के समय भडभड़ मचा रखी है ? यह खाला जी का बाड़ा नहीं, शरीफ़ों की बस्ती है।" ओर वे स्वर के साथ सुरा का सौरभदान भी करते गए जिससे कवि को तरावट की अनुभूति हुई। विस्तार मे न जाकर, मैं यह कहना चाहता हूँ कि मिलावट के दम के जलूसे पर एक महान् प्रगतिशील कवि का अमूल्य जीवन बच गया। मिलावट के वरदान के कारण ऐसे अनेक जीवन बचते रहते हैं। मैं तो प्रातः स्मरणीय पूज्यवर्य नेता से प्रार्थना करता हूँ कि वे मिलावट को कानूनन अनिवार्य कर दें।"

आचार्य के भाषण का भारी प्रभाव पड़ा। नेता न पद्मभूषण अलंकार के लिए, अभिनेता ने आत्मकथा मे संशोधन के लिए, सेठ किरोड़ीमल ने अपनी पुत्री के मोटे ट्यूशन के लिए, अर्थशास्त्री ने अपनी पुस्तक के अनुवाद के लिए उनका नाम टॉक लिया। अन्य व्यक्ति श्रद्धापूर्वक दर्शन करके ही कृतार्थ हो गए।

अब धर्मध्वजों की बारी थी। सेठ किरोड़ीमल शास्त्रार्थ-महारथी को बुलाने जा ही रहे थे कि नेता ने मौलाना साहब को वरीयता प्रदान करने का आदेशात्मक संकेत किया, "इससे धर्मनिरपेक्षता का सम्मान हो जाएगा।" मौलाना साहब भारी-भरकम बदे थे। सेठ किरोडीमल ने अभिनेता की सहायता से उठाया। वे इस ज़माने में भी तुर्की टोपी के कायल थे। ऑखों में ममीरे के सुर्मे की हल्की लकीरें, ओंठों पर सफ़ाचटी पर मूँछे विशाल और दाढी तोंद को छूती हुई। विराट् शेरवानी और विशाल चूड़ीदार। मोटे मोजे। क़ुरान और हदीस के नामी विद्वान्। औपचारिकता देर तक चली क्योंकि कुरान की आयतों का आलम था। हर आयत पर जनता में कई भाई और नेता-अभिनेता 'आमीन ! आमीन !' कहते। इसके बाद तत्त्व पर उतरे, "हिन्दोस्तान बना ही मिलावट से है। कई हज़ार साल पहले आए हमलावर आरियन्स और पुराने दरबिड और नेटिव्ज़ मे मिलावट हुई, जिसमे गंधरव, किन्नर, नाग और यच्छ वगैरह की मिलावट जुडी। चूँकि हिन्दोस्तान न मुल्क है, न कौम, क्योंकि यह कॉन्टिनेन्ट है जिसमें जुदा-जुदा दर्ज़नों कौमे रहती हैं, निरी जुबानें है—यहाँ तक कि इसको नाम भी ईरानियों ने दिया, जिसका 'इंडिआ' तर्जुमा यूनानियों ने किया ! हिन्दूधरम एक कल्चर है, दीन या ईमान नहीं; जिसकी न कोई एक आसमानी किताब है, न कोई एक पैगम्बर। हिन्दू आसपास में लड़ते-भिड़ते रहते थे। इनमें एकता लाने के लिए सेक्युलर रहनुमा महमूद गज़नवी को सत्तरह बार यहाँ आना पड़ा। उस लासानी गाज़ी ने बुतपरस्ती के कुफ्र को मिटाने की भी कोशिश की, जिस पर बाद में बख्तियार खिल्जी, इल्तुत्मिश, काला पहाड़, फीरोज़ तुगलक़, सिकंदर बुतशिकन, सिकंदर लोदी, बाबर, अहमदशाह अब्दाली, औरंगज़ेब, टीपू सुल्तान जैसे अजीम रहनुमाओं ने भी हाथ आज़माया और लाखों-करोड़ों काफ़िरों को मोमिन बनाकर दोज़ख की खौफ़नाक आतिश से नज़ात दिलाई. ."

कई भाइयों ने तालियाँ बजाई और "अल्ला हु अकबर" के पवित्र नारे से प्रशाल गुंजरित हो उठा। नेता ने "क्या खूब ! क्या खूब ! !" कहा और अभिनेता ने सलाम फटकारा। नारा लगा : सेक्युलरइज़्म ज़िन्दाबाद !"

"मोहम्मद बिन-क़ासिम, महमूद गज़नवी, मोहम्मद गोरी, काला पहाड़, सिकन्दर बुतशिकन, टीपू सुल्तान वगैरह ने सिंध से बंगाल तक, कश्मीर से केरल

तक प्रोग्रेसिव और सेक्युलर निज़ाम फैलाया और इस कॉन्टिनेट को मुल्क बनाया, फिरकों और कबीलों को कौम का सबक सिखाया...''

''अल्ला हु अकबर !''

''सेक्युलरइज़्म जिन्दाबाद !''

''हिन्दोस्तान को सिले कपडे पहनना मुसलमानों ने सिखाया, लज़ीज़ खाना-पीना मुसलमानों ने सिखाया, झोपडों के मुल्क में ताजमहल बनाया, 'भाखा' की जगह हिन्दोस्तानी ज़ुबान दी, सूफ़ी फ़लसफा दिया, पत्थर-लकड़ी पूजने की जगह एक अल्लाह की इबादत सिखाई—और, एक मिलीजुली कल्चर बनी जो बिना मिलावट के नामुमकिन थी।''

मौलाना की तखरीर के सेक्युलरइज़्म से नेता इतने प्रसन्न हुए कि राज्य सभा का मनोनीत सदस्य बनाना तय कर लिया। कॉमरेड नानकदीनराम ने मोजे खोलकर उनके पाक कदम चूमे। अभिनेता ने एक साथ तीन सलाम दागे। सेठ किरोड़ीमल के चेहरे पर कई किस्म की लकीरें खिंचतीं रहीं लेकिन वे बोले कुछ नहीं। बाकी लोग मुँह बाए या आँखें फैलाए या खीसें निपोरे सब-कुछ देखते-सुनते रहे।

अब नेता के इशारे पर ईशाई मिसनरी, फ़ादर आइवन आमंत्रित किए गए। फादर आइवन नाम विदेशी था, चाम देशी, गहन श्यामल वर्ण विशद श्वेत-परिधान में दमक रहा था, चश्मे की सुनहरी फ्रेम आनन की श्यामता के अतिरेक मे शतगुणित द्युति विकीर्ण कर रही थी। उनके भाषण का सार था, ''इंडिआ नाम ग्रीस ने दिया और कॉन्स्टिट्यूशन ने उसको प्रेफ़ेरेंस दिया जो 'इंडिआ, दैट इज, भारत' से क्लीअर है। फेमिलिअरली, लोकली, नेशनली एंड इंटरनेशनली कंट्री का नाम इंडिआ है जो खुद-ब-खुद मिलावट से बनाया गया। जीसस क्राइस्ट ने आदमी के लिए हेवेन का डॉर ओपेन किया...''

नेता ने ताली बजाई, अभिनेता ने नारा लगाया, ''सेक्युलरइज़्म ज़िन्दाबाद।''

विराट् घोष गूँजा, ''सेक्युलरइज़्म ज़िन्दाबाद !''

सेठ किरोड़ीमल हक्के-बक्के से लगे, मौलाना ने मुँह बिदकाया।

''एशु का ट्रांस्लेशन है ईश्वर, ख़ीष्ट का ट्रांस्लेशन है क्रिश्न। गिरजाघर या चर्च में सीता पूजा करने गया था जैसा कि तुलसीदास ने लिखा है : 'सर समीप गिरिजागृह सोहा' । भारत में धर्म में एशु का मिलावट है, मोहम्मडनइज़्म का किताब कुरान में एशु या जीसस, यूहन्ना या जॉन एट्सेट्रा का मिलावट है। सारा हिन्दू एण्ड मोहम्मडन वेस्ट का चीज यूज़ करता है; ड्रेस से प्रेस तक, वाइन से वार तक। वर्ल्ड मिलावट है !''

तालियाँ बजीं।

'सॉक्रेटीज' ने सेस्क्रिट लैग्वेज बनाई—वईस ही प्रूफ हैं। सेंट पॉल में पाली बनाई, इसको तो डकी भी अंडरस्टैण्ड कर सकता है ! इंडिआ में ड्रामा ग्रीस से आया जो 'यवनिका' से ही जाहिर है—कॉमरेड रहूल सेंक्रिटायान वगैरा इसको मानता था। रामराज्य प्लेटो के 'रिपब्लिक' का ट्रास्लेशन है। सेंट पलटू का नाम प्लेटो का इमिटेशन था—आज भी कई मेन पलटू नेम का मिल जाएगा।''

''फादर आइवन जिन्दाबाद !''

''सेक्युलरइज़्म जिन्दाबाद !''

''इंडिआ का लोग कूडा है। इसमें क्रिश्चिअन मिशनरीज बढ़िया हॉस्पिटल्स खोलता है, बेस्ट स्कूल्स खोलता है जिसमें लीडर्स, प्लीडर्स, एरिस्ट्रोक्रैट्स, ब्यूरोक्रैट्स, इंडस्ट्रअलिस्ट्स, बिजनेसमेन और बड़ा-बडा लोग का बच्चा को ह्यूमन-बीइंग बनाया जाता है। हिंदूज, मोहम्मडंस, सिख्स, बुद्धिस्ट्स, सब का गार्जिअस एडमिशन के लिए गिडगिड़ाता है, खीसें निपोरता है ..''

''सेक्युलरइज़्म ज़िन्दाबाद !''

''इंडिअंस को ग्लोरी फॉरेनर्स देता है- मदर टैरेसा एण्ड डालाईलामा को नोबेल पीस प्राइज़ मिला। किसी हिंदू या मोहम्मडन को नहीं। मिलावट से ग्लोरी है।''

फादर आइवन के भाषण की नेता ने दिल खोल कर तारीफ की, ''भारत मे ईसाई मज़हब का फ्यूचर वेरी-वेरी ब्राइट है। नागालैंड का नाम एकदम इंटरनेशनल है; यह और मिजोराम तथा मेघालय तीन क्रिश्चियन स्टेट्स पहले ही बन चुका है !'' फादर ने नेता के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया और फिर, जैसे कुछ स्मरण-सा आ गया हो, तुरत खींच लिया। पर प्यार से बोले, ''पहले जब पोप इंडिआ आया तब प्रेसिडेंट, वाइस-प्रेसिडेट एण्ड प्राइम मिनिस्टर बॉबे दौडा गया, बाद में जब पोप डेल्ही आया तब प्रेसिडेंट हाउस में प्राइम मिनिस्टर राजीव ने घुटना टेककर नमन किया...!'' नेता ने कहा, ''यही तो सेक्युलरइजम है।''

अब शास्त्रार्थ-महारथी की बारी आई। मंत्रपाठ इत्यादि के अनंतर उनका भाषण चला,'' ..वेदोऽखिलोधर्ममूलम् ! वेद के विरोध से बौद्धधर्म और जैन धर्म निकले, उपनिषद् के अद्वैतवाद से सिख पंथ निकला। बाइबिल के आरंभ में 'जिनेसिस' या जनन या उत्पत्ति का वर्णन ऋग्वेद के नासदीयसूक्त से प्रभावित है और जलराशि पर ईश्वर की आत्मा के तैरने का वाक्य तो ठेठ शब्दानुवाद ही है। 'ओल्ड टेस्टामेंट' मे भारत का दो बार उल्लेख है। एशु शब्द वेद एव उपनिषद् के ईश्वर का अनुवाद है क्योंकि कट्टर ईसाई मैक्स मुलर तक ने 'द ऋग्वेद इज़ द फर्स्ट बुक इन द लाइब्रेरी ऑफ मैनकाइंड' अर्थात 'ऋग्वेद मानव जाति के पुस्तकालय का प्रथम ग्रंथ है' लिखकर सत्य स्वीकार किया है। एशु

का स्वयं को ईश्वरपुत्र मानना तथा कहना कि 'स्वर्ग का राज्य तेरे अंदर' बृहदारण्यक उपनिषद् के महर्षि याज्ञवल्क्य के 'अह ब्रह्मास्मि' एवं छांदोग्य उपनिषद् के महर्षि उद्दालक के 'तत्त्वमसि' के स्पष्ट प्रभाव का परिणाम है। बेनीडिक्ट्स मोटेक्रोसा ने एशु को अद्वैतवादी माना है, विल ड्यूरॉ ने एशु के क्षमा-दया-उपदेश पर बुद्ध का प्रभाव स्वीकार किया है। आदम का अर्थ हे आदिम। 'आद' और 'समूद' प्राचीन जातियों का कुरान में उल्लेख है जो 'आदि' में 'समुद्र' के मार्ग से आई भारतीय जातियों का सूचक है। संगे-असवद को राहुल साकृत्यायन जैसे पश्चिम-भक्त बौद्ध विद्वान् तक ने 'मक्केश्वर' कहा है। हाजी आज भी एत गैरसिला श्वेत-परिधान अहराम धारण करते हैं, स्नान को महत्त्व देते हैं, परिक्रमाएं करते हैं, ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हैं..."

मौलाना गरजे, "सांपरदायिकता नहीं चलेगी !"

फादर आइवन ने चीख़ मारी, "डोंट बी कॉम्युनल !"

कॉमरेड नानकदीनराम दहाडे, "सांप्रदायिकता मुर्दाबाद !"

(नेता ने सलाह दी, "बात मिलावट पर चल रही है !")

अभिनेता ने बताया, "टु द पॉइंट बोलिए।"

सेठ किरोड़ीमल चुप। जनता बग़लें झॉक रही थी।

शास्त्रार्थ-महारथी हक्के-बक्के रह गए, पर बोले, "मौलाना और फादर के मिथ्या प्रलाप का उत्तर साप्रदायिकता है ? मैं मिलावट पर ही आ रहा था: ईसाई ओर मोहम्मदी मज़हबों में ऋग्वेद के "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" और "एक सत बहुधा कल्पयन्ति" के "एक" (ईश्वर) की मिलावट है—सेंट शब्द संत शब्द से ही निकला है। भारत जगद्गुरु है..."

नेता चिल्लाए, "सांप्रदायिकता नहीं चलेगी।"

फादर मिमियाए, "यू आर हिंदू फंडामेंटलिस्ट।"

मौलाना गुर्राए, "कॉम्युनल रायॅट हो जाएगा। सेक्युलरइज़्म या इस्लाम!"

शास्त्रार्थ-महारथी को बैठाना पड़ा। कॉमरेड नानकदीनराम उन्हे रक्ताक्त नेत्रो से देखते रहे और बोले, "न हुआ पश्चिम बंगाल जहॉ आनंदमार्गियों को थोक के भाव कत्ल किया जाता है। न हुआ केरल जहॉ राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ वालों को काट डाला जाता है..."

शास्त्रार्थ-महारथी ने मंद्र रव में व्यंग्य किया, "न हुआ स्तालिन और न हुआ माओ ! गोर्बाच्योव का ज़माना है कॉमरेड !"

सेठ किरोड़ीमल ने सबको शांत किया। उनके भाषण का सार था, "विना मिलावट के गुजर कहॉ ? सारी चीज़ें कम पड जाएंगी। अकाल पड जाएगा। लाखों लोग मर जाएंगे। कई चीज़ें अच्छी नहीं लगेंगी। तरबूज़ में लाल रंग की

मिलावट मन को मोह लेती है, वह मीठा न होने पर भी मीठा लगने लगता है और मीठा हुआ तो बेहद स्वादिष्ट लगने लगता है। बर्फी मे मैदा या सूजी न मिलाई जाए तो खोए की कमी पड़ जाएगी और लोगों को मन मारना पड़ेगा। दूध मे पानी या पानी में दूध न मिलाया जाए तो करोडो लोगों को दूध के दर्शन ही न हो पाएगे और लाखों बच्चे तरस-तरसकर मर सकते हैं। घी की समस्या जटिल हो जाती, यदि मिलावट का सहारा न होता। यदि मिलावट न हो तो जनता का स्वास्थ्य मटियामेट हो जाए। मान लीजिए, पिसी मिर्च में यदि लाल बुरादा न मिला हो तो लोग नाहक ही सी-सी करें, ऑसू बहाए, बीमार पड़ें, काली-मिर्च एक तेज-तर्रार गर्म-मसाला है, पपीते के बीज अपनी तरावट से उसे 'मातदिल' कर देते हैं। धनिया ठंडी चीज है, यदि उसमें बुरादा न मिला हो तो लोग सर्दी से कष्ट पाएं।...भारत के सारे उद्योग, भारी हों या हल्के, सच्चे हों या झूठे, नए हों या पुराने मिलावट के साथ जुड़े हैं। यह भी निर्विवाद है कि धर्मो, मज़हबो, साहित्य, राजनीति, सब में मिलावट की छटा छिटकी हुई है। इसलिए यह सम्मेलन सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित करता है कि मिलावट को सार्वभौम राष्ट्रीय उद्योग घोषित किया जाए तथा इसके दिग्गजों को भारतरत्न, पद्मविभूषण, पद्मभूषण, पद्मश्री से अलंकृत किया जाए...''

और, ठीक इसी समय पड़ोस के सरदार सिघाड़सिंघ की हाहाहूती आवाज ने ऑखे खोल दीं, ''बाश्शाओ ! कब तक सोओगे ? आठ बज रहे है।''

22. द्वादशरस और बस !

'द्वादशरस और बस' शीर्षक देखकर परम्परावादी आचार्य चौंक पड़ेंगे क्योंकि वे शृंगार, वीर, करुण, शांत, हास्य, अद्भुत, भयानक, रौद्र और बीभत्स रसो की शृखला के बंदी होने में ही गर्व का अनुभव करते है। भारत में परम्परावाद या रूढिवाद की धूम है : आर्यसमाजी ऋग्वेद से एक डग इधर-उधर आने को तेयार नहीं; सनातनी गीता और रामायण (रामचरितमानस) को अलम् मानने से टस से मस नहीं हो सकता; प्यारा मुसलमान भाई तो खैर खातिमुन्नबी के बाद कुछ भी स्वीकार करना कुफ्र ही समझता है और इस विषय की सिहगर्जनाएं करता रहता है जिसमे परम-विकासवादी विविधदलीय बंधुओ के समर्थन का मिमियाने का स्वर मधुरता की सृष्टि का आयास करते नहीं थकता; और तो-ओर, प्रगतिवाद का एकाधिकारी साम्यवादी तक 1883 ई० (मार्क्सधर्म के भक्तो के अवतार या पैगम्बर या गुरु कार्ल मार्क्स के निधन का वर्ष) में इतिहास को खत्म हुआ मानता है तथा लेनिन की शवपूजा को परम धर्म मानता है[1] परम्पराभक्त कॉग्रेसी भाई भी व्यक्ति-पूजा के बंदी हैं। भाजपाई भाई (भारतीय जनता पार्टी वाले) नागपुर के एकतीर्थवादी हैः 'श्वास में प्रश्वास में निज नेता पर विश्वास हो।' (हास मे परिहास में इस जीवन का ह्रास हो।) इस स्थिति में साहित्य के परम्परावादी आचार्य[2] किसी भी नई उपपत्ति से चौंकता है, उसका चेला (चेली भी) बिदकता है, उसक चमचा (चमची भी) फुदकता है, तो क्या आश्चर्य ?

किंतु प्राचीन एवं मध्यकालीन आचार्य न परम्परावादी थे, न रूढिवादी। उपनिषद् ने 'रसो वै सः' की स्थापना द्वारा रस की ब्रह्मवत् व्यापकता एव मूल अद्वयता (एकता) का प्रतिपादन कर दिया था। भारतीय काव्यशास्त्र के जनक महामुनि भरत ने शांत को नाटक में रस नहीं माना था क्योंकि संभवतः यह जीवन-विरोधी या प्रवृत्तिविरोधी अर्थात् पलायनवादी या निवृत्तिवादी बौद्धों एवं जेनों के प्रभाव का प्रतीक था, जब कि वेदमार्ग निर्वेदमार्ग न था, नाटक जीवनरस

1 'शवपूजा परमो धर्म- मार्क्सधर्म इयत्तता।" रामप्रसाद मिश्र

2 'आचार्या' की प्रतीक्षा है।

से सराबोर रहता था; किंतु वस्तुवाद के आधार पर उन्होंने नाटक के अष्टरस मे 'शात भी' (शांतोऽपि) जोड़कर नवरस की प्रतिष्ठा की थी। कालांतर में वात्सल्य का दशमरस जुड़ा, भक्ति का एकादशरस जुड़ा और 1964 ई० प्रकाशित 'बौद्धिकरस' कविता-संग्रह के द्वारा मैंने द्वादशरस जोड़ा। विद्वान् डॉ० नगेन्द्र ने इसे भाव एव विचार के द्वैत के कारण स्वीकार नहीं किया, कुछ छुटभैयों ने 'ऊबरस' का विरोधाभासपूर्ण स्वमौर्ख्यरस तक उछाला; किंतु बालकृष्ण राव, लक्ष्मीनगर वार्ष्णेय इत्यादि ने इस पर विचार किया तथा डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी ने मेरे 'काव्य में बौद्धिकरस और आलोचना में वस्तुवाद' (1985 ई०) को विक्रम विश्वविद्यालय (उज्जैन) के एम० ए० मे संस्तुत किया।

'द्वादशरस और बस' से अभिप्राय यह नही कि शृंगार, वीर, करुण, शांत, हास्य, अद्भुत, भयानक, रौद्र, बीभत्स, वात्सल्य, भक्ति एवं बौद्धिक इन द्वादश रसों के साथ रससंख्या 'बस' या 'समाप्त'। ऐसा करना तो पोंगावादी, रूढ़िवादी एवं प्रतिक्रियादास साम्यवादी इत्यादि भाइयों के उखड़े-से खेमे मे शरण लेना होगा। 'द्वादशरस और बस' से अभिप्राय इन रसो की सार्वजनिक वाहन 'बस' में अवस्थिति से है। रसनिष्पत्ति और रसाभास, भावसंधि और भावशबलता इत्यादि के ऊहापोह मैं भावी आचार्यों एवं विद्वानों पर छोड़ता हूँ तथा साधारणीकरण की साधारण प्रक्रिया पर ही केन्द्रित रहता हूं।

एक आचार्य (ईश्वर की कृपा से हिंदी मे आचार्यों की कमी नहीं—प्रत्येक विभागाध्यक्ष पदजात-आचार्य[1] तो होता ही है, और जन्मजात आचार्य भी शत-शत हैं, मर्मजात-आचार्य भी अनेक हैं) के अनुसार : "श्रव्यकाव्य के श्रवण अथवा दृश्यकाव्य के दर्शन से जो सूक्ष्म एव अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है वह रस है। काव्यानद ब्रह्मानंद-सहोदर है। अतएव, रस को बस से संपृक्त करना नितात अनुचित है। रस अतीव सूक्ष्म है, बस अतीव स्थूल।" इत्यादि। 'भोगा हुआ यथार्थ' और 'क्षण' को सर्वोपरि माननेवाले एक मित्र के अनुसार : "क्या बस-जैसे नए वर्ण्यविषय को पुराने रस से ला जोड़ा है !" एक साम्यवादी बंधु (क्षमा करें, 'कामरेड' अर्थात् काम 'रेड' या लाल रंग से जुड़ने पर ही बनता है— विदेशयात्रा, जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी या जामिया या अन्यत्र नियुक्ति, पत्रकारिता में घुसपैठ, दूरदर्शन और आकाशवाणी में टंगडफॉस इत्यादि) ने फटकारा : "नए रस और साहित्येतिहास में नए काल-नाम या युग-नाम अनावश्यक हैं—हॉ, बस सर्वहारा का वाहन अवश्य है किंतु उसकी नकेल बूर्ज्वा बस-मालिकों या प्रतिक्रियावादी प्रशासनिक निगमों के हाथों में रहती हैं।..."

---

1 पदजात-आचार्य को कर्मजात-आचार्य भी कहा जा सकता है। 'आचार्यों का वर्गीकरण' शोध का विषय है।

पर मैं शोर-शराबे के बीच अपने रास्ते पर चला जा रहा हूँ। युग और चिर का सेतु बनाते हुए यह मौलिक (हिंदी में मौलिक लिखना पाप है जिसका दंड भुगतते हुए कई दशाब्दियाँ बीत गई—वह भी कोई साहित्य है जो अमेरीका तथा अन्य पश्चिमी देशों या रूस तथा अन्य साम्यवादी देशों की पक्की या अधपक्की या कच्ची या अधकच्ची नकल में न लिखा जाए ? ऐसा साहित्य किसी भी अकादमी या सरकारी पुरस्कार के सर्वथा अयोग्य है ।) निबंध लिख रहा हूँ।

बस तो बस बस ही है। इस यमक और पुनरुक्तिप्रकाश अलंकारों (अलंकारो से अपरिचयवश अलकार-विध्वंसक 'विद्वानों' से क्षमायाचनापूर्वक) से संपन्न सारगर्भित वाक्य के अनेक अर्थ हैं। बस स्वयं एक नायिका है किंतु इसके नायक 'परोढां वर्जयित्वा' के आचार्य विश्वनाथ[1] के आदेश की अवहेलना करने वाले हैं तथा डॉ० नगेन्द्र के परकीयावादी न्याय से भरपूर लाभ उठाने वाले—अर्थात् असंख्य ! इस अरुणाननी (अन्याननी भी) के आगमन की प्रतीक्षा बड़ी विकलता से की जाती है। दूर से इसके दर्शन करके नायक इतने प्रसन्न होते हैं जितने ऋग्वेद के द्रष्टा ऋषि शुनःशेप दिवोदुहिता उषा के दर्शन से प्रसन्न होते थे। इसके आते ही नए युग के स्वयवर का दृश्य उपस्थित हो जाता है; इतना अंतर अवश्य रहता है कि संभागी या प्रत्याशी अनुशासित नहीं रहते, विशेषकर दिल्ली में जहाँ प्राणवान भाई-बहन अपने विशेषाधिकारो के अनुरूप क्यू के बंधन को स्वीकार करना अपमानजनक मानते हैं तथा अन्य पिछलगुवा बनने में संतोष का अनुभव करते हैं। बस पर अपार साहित्य[2] रचा जा सकता है, यह प्रेरणा देते हुए मैं विषय में बद्ध[3] रहना चाहूँगा।

सर्वप्रथम शृंगाररस का बस से संबंध विवेचित करूँगा, क्योंकि आद्याचार्य भरत के शब्दों में यह 'उज्ज्वलवेषात्मक' रस चिरकाल से रसराज माना जाता है। मै रस और मनोविज्ञान को अन्योन्याश्रित मानने वाले जीवों में एक हूँ। अतएव, फ्रायड का सम्मान भी करता चलूँगा। बस मे शृंगार के संयोग-वियोग के दोनों पक्षों की 'अनुभूति' होती रहती है। खचाखच भरी बस में जब नर-नारी चढ़ते, बैठते, खड़े रहते, दबते-दबाते, निकलते हैं तब संयोग-शृंगार का वातावरण अनायास ही (और सायास भी) बन जाता है। आश्रय-आलम्बन की चेष्टाओं में अनेक सात्त्विक-कायिक अनुभाव तथा संचारीभाव सरलतापूर्वक दृष्टिगोचर हो जाते हैं। देर रात तक यात्रा के बाद जब एक पक्ष उतर जाता है तब वियोग-शृंगार का वातावरण बन जाता है। यदि यात्रा नित्य की हुई तो पूर्वराग और मान के दर्शन भी हो जाते हैं। कालांतर में, प्रवास और करुण भी संभव

1. साहित्य-दर्पण के अमर प्रणेता।
2. 'बस-साहित्य और बेबस-साहित्य' ग्रंथ तो आना ही चाहिए।
3. निबंध मे बधन ही अवलबन बन जाता है।

हैं। यदि सयोग पूर्वराग बनने में सफल हो गया तो रसनिष्पत्ति की शास्त्रीयता भी संतुष्ट हो सकती है। यदि किसी तरुणी का आठ से अस्सी वर्ष की आयु तक के अनेक नायक 'घेराव' करें तो रसाभास स्पष्ट है। यदि कोई इस विषय में पीएच० डी० या डी० लिट्० करना चाहे तो उसे विश्वविद्यालय को जाने और वहाँ से आने वाली खचाखच भरी बसो में कम-से-कम सौ दिन यात्रा अवश्य करनी पड़ेगी। इस शोधसंदर्भ में केवल 'सिद्धांत' (थ्योरी) से काम नहीं चलने का, 'व्यावहारिक' (प्रैक्टिकल) अपरिहार्य है। इस 'प्रैक्टिकल' को शास्त्रीय दृष्टि से 'यात्रा-अनुशीलन-अनुसंधान' कहा जाएगा। आधुनिकता पर लहालोट दिल्ली विश्वविद्यालय ध्यान दे।

साहित्य मे शृंगार के अनंतर सर्वाधिक सृजन वीर, करुण और शांत रसों में प्राप्त होता है। 'बस और वीररस' एक अनुप्रास-संपन्न शीर्षक है; एक अच्छे-खासे निबंध का विषय है। बस-प्रवेश के शक्ति-प्रयोग-काल से लेकर यात्रांत तक वीररस की अनेक सम्भावनाएं रहती हैं। दिल्ली में बस-यात्रा करने वाला कोई भी व्यक्ति इस तथ्य को सबसे अधिक जानता है। मैंने दिल्ली-प्रवास के मध्य 103 वीररस-प्रकरण बसों में देखे हैं जिनमे सर्वोच्च स्थान उसका है जिसमें सरदार सुच्चासिंह सरदार भिंडरसिंध से भिड़े थे और दोनो वीर लहूलुहान हालात मे थाना पहाड़ गंज पहुँचाए गए थे। इस महायुद्ध (जो द्वंद्वयुद्ध था) का आरंभ 'ज़र-जमीन-जन' के चिरंतन आधार पर ही हुआ था। सरदार सुच्चासिंह बस के पृष्ठभाग में एक मुग्धा नायिका का घेराव किए हुए थे। सीट पर खिड़की की ओर एक मोटा प्रौढ सुंदरी नायिका पर अपनी ओर से दबाब डाल रहा था, जिसके कारण सुंदरी को सटे खड़े सरदार सुच्चासिंह की ओर झुकना पड़ता था। वे उसकी तथा अगली सीटों के रेलिंग्स को जकडे खड़े थे जिससे कोई अन्य घुसपैठ न कर सके। किंतु एक तगडे ब्रेक से एक हाथ थोड़ा-सा हटा ही था कि कुछ देर से तीव्र प्रतीक्षा मे रत सरदार भिंडरसिंह ने पंद्रह साल से भारी ट्रक चलाने से बहुत मजबूत हुए हाथों में से दाहिने को रेलिंग पर अटका दिया। वर्तालाप हुआ :

"सरदास जी, ठीक से खडे होवो !"

"क्यों जी ? की होया ?"

"चलाक मत बनो।"

"बकवास बंद कर।"

सुदंरी ने ऑखे उठाकर दोनों अनाहूत-अनिच्छित स्वयंभू प्रेमियो को देखा तो 'प्रेम और युद्ध' (लव एण्ड वार) की पुरानी वस्तु (थीम) साकार हो गई :

"हेक घुसुंड में टें बोल जाएगा।"

"तो आ, रज के !"

आसपास के लोग हट गए, सुदरी और मोटा प्रौढ़ सीट छोड़कर दूर जा खडे हुए। दोनों शेर बस में जितना भिड़ सकते थे उतना भिड़े और लहूलुहान हो गए। सावधान ड्राइवर ने बस थाना पहाड़गज के अन्दर खड़ी कर दी और उतर कर थानेदार के कमरे में जा बैठा। कई पुलिसवाले आए और दोनों वीरों को थाने में ले गए। सुंदरी इसी बीच निबुक गई और प्रौढ़ का कही पता न था। इसके बाद जो हुआ उसका संबंध वीररस से नहीं है।

बस मे करुणरस के अवसर अपेक्षाकृत अल्प ही आते हैं। किंतु महाकवि भवभूति के 'एको रस· करुण एव' की सार्थकता वहाँ भी दृष्टिगोचर हो ही जाती है। कभी-कभी बस में रोगी के मूर्च्छित होने या हृदयगति रुक जाने या दुर्घटना हो जाने पर करुण रस साकार हो उठता है। एक वार एक हट्टे-कट्टे ग्रामीण युवक ने वमन हेतु सिर खिड़की से बाहर निकाला ही था कि पीछे से तेज़ रफ़्तार मे आता ट्रक उसका सिर धड़ से अलग कर कुछ दूरी पर फेंकता गया जबकि धड बस के अन्दर रह गया । अत्यंत हृदयविदारक करुण दृश्य था।

शांतरस एक गंभीर रस है जिसका स्थायीभाव निर्वेद है। जहाँ जीवन है वहॉ निर्वेद या विरक्ति का होना स्वाभाविक है क्योंकि रोग, दुर्घटना, बुढ़ापा, विश्वासघात, कलह इत्यादि किसी भी आयु के किसी भी व्यक्ति में निर्वेद की सृष्टि कर सकते हैं। बस में जब किसी रुग्ण या वृद्ध स्त्री या पुरुष को भीड ढकेलती-धकियाती है तब वह निर्वेदपरक उद्‌गार व्यक्त करता ही है। दुर्घटना देखकर भी निर्वेद बन जाता है। बस मे जब 'अंगं गलितं पलितं मुंडं दशनविहीनं जातं तुंडम्' का स्मरण कराने वाला वृद्ध किसी सुंदरी को स्नेहिल दृष्टि से देखता या शृंगारसिक्त होता या घेरता है तब अन्यों को निर्वेद ही निष्पन्न होता है। कोई वृद्धा जब किसी प्रौढ़ अथवा युवक रूपी तरु पर शरीर-लता को प्रसरित करने लगती है तब भी ऐसा ही होता है। भलेमानुसों को धक्के खाते देख कर अथवा लोफरों-लफंगों को मनमानी करते देखकर भी निर्वेद जागृत होता है। दुर्घटनाएं भी निर्वेद जागृत करती हैं। दुर्घटनाएं करुण एवं शांत रसों की निकटता स्पष्ट करती हैं।

मैं बस को हास्य-कुटीर कहता हूँ। कुटीर केवल उस अर्थ में जिसमें आजकल महल को कुटीर कहा जाता है। यदि कोई प्रबुद्ध यात्री बस का आद्यन्त निरीक्षण करे तो अनायास ही अंतरहास्य से अभिभूत हो सकता है। विभिन्न वेशभूषाएं, विभिन्न आकृतियॉ, विभिन्न प्रकृतियाँ, विभिन्न भंगिमाएं (विशेषतः नर-नारी-आकर्षणमूलक) हास्य की अनंत सृष्टि कर सकती हैं। 'इंटेलेक्चुअल-दाढ़ियॉ' और 'मूछों की बनावटें' विषयों पर तो अलग-से हास्यनिबंधों की रचना की जा

सकती है। शेर-कट, भेड़िया-कट, लोमड़ी-कट, बकरा-कट इत्यादि दाढ़िया और मूछों के क्या कहने ! पिरामिड-उलट-कट दाढ़ी का बौद्धिक दबदबा कौन मूर्ख न मानेगा ? किंतु बस में हास्यरस की चरम निष्पत्ति तब होती है जब कोई बुजुर्ग जमाने को लतियाते तथा अपने जवानी के जौहर[1] सुनाते हैं। वर्तमानकाल में ढहते हुए जीवन-मूल्य, बढ़ते हुए अनाचार और चढ़ते हुए भाव ('हृदय' के नहीं, वस्तुओ के) ऐसे भाषणों के चिरंतन विषय हैं। यदि वक्ता कोई भारी-भरकम सदारजी हुए तो सोने मे सुगंध। प्रत्येक प्रमाता ('प्रमत्ता' नहीं) इन तथ्यो से सहमत होगा। जिसे भावकत्व और भोजकत्व का बोध है, वह 'हास्यरस और बस' को रोचक विषय मानेगा।

अद्‌भुतरस का बस से अधिक गहरा संबंध भले ही न हो पर वह उससे एकदम अलग-थलग भी नहीं है। बस स्वयं ही मानव-मस्तिष्क की एक अद्‌भुत सृष्टि है। आदिवासी या दुर्गमग्रामवासी जब बस देखते हैं या उस पर पहला सफर करते हैं तब विस्मय-विजटित रह जाते है। थोड़ा-सा पेट्रोल या डीज़ल या अन्य शक्तितत्त्व मानव-मनीषा के सहयोग से शत-शत प्राणियों का वाहक बन जाता है। सामान्यतः द्रव डुबाता है किंतु बस में वह वहन करता है।

भयानकरस बस में ठसाठस भरा रहता है। एक सुंदरी ने मुझसे बतलाया कि उसे प्रचण्डानन अनिच्छित-अनाहूत 'प्रेमी' भय का इतना अधिक अनुभव होता था कि उसने एक मील दूर के स्टैंड से बस पकड़ना आरंभ कर दिया। जेबकतरों के गिरोह से केवल पैसे का ही नहीं अपितु जान का भय भी रहता है। अनेक हत्याएं प्रमाण हैं। अपराधियों के घिनौने गिरोह पुलिस के सहयोग से जेबकतरों के हौंसले बेहद बुलंद रहते हैं। क्या हिम्मत कि कोई रपट लिखाए! रपट-घूस और बाद का झमेला ! गवाही की समस्या ! ग्रामीण क्षेत्रों में नेताओं के वरदहस्त तले पले और पुलिस के प्रताप से पनपे डाकूदल जब बसें लूटते है तब भय साकार हो जाता है। जब से आंतकवाद का उदय हुआ है तब से बस-यात्रा भय-यात्रा बन गई है। पहले कश्मीर-घाटी की बसों में 'सियासती गुफ्तगू मना है' कश्मीरी में नहीं तो उर्दू राज-भाषा में, अब किसकी मजाल जो वहाँ जाए ! पंजाब में बस-यात्रा बहुत बार मृत्युयात्रा हो जाती है। नागालैंड, मिज़ोराम और मेघालय में तो कोई विना अनुमतिपत्र (परमिट) के जा ही नहीं सकता क्योंकि तीनों पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष ईसाई राज्य हैं। अरुणाचल प्रदेश के बौद्ध राज्य में ऐसा क्यो है ? पता नहीं ! भारत एक राष्ट्र है और एक धर्मनिरपेक्ष देश है—ऐसा सुनाई देता है। 'कॉउ-बेल्ट' सब का शिकार है।

1. किसी गुलशन नदा छाप उपन्यासकार के लिए नफीस पेशकश ! वैसे, 'लतिया दो जमाने को' भी लासानी तोहफा बन सकता है।

अनाचारपत्र[1] (समाचारपत्र) हो या दुर्दर्शन (दूरदर्शन) या अभासवाणी (अकाशवाणी), सब हिंदीभाषियों को ही उपदेश की घुट्टी पिलाते हैं।

बस में यात्रा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को रौद्ररस का आस्वाद मिलता ही रहता है। कभी प्रवेश के समय युद्ध-स्तरीय प्रयत्नों में, कभी सौंदर्य के घेराव के सदर्भ में, कभी राजनीति के प्रसंग में, कभी सामान्य वार्ता-विकृति में यह या वह या दोनों पक्ष क्रोध से अभिभूत हो जाते हैं जिसका वर्गीकरण इस प्रकार करूँगा : कभी सुंदरी-क्रोध, कभी असुंदरी-क्रोध, कभी भयानक-क्रोध, कभी दयनीय-क्रोध, कभी बीभत्स-क्रोध, कभी प्रशांत-क्रोध। विस्तारभय से मैं इन क्रोधों की विस्तृत मीमांसा नहीं कर सकता। 'बस और रौद्ररस' शीर्षक विषय एम० ए० के लघुप्रबंध का विषय है। दिल्ली विश्वविद्यालय में विशेष तथा अन्यत्र सामान्य रूप से लघुप्रबंध छात्रों तथा उनसे भी अधिक छात्राओं के लिए कल्पतरु बन गया है। सुना है, इसमें पचासी प्रतिशत तक अंक आ जाते हैं। परीक्षक अपने गुरु (शायद 'गुरू' नहीं) अथवा उस्ताद (शायद 'उस्तादजी' नहीं) के इतने निकट आ जाते हैं कि तरकारी लाना, रजिस्ट्री करना, गुरु के प्रवास पर गुरुगृह की चौकीदारी करना गर्व का विषय समझते हैं तथा शिष्याएं अत्यधिक निकट आने के कारण गुरु को खीसें निपोरते देखकर हर्षित होती हैं। कभी-कभी इन निकट-प्रसंगों में रौद्र-संचार भी हो जाता है। दोनों पक्षों में से किसी एक से भी संभव है, उभयपक्षीय भी हो सकता है।

बस में बीभत्सरस की निष्पत्ति एक आम चीज़ है। अनेक यात्रियों, विशेषकर नए यात्रियों, और उनमें भी बच्चों, स्त्रियों इत्यादि, को वमन होता है। कभी-कभी नितांत कुरूप स्त्री या पुरुष की अतिसज्जा से बीभत्स का अनुभव होता है, विशेषतः तब जब मुद्रा शृंगार की हो ! भारी डकार इत्यादि से भी जुगुप्सा उत्पन्न होती है। अनेक यात्रियों की अस्वच्छता भी ऐसा करती है।

अनेक आचार्यो ने वात्सल्य को रस का गौरव नहीं प्रदान किया। किंतु विश्वनाथ ने 'मुनीन्द्रसम्मत' (मुनीन्द्र से अभिप्राय भरत से लगता है किंतु संभव है इस नाम के कोई आचार्य हुए हों) रूप में उसकी प्रतिष्ठा की है; भोज ने भी इसे रस माना है। हिंदी में सूर, तुलसी, हरिऔध, मैथिलीशरण इत्यादि, विशेषतः सूर और तुलसी के कारण 'वात्सल्य भाव या रस ?' का प्रश्न नहीं उठता। बस में वात्सल्य रस की निष्पत्ति सहज संभाव्य है क्योंकि माताएं शिशुओं को अंक में लेकर यात्रा करती हैं और बच्चे प्रत्येक परिस्थिति मे जीवन से खेलते हैं--स्वय अपने जीवन से, अन्य के जीवन से :

---

1 नेताओं, तस्करों, उद्योगपतियों, व्यापारियो, अधिकारियो एवं अपराधियों के कुकृत्यो एव अनाचारो से रँगे पन्ने--अपराधी सबसे पहले अखबार माँगते हैं और नेता इत्यादि भी।

बच्चे जीवन खेलते हैं,
युवक जीवन जीते हैं,
प्रौढ़ जीवन बिताते हैं,
वृद्ध जीवन ढोते हैं।

शिशुओं को स्नेहदान करती माताओं तथा बस और उस पर यात्रा से विस्मय-विमुग्ध शिशओं की सहज चेष्टाओं का अनुशीलन वात्सल्यरस की निष्पत्ति बन जाता है।

भक्ति एक सहज मानवीय प्रवृत्ति है। अतः चिरतन है। वेद एवं उपनिषद् से पुराण एवं नानाभाषाकाव्य तक प्रसरित स्फीत भक्तिकाव्य इस कथन का प्रमाण है। मध्यकालीन भारत की भौतिक तथा आध्यात्मिक परिस्थितियाँ भक्ति के विशेष अनुकूल थीं। अतः संतों एवं महात्माओं, विचारकों एवं दार्शनिकों ने भक्ति पर इतनी अधिक सर्जना एवं चिंतन किया कि भक्ति एक समग्र जीवन-दृष्टि बन गई। तब भक्ति का महत्त्व सर्वोपरि हो गया। भक्ति मध्यकाल की राष्ट्रीयता थी, भक्ति मध्यकाल की मानवीयता थी। भक्ति को ही अंगीरस माना गया तथा दास्य, सख्य, शृंगार (मधुर), वात्सल्य एवं शांत को अंगों के रूप मे प्रतिपादित किया गया। बस मे बहुत बार धर्मपुस्तिका (गुरुग्रंथसाहब का 'जपुजी' या रामचरितमानस का सुंदरकांड या जेबी-बाइबिल या जेबी-कुरान) का पाठ करते व्यक्ति, विशेषतः महिलाएं, मिल जाती है। कई बार भक्तिचर्चा तक हो जाती है। कभी-कभी माला फेरते व्यक्ति भी मिल जाते हैं। मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च इत्यादि देखकर विभिन्न शैलियों के नमन दृग्गत हो जाते है। आजकल के व्यस्त और समस्याग्रस्त जीवन में घर में भक्ति के लिए अवसर मिलना सचमुच कठिन है। प्रगतिशील युग में घर 'विविध कलहकेन्द्र' बन गए है; ऊपर से अनाचारपत्र, दुर्दर्शन, अभासवाणी, वी० डी० ओ० या वी० सी० आर०, ब्लू-फिल्म्स इत्यादि का भारी दबाव। कुछ लोग कार्यालयों में भक्ति का अवसर निकालने का भगीरथ प्रयास करते हैं किंतु वहाँ ताश, सामयिक-राजनीति, खेल-कूद, चलचित्र[1], अधिकारी-निन्दा-प्रशंसा इत्यादि को ही भारी वरीयता प्राप्त रहती है। मेरी समझ में, इस जटिल युग में बस भक्ति के लिए सबसे उपयुक्त 'स्थल' है (बशर्ते के बैठने की जगह मिल जाए)। जनसंख्या-विस्फोट के कारण वन रहे नहीं, पर्वतों में भी कोलाहल है, सर्वत्र हाहाकार व्याप्त है। इस विषम स्थिति मे, बस में भक्तिसाधना सर्वथा समीचीन है। इस साधना मे समय की बचत भी होती है और बचत कोई भी अच्छी ही रहती है। ज़माने की तेज रफ़्तार

1 वस्तुत छलचित्र · यंत्रचित्रकला (फोटोग्रैफी) के चमत्कारों से आच्छन्न, कृत्रिमलोक के छलावे से भरपूर।

को देखते हुए ऐसा लगता है कि भविष्य में भक्ति केवल बस में ही हो पाएगी। रेल या वायुयान या जलयान की भक्ति इसी वर्ग की होगी।

मैंने हिंदी को बहुत-कुछ दिया है और यह मेरी पूर्वाग्रहग्रस्त या हीनभावपूर्ण या गौरवग्रंथिपूर्ण उपेक्षा से ही स्पष्ट है; राज्यक्ष्मा, मधुमेह, रक्तचाप इत्यादि के उपहारो से तो बस प्रमाणित ही है। मेरे 'हिंदी साहित्य का नवीन इतिहास' (1960 ई० के आस पास चिन्तित, 1963 ई० तक लिखित, 1967 में प्रकाशित—जो 1985ई० में संशोधित प्रवर्द्धित 'हिन्दी-साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' के रूप मे निकला) का प्रभाव अनेक इतिहासों (नगेन्द्र-संपादित तथा गणपतिचंद्र गुप्त, रामखेलावान पांडेय, हरिश्चन्द्र वर्मा, रामनिवास शर्मा इत्यादि लिखित) तक प्रसरित है तथा मेरे संक्रातिकाल को संक्रमणकाल के रूप में कई इतिहासों में ग्रहण किया गया है। मेरे 'बौद्धिकरस' (1964 ई०) का व्यापक प्रभाव एक निर्विवाद तथ्य है, मेरे 'कॉफ़ीहॉउस' (1981 ई०) व्यंग्य-नाटक की मूल समस्या थी, 'यदि मनुष्य के पूँछ होती'; और अमृत लाल नागर का एक हास्य-निबध ठीक इसी शीर्षक का है, यद्यपि मेरे वाक्य दो-तीन हैं क्योंकि पल्लवन उन प्रतिभाशाली कलाकार का अपना है। मेरे 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' (1986 ई०, वस्तुतः 1985 ई० : रामायण, महाभारत, इलिअड, ओडिसी, ऐनीड या ऐनीअड, शाहनामा, रामचरितमानस) में महाभारत के ललित-काव्यात्मक पक्ष पर प्रकाश एवं ग्रंथरचनापरामर्श है; और विद्यानिवास मिश्र ने इस विषय पर सुदर ग्रंथ-रचना की है। 1972 ई० में प्रकाशित 'हिन्दूधर्म' में मैंने किसी सर्वोच्च हिन्दू-मंच से अस्पृश्यता के हिन्दूधर्म का अंग न होने की घोषणा का प्रतिपादन किया था, 1974 ई० के प्रयाग कुम्भ महापर्व पर ऐसी घोषणा की गई। 1973 ई. में प्रकाशित 'विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य' मे राम का पक्ष-समर्थन डॉ. रामकुमार वर्मा कृत 'वालि-वध' में विद्यमान है, यद्यपि महान् कलाकार की सर्जना स्वतंत्र है। मैंने भारत का अर्थ 'भा' (प्रकाश) के वितरण में 'रत' देश अनेक ग्रंथो ('भारत की एकता', 'जय भारत जय भारतप्रहारी कृषक श्रमिक जय' इत्यादि) में किया है; 15 सितम्बर 1990 को उन्नाव में मेरी उपस्थिति में ही, 'नीरज' ने ऐसा ही किया। कितु मैं 'मौर्ख्यशास्त्र' (ईडिऑटिक्स) के प्रर्वतक के रूप में बहुत संतुष्ट हुआ था; खेद है कि इस दिशा में भी नाम-दाम-काम न बना पाया (क्योंकि किसी दल के दलदल से डर गया, किसी वाद के प्रवाद से लाभ उठाने के अयोग्य रहा)। खैर, क्षमा करें, यह प्रकरण कुछ लम्बा हो गया, जबकि निबद्धता केवल बौद्धिकरस से सपृक्त रहने में थी।

'बौद्धिकरस और बस' बड़ा चुभता विषय है। बसों में सामायिक राजनीति-चर्चा, युद्धस्थिति मे युद्धचर्चा, सर्वविषयक ऊहापोह एक सार्वभौम सत्य

है। 1947 ई० के कश्मीर-युद्ध में भारत के देशभक्त एवं धर्मनिरपेक्ष मुसलमान भाई पाकिस्तान के पक्ष में बड़े ही सुंदर तर्क देते पाए गए थे। 1962 ई० के युद्ध में प्रगतिशील साम्यवादी भाई उर्फ़ कॉमरेड चीन के पक्ष में महान् बौद्धिकता का प्रदर्शन करते देखे गए थे। 1965 ई० के युद्ध में विराट् समीक्षा हुई थी। 1971 ई० के युद्ध में क़ौमपरस्ती और हब्बुलवतनी से लबालब मुसलमान भाइयों ने भारत की पाकिस्तान को तोड़ने की कड़ी मज़म्मत की थी, जिसका आधार सेक्युलरइज़्म ही हो सकता था। 1991 ई० के खाड़ी-समस्या एवं तज्जन्य युद्ध में तो मुसलमान भाइयों और उनके उनसे भी ज़्यादा ज़ोरदार साम्यवादो[1] और जनतादलकारी[2] मित्रों ने ईराक़ के परम साम्यवादी और परम-मुसलमान महापुरुष और विश्वनेता शांति-वीर सद्दाम हुसैन का पक्ष इतनी ताक़त के साथ लिया अर्थात् अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटैली, ऑस्ट्रेलिआ, सऊदी अरब, कुवैत[3], तुर्की, मिस्र, सीरिआ, पाकिस्तान, बांग्लादेश इत्यादि आक्रांता देशों की इतनी भयानक निन्दा की कि कई वाग्युद्ध द्वंद्वयुद्ध तक में बदल गए (सड़को की जुलूसबाज़ी में ईंट-पत्थर वगैरह तो खैर बहुत जगह चले ही)। किंतु बस में बौद्धिकरस की महान् निष्पत्ति तब होती है जब या तो किसी (पूर्वभार, चालन-अक्षमता, लापरवाही, अन्य) कारण से वाहन-ऋण न ले पाने या पेट्रोल के बढ़ते (अभ्रस्पर्शी) दामों की लाचारी मे दो विश्वविद्यालय या महाविद्यालय प्राध्यापक राजनीति के किसी बिंदु को सिन्धु बनाने में जुटते हैं। उस समय भीड़[4] के आसपास व्यक्ति गंभीर हो जाते हैं मानो प्रत्येक बिंदु को पी रहे हों।

1. कल्हण कृत महान् राजतरंगिणी जैसे उन ग्रंथों पर प्रतिबंध लगना चाहिए जिनमें 'साम्यवादी' शब्द का प्रयोग नपुंसकों या क्लीवो (हिजड़ों) के लिए किया गया है—वैसे, प्रतिबंध तो 'डास कैपिटल', 'द कॉम्युनिस्ट मैनिफ़ेस्टो', 'कुरान' इत्यादि धर्मनिरपेक्ष ग्रंथों के अतिरिक्त सारे ग्रंथों (विशेषतः गीता, मनुस्मृति, रामचरितमानस) पर लगना चाहिए।

2. जनता को दल=जनता दल।

3 पवित्र एवं शांतिप्रिय ईराक ने छोटे-से कुवैत को कुचला, हथियाया, लूटा।

4. समाजवादी भारत की भीड़ का अर्थ दरिद्र, अशिक्षित, व्यसनग्रस्त जनता है जो अधिकार तो जानने लगी है किंतु कर्तव्य एकदम नहीं जानती। विशेष धन्यवाद अरबपति 'दलित'-नेताओं को !

